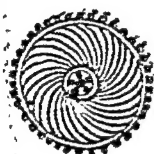


भारतीय लोककला ग्रन्थावली : संख्या ३१
सम्पादक—डॉ. महेन्द्र भानावत
उपनिदेशक (अनुसंधान) भारतीय लोककला मंडल

पुस्तक—लोकवार्ता की पगडंडियां

लेखक—डॉ. सत्येन्द्र

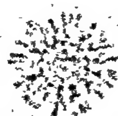
प्रथम संस्करण—अक्टूबर १९७४

मूल्य—तीस रुपया

प्रकाशक—भारतीय लोककला मंडल उदयपुर (राजस्थान)

मुद्रक—अब्दुल हमीद, उपवन प्रिन्टर्स, उदयपुर

अनुक्रम



संस्थापकीय

'लोकवार्ता की पगडंडियां' भारतीय लोककला मंडल प्रकाशन का इकतीसवां पुष्प है। हमारे अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इस प्रकाशन की विशेषता इसके लोक-वार्तात्मक विवेचन में है। कला मंडल प्रदर्शनकारी लोककलाओं के शोध, सर्वेक्षण, प्रदर्शन एवं प्रकाशन का संस्थान है और इस दिशा में इसने महत्वपूर्ण कार्य किया है। राजस्थान के अनेक लोकनाट्य इस संस्था द्वारा परिमार्जित एवं प्रदर्शित हुए हैं। हम प्रारंभ से ही इस तथ्य से पूर्णरूप से अवगत हैं कि हम संपूर्ण वृक्ष की जड़ों तक नहीं पहुँच कर उसकी शाखा-उपशाखाओं का ही आनंद ले रहे हैं। हमारा यह रवैया इसलिए भी गलत नहीं है क्योंकि लोकवार्ता के अध्येता न केवल भारत में बल्कि अन्यत्र भी लोकवार्ता के गाथा, कथा, लोकोक्ति, देवी-देवता, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र, आस्था-विश्वास एवं नृत्य संबंधी विश्लेषण-अध्ययन में ही इतने उलझ जाते हैं कि उसका कला पक्ष उनकी आंखों से प्रायः ओझल ही रहता है। परिणाम यह होता है कि विशुद्ध कलात्मक अध्ययन में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रहती। मैं अपने कला-प्रयोगों में इसका कई बार शिकार बना हूं। खूब छानबीन करने के बाद भी जब मैंने प्रथम बार घूमर के अनेक परिष्कृत रूप रंगमंच

पर प्रदर्शित किये तो अनेक लोकवार्ताकार मुझ पर अनायास ही टूट पड़े और उनमें उद्गम, इतिहास एवं प्रतीकों संबंधी अभाव दर्शाकर उन्होंने मुझे एक विचित्र सी विवादास्पद स्थिति में रख दिया। हमारे विविध लोकनाट्यों को भी ये वार्ताकार इसी दृष्टि से देखने के आदि हो गये हैं। उनके प्रदर्शनकारी नाट्यतत्वों एवं गीतात्मक संवादों के साथ चलने वाले नृत्यों की चाल-ढाल, कलाकारों के वेश-विन्यास, रंगमचीय शिल्प, प्रतीकात्मक उपकरण एवं उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि से कोई सरोकार नहीं रखते।

इसी कारण भारतीय लोककला मंडल प्रारंभ से ही लोककलाओं के विशुद्ध कला पक्ष पर ही जोर देता रहा है। उसने बराबर यह जानने की कोशिश की है कि लोकपक्षीय कलाओं का प्रादुर्भाव, विकास एवं विगठन किस प्रकार होता है। इस आधार पर काम करने के परिणाम स्वरूप आज लोककला मंडल में एक ऐसे संग्रहालय का विकास हुआ है जहां देश-देशान्तर से अध्येता एवं शोधकर्मी अध्ययन हेतु आते हैं। कला मंडल के प्रयास से प्रदर्शनकारी लोककलाओं के ऐसे स्वरूप प्रत्यक्ष हुए हैं जिनसे लोकवार्ताविज्ञान की अनेक टूटी हुई कड़ियों का पता लगता है।

डॉ सत्येन्द्र की यह पुस्तक कलामंडल के लिए विपयान्तर उपस्थित नहीं करती। क्योंकि हमारी प्रकाशन-प्रक्रिया में इस तरह की विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक पुस्तक की नितान्त आवश्यकता थी। मैंने जब इस पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ा तो ऐसा लगा कि मैं स्वयं भी अब एक नई दिशा में दीक्षित होरहा हूं।

जीवन भर मैंने कला के विविध पक्ष देखे, उनका अध्ययन किया और स्वयं ने भी वैसा ही जीवन जीया परन्तु लोकवार्त्ता के इस गहन पक्ष में बार-बार घुसकर भी मैं बाहर निकलता ही रहा। मुझे ऐसा लगा कि यह केवल माथा-पच्ची मात्र है। मध्यप्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा एवं राजस्थान के आदिवासियों के सांस्कृतिक सर्वेक्षण के लिए जब मैं निकला तो डॉ० वेरियर एलविन की लगभग सभी किताबें मेरे पास थीं। उन सबको मैंने कई बार धर्मग्रन्थ की तरह पढ़ डाला। आदिवासियों के कला एवं लोकवार्तात्मक पक्ष को जिस पैनी एवं रसभीनी दृष्टि से उन्होंने देखा वह वर्णनातीत है। मैं डॉ. वेरियर से बस्तर के आदिम क्षेत्र में ही मिला था और उनके साथ कुछ दिन रहने का भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। डॉ. सत्येन्द्रजी की इस पुस्तक में मुझे डॉ. एलविन की अधिकांश पुस्तकों की झलक मिल गई। यद्यपि उन्होंने इस पुस्तक में लोकनाट्य एवं घूमर के अलावा किसी भी कलापक्ष को विशेष रूप से छुआ नहीं है, फिर भी समस्त पुस्तक में जो

सामग्री संकलित है वह अत्यंत उपादेय है। उनकी पैनी विवेचनात्मक दृष्टि एवं उनके अध्ययन-चिन्तन का विस्तृत केनवास इस पुस्तक में उभर आया है। एक प्रकार से यह पुस्तक लोकवार्ता की सक्षिप्त एन्साइक्लोपीडिया है जो न केवल भारत वलिक समस्त विश्व के लोकवार्ता पक्ष को छू गया है। हम अब विशुद्ध कलापक्षीय लोगों को भी यह पुस्तक सीधा संकेत देती है कि प्रत्येक कला-स्वरूप के अन्तराल में विविध प्रतीकों की जो गहन सामग्री छिपी है उसकी गहराई में उतरकर उसका पता लगाना चाहिये।

यदि हमें यह ज्ञात होजाय कि जो लोकगाथाएँ आज प्रचलित हैं और जिनकी चित्रांकित एवं मौखिक सामग्री पर हम विमुग्ध हैं, उनमें केवल मात्र कला ही नहीं, जीवन का समस्त विश्लेषण छिपा है तथा उनके विविध रूप सीधे अर्थ में ही प्रकट न होकर किन्हीं विश्वव्यापी प्रतीकों की ओर संकेत करते हैं तो निश्चय ही हमारे सोचने-समझने का दायरा भी विस्तृत हो जायगा। हमें जो यह भय लगा हुआ है कि राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोकदेवता तेजाजी, गोगाजी, पाबूजी एवं रामदेवजी के साथ जुड़े हुए सांप एवं गायें हमारी स्थूल बुद्धि के अनुरूप न रहकर किन्हीं प्रतीकों की गहराई में उतरकर अपना महत्व खोरहे हैं, कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मैं स्वयं रामदेवजी एवं गोगाजी का कोई आस्थावान भक्त नहीं हूं परन्तु उनका जीवन चित्रित करने वाली पड़ों का वहुत वड़ा प्रशंसक हूं। उनके प्रतीकों से मैं पूर्णरूप से परिचित हूं। इन देवताओं की स्तुति में गाये जाने वाले पवाड़ों का भी मैं वहुत शौकीन हूं; घंटों उन्हें सुनता हूं और उनके प्रति आस्थावान नहीं होते हुए भी उनसे रसविभोर हो जाता हूं। मैं यह नहीं मानता कि इन कला-रूपों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से किसी भी व्यक्ति का उनके प्रति आकर्षण समाप्त हो जायगा।

डॉ० सत्येन्द्र की इस पुस्तक को इसलिए मैं एक गौरवशाली ग्रन्थ मानता हूं। मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ न केवल लोकवार्ताकारों के लिए बल्कि समस्त लोक-कलाकारों के लिए भी एक संदर्भ ग्रन्थ के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा। डॉ. सत्येन्द्र अनेक ग्रन्थों के प्रणेता हैं। लोकवार्ता के विद्वानों में आज उनका प्रमुख स्थान है। प्रस्तुत ग्रन्थकर्ता के रूप में उन्होंने लोककला मंडल की कलापक्षीय खिड़की में प्रथम वार झांका है। उनका हमारे समूचे कला-संसार में शत-शतवार स्वागत है।

देवीलाल सामर

भूमिका

मनुष्य ने विश्व में जब पहली वार आँख खोली तभी से लोकवार्ता का मार्ग रचने लगा और यह विशद राजमार्ग वनकर आज के क्षण तक आ गया है। मानव के अपने विकास और प्रस्फुटन से इस विशद राजमार्ग की अनन्त पगडंडियाँ फूटीं और फैल गयीं। विश्व भर में जहाँ-जहाँ मानव हैं ये पगडंड़ियाँ फैली हुई मिलेंगी। अतः ये पगडंडियाँ अनादि भी हैं और अनन्त भी हैं। फ्रेजर महोदय ने गोल्डन वाउ (Golden Bough) में इन पगडंडियों के व्यापक विवरण एकत्र किये पर अनादि और अनन्त को पकड़ना क्या संभव है? हमारी इस पुस्तक में तो लोकवार्ता की विविध पगडंडियों में से केवल कुछ पगडंडियों पर कुछ दूर चलने का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी पगडंडो का ओर-छोर देखने का प्रयास नहीं। जहां से भी किसी पगडंडी से सम्पर्क हो सका है, वहीं से ही उन पर कुछ कदम चलने का प्रयत्न-भर इस पुस्तक में है। भले ही कुछ कदम ही चला गया हो पर लोकवार्ता के रस का सुस्वादु तो मिल ही जाता है। यह सुस्वादु आत्मविभोर करने वाला है, पर वैज्ञानिक विश्लेषण भी पद-पद पर विद्यमान मिलेगा। इससे सारस्वत आयतन भी संतुष्ट होता है। ये पगडंडियाँ

भारत की ही हैं, पर मात्र भारत की ही नहीं है, क्योंकि लोकवार्ता मूलतः विश्व-मानव से जुड़ी हुई है अतः ये पगडंडियाँ विश्वमानव की भी हैं। यद्यपि मुख्य आधार भारत का, वहाँ भारत के एक प्रदेश राजस्थान का ही रहा है। लगता है कि राजस्थान जैसे समस्त भारतीय लोकवार्ता की धुरी हो।

लोकवार्ता के संदर्भ में राजस्थान का आबू पर्वत सदैव नयी सृष्टि का मूल स्थान है। इन अग्निपुत्रों ने एक नये लोकयुग का सूत्रपात किया। इस परिप्रेक्ष्य में राजस्थान का महत्व एक नया आयाम प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः यह महत्व लोकवार्ता के माध्यम से ही अन्तर्दृष्टि पाकर आंका जा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि यज्ञ कुंड से नई सृष्टि को हम इतिहास की घटना मानते हैं किन्तु लोकवार्ता ने किसी नयी सृष्टि की कल्पना प्रस्तुत की, इसके इतिहास के लिए भी कई अर्थ हो सकते हैं और सांस्कृतिक व्याख्या से लोकजीवन की एक नई आस्था की ओर संकेत मिलता है, इसको भी ध्यान में रखना अपेक्षित है। अभी एक पत्र में एक समाचार यों प्रकाशित हुआ—

भारतीय इतिहास कांग्रेस के ३४ वें अधिवेशन की रपट :

आस्ट्रेलिया के लाट्रोबे विश्वविद्यालय में इतिहास के भूतपूर्व प्राध्यापक मिस्टर हेनरी ने जो अक्तूबर, १९७२ से इतिहास के क्षेत्र में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन कर रहे हैं, यह पूछे जाने पर कि क्या आप इस सम्मेलन में कोई अभाव देख रहे हैं: एक झटके से उत्तर दिया—'जी हां बिल्कुल खल रहा है। इस प्राचीन देश की जनसंस्कृति और स्थानीय संस्कृति के अध्ययन की ओर इतिहासकार पूर्ण रूप से उदासीन हैं, जबकि पाश्चात्य देशों में जनमानस को समझने और परखने में इस प्रकार की सामग्री के अध्ययन को विशेष महत्व दिया जा रहा है।' क्रुक और ग्रियर्सन जैसे विदेशी विद्वानों ने १९वीं शताब्दी में इतिहास जगत् को इस दिशा का निर्देश दिया था किन्तु नई वैज्ञानिक प्रविधियों के सहारे इस अध्ययन को आधुनिकतम रूप देने की बात ही नहीं सोची जा रही जबकि इस देश की जनसंस्कृति अत्यन्त प्राचीन और इस तरह की सामग्री का भंडार अत्यन्त विस्तृत है। जन-संस्कृति के अध्ययन के लिए भाषा और भाषा विज्ञान के सम्यक् अध्ययन से भी सहायता मिलती है। इतिहास की संरचना में इसकी उपेक्षा करके किसी सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता।

इस समाचार से स्पष्ट है कि इतिहासकार इतिहास की दृष्टि से लोकवार्ता और लोकभाषा के महत्व की बात कर रहे हैं क्योंकि अब इतिहास भी जनजीवन के लेखेजोखे से जुड़ने लगा है। वह केवल राजा-महाराजाओं के विवरणों पर ही सन्तोष नहीं कर सकता।

पर उक्त समाचार का अंतरंग संदेश यह भी है कि भारत की समृद्ध लोकवार्ता की भारत में ही उपेक्षा रही है, किन्तु हमने यह उद्धरण उपेक्षा बताने के लिए नहीं दिया वरन् यह बताने के लिए दिया है कि लोकवार्ता की समृद्धि इससे प्रमाणित होती है। भारत में भी राजस्थान की लोकवार्ता सर्वोपरि मानी जानी चाहिये। इस पुस्तक में इसी लोकवार्ता की आंशिक झलकियाँ, पगडण्डियों या विविध वार्त्तारूपों की चर्चा के सहारे दी गयी है और इन झलकियों की वैज्ञानिक व्याख्या भी देने का प्रयास साथ-साथ है। झलकियाँ क्या हैं, वस्तुतः अध्ययन के प्रयत्न ही हैं। इन प्रयत्नों में गहरे पैठने पर कितनी ही समस्याएँ भी विद्वानों और जानकारों के मन में उठ सकती हैं।

उठ सकती हैं, यह संभावना है, पर वस्तुतः उठी हैं। यह 'लांगुरा' विषयक अध्याय पर हुई चर्चा से जाना जा सकता है। 'लोककला' के अंक २६ (जुलाई, १९७३) में इस पुस्तक के आरम्भिक पांच निबन्ध या अध्याय प्रकाशित हुए थे। उस पर 'वरदा' वर्ष १६ के अंक ४ में लोकवार्ता के प्रकाण्ड विद्वान डॉ० मनोहर शर्मा ने लांगुरा पर जो विचार प्रकट किये हैं वे यहां उद्धृत किये जाते हैं। डॉ० शर्मा ने पहले 'लांगुर' वाले लेख का सार दिया है। फिर वे लिखते हैं कि—

"इस उद्धरण पर ध्यान देने से प्रकट होता है कि डॉ० सत्येन्द्र लांगुर को शिव ही मानते हैं परन्तु अन्तिम वाक्यों से ऐसा भी प्रतीत होता है कि यह बात उनको पूर्णतया नहीं जची है। ऐसी स्थिति में इस विषय पर कुछ और अधिक चर्चा करने की आवश्यकता अनुभव होती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उपर्युक्त लेख में लांगुर से सम्बन्धित राजस्थानी लोकमान्यता पर कोई चर्चा नहीं की गई है, अतः आगे इसी विषय पर प्रकाश डालने की कुछ चेष्टा की जा रही है।

राजस्थान में शिव-शक्ति का युग्म पति-पत्नी के रूप में लोक-प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार यहां भैरव-भवानी को पुत्र और माता के रूप में लोक-मान्यता प्राप्त है। भैरव उपासना का राजस्थान में विशेष प्रचार रहा है। आज भी यहाँ अनेक नाम-रूपों में भैरव की पूजा की जाती है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी भाषा में प्रचुर काव्य-रचना हुई है और बड़ी संख्या में लोकगीत भी गाये जाते हैं। भैरव उपासना के फलस्वरूप ही यहां अनेक लोगों के नाम भैरूंसिंघ, भैरूंरतन, भैरूंदान, भैरूंगिर, भैंरदास, भैंराराम, भैंरामल्ल आदि रखे गये हैं। ऐसी स्थिति में यह सहज ही कहा जा सकता है कि राजस्थान में भवानी के साथ ही भैरव भी असाधारण रूप से लोक-पूजित है। यहां 'माता' के समान ही भैरूंजी की 'जात' भी दी जाती है, जिसके लिये दूर-दूर से भक्त यात्री अपनी मनौती के अनुसार लोकदेवता के 'थान' पर आकर श्रद्धा की भेंट चढ़ाते हैं।

राजस्थान में 'माता' के सेवक भैरव को 'लूंकड़ियो' भी कहा जाता है, जो हिमाचल प्रदेश के 'लौंकड़ा' से समानता रखता है। यही नाम ब्रज प्रदेश में 'लांगुर' के रूप में लोकप्रचलित है। राजस्थानी 'ख्यात' ग्रन्थों में अनेक व्यक्तियों का नाम भैरूं के समान ही 'लूंको' भी मिलता है। अब भी राजस्थान में अनेक व्यक्ति लूंगो, लूंगीदान, लूंगीराम आदि नामों से पुकारे जाते हैं। यह सब लोकदेवता 'लूंकड़ियोजी' की महिमा का ही प्रकाशन है।

माता सम्बन्धी राजस्थानी लोकगीतों में भी 'लूंकड़ियो' उपस्थित है। उदाहरण देखिये—

ऊंचै सै पीपल घल्यो ए हींडोलो,
तो हींडै म्हारी आद-भवानी, मेरी माय।

हलवां सी झोटो देई रै लूंकड़िया,
म्हारी मैमद खेह भरीजै, मेरी माय।

ऊंची सो चढ़ कर देख रै लूंकड़िया,
म्हारै कुण कुण जाती आवै, मेरी माय।

भैरव का अतिमात्रा में मदपान लोकविश्रुत है। यही कारण है कि राजस्थानी लोकगीतो में उसे वारम्वार मतवालो भैरूं के रूप में स्मरण किया जाता है—

जी जाटणी कै रंगरंगीलो काचो दूधो प्यावै,
ठुकराणी कै सदा रगीलो मद का प्याला प्यावै,
भैरूं नै भोत लडावै, मतवाला भैरूं।

यही स्थिति 'लांगुर' के मदपान के सम्बन्ध में प्रकट की गई है—'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा।'

'डिंगल-कोष' में भैरव नाम इस प्रकार दिये गये है—

(चव चावडा रा चेलका भैरव भैंरू (भाख)।
भैवांण (अर) भैरवा (एम, खेतला (आख) ॥३१०॥
चामुंड नन्दन (चवो) जेम कमाली जोध।
खेतपाल (आखो वले) संभु लांगड़ा सोध ॥३११॥
(कविवर मुरारिदान विरचित डिंगल कोष)

अब प्रश्न रहता है—'लूंको' (अथवा लूंकड़ियो) शब्द की व्युत्पत्ति का।

'चौसठ जोगनी' के समान ही 'बावन भैरू' लोक-प्रसिद्ध हैं। 'बावन भैरू' को 'बावन वीर' भी कहा जाता है। अनेक ग्रन्थों में इनके नामों की सूचियां मिलती हैं परन्तु सर्वत्र ये नाम समान नहीं हैं और भिन्न-भिन्न सूचियों में भिन्न-भिन्न रूपों में पाए जाते हैं।[1] ध्यान रखना चाहिए कि लम्बे कान होने के कारण भैरव का एक नाम गोकर्ण के समान 'लम्बकर्ण' भी है।[2]

व्यक्ति के नाम को संक्षिप्त रूप देने की प्रवृत्ति सर्वत्र है। राजस्थान में यह प्रवृत्ति विशेष रही है और अब भी है। इस विषय में कुछ उदाहरण देखिये—

प्रद्युम्न	पज्जूण	पूंजो
भीष्म	भीखम	भीखो
पंचानन	पच्चायण	पांचो
ध्रूवभट्ट	घूहड़	घूड़ो
गोवर्द्धन	गोरधन	गोधो
त्रिविक्रम	टीकम	टीको
शल्य	सल्ल, सल्ह	सल्हो, साल्हो
लम्बकर्ण	लूंकण[3]	लूंको, लूंगो

इस प्रकार स्पष्ट है कि लूंको (लूंगो), लूंकण आदि लम्बकर्ण शब्द के ही लोक-प्रचलित रूप हैं, जो प्रसंगानुसार भैरव देव का वाचक है।"

---

1 विशेष जानकारी हेतु द्रष्टव्य—शोध पत्रिका (१४/३) में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का 'बावन वीर नामावली' शीर्षक लेख।

2 गोकर्ण—Name of one of Siva's attendants. लम्बकर्ण—Name of one of Siva's attendants. (A Sanskrit English Dictionary, Sir M. Monier Williams.)

3 प्रसिद्ध नीतिग्रन्थ पञ्चतन्त्र में गंगदत्त मेंढ़क और लम्बकर्ण गदहे की दो कहानियां हैं, जो मगरमच्छ और बन्दर विषयक मूल कथा में प्रसंग से कही जाती हैं। इन दोनों कहानियों से सम्बन्धित एक पद्य राजस्थान में इस प्रकार लोक-प्रचलित है—

घण मंगायो कालजो, पीव ल्याकर द्यो।
मैं गंगादत मींडको, तूं लूंकण गद्धो॥

'लांगुर' पर ही एक प्रतिक्रिया जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के रीडर डॉ० जगदीश शर्मा 'कनक' ने मेरे आग्रह पर भेजी जो इस प्रकार है —

"लाँगुर के सम्बन्ध में सामग्री दूर-दूर से जुटाई गई है और उसके सम्बन्ध में अपने अनुमानों की पुष्टि के लिए आपने अच्छे तर्क दिए हैं, किन्तु एक महत्वपूर्ण क्षेत्र—करौली आपकी दृष्टि से बच रहा है। जयपुर और आगरा दोनों नगरों से यह स्थान निकट है और इसलिए इसका आपकी दृष्टि से वंचित रह जाना कुछ आश्चर्यजनक ही है। इस क्षेत्र की जानकारी से आपके निष्कर्षों की दिशा में अन्तर अवश्य आता, ऐसा मेरा विश्वास है। अतएव मैं इस सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ आप को भेजना चाहता हूँ।

करौली से १६ मील दक्षिण में कैलादेवी का प्रसिद्ध मंदिर है जहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान और उत्तर-पश्चिम मध्यप्रदेश से बड़ी संख्या में यात्री आते हैं। कैलादेवी के मंदिर के ठीक सामने लाँगुर का मंदिर है। लाँगुर देवी का सेवक, भक्त और भाई समझा जाता है। देवी की प्रसन्नता के लिए उसकी प्रसन्नता आवश्यक समझी जाती है।

लाँगुर की मूर्ति वस्तुतः हनुमानजी की मूर्ति है। लाँगुर ज्यों का त्यों हनुमान है। इसलिए इस सम्बन्ध में शंका के लिए कोई अवकाश नहीं है कि 'लाँगुर' की व्युत्पत्ति 'लांगूल' शब्द से हुई है।

'लाँगुर' सम्बन्धी गीत या तो भक्ति और मनौती से सम्बन्धित हैं या फिर उद्दाम रसिकता से। रसिकतापूर्ण गीतों में लाँगुर एक रसिया और दुर्दम पौरुष-सम्पन्न नायक के रूप में अंकित किया गया है। अनेक बार उसे नारी के रमणीत्व के लिए पौरुष की चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कुँवारे देवता हनुमान दुर्दम पौरुष के आश्रय के लिए सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि शीतलाष्टमी को, जब रात्रि के अंतिम प्रहर में गृहणियाँ शाम का पकाया भोजन लेकर शीतला माँ की पूजा के लिए करौली के बाजार से निकलती हैं तो चौराहों और सूनी पड़ी दूकानों पर सजाए गए लाँगुरिया की पूजा के लिए उन्हें पुकारा जाता है। पुकारने वाले या तो १०-१५ साल के बच्चे होते हैं या कुछ 'बाँके'। स्त्रियों को लाँगुरिया की पूजा के लिए पुकारते समय अनेक बार अभद्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है और अश्लील प्रस्ताव भी किए जाते हैं। लाँगुर की ये मूर्तियाँ वैसी नहीं होतीं जैसी कैलादेवी के मंदिर के सामने की मूर्ति होती है। ये मूर्तियाँ करौली की परम्परागत (मध्यकालीन) वेशभूषा में सजे तरुण की मूर्ति होती है। यह मूर्ति बहुत

ही रंगीली (Colourful) होती है। लगता है कि इन मूर्तियों में लांगुर का अपने उद्गम लांगूल से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है, और यह उसके गुणधर्म—उद्दाम एवं रसिकतापूर्ण तारुण्य का प्रतीक रह गया है, पूर्ण मानव रूप में।

शीतलाष्टमी के अवसर पर लांगुर के बहाने किए जाने वाले अश्लील प्रस्ताव, अभद्र शब्दों के प्रयोग और उसकी मूर्ति के रंगीलेपन से यही प्रकट होता है कि यह देवता मातृशक्ति की उपासना के पूरक रूप में उद्दाम-यौवन के पुरुष पक्ष का प्रतीक है जो हमारे सामूहिक अवचेतन से उत्पन्न हुआ है।"

उक्त दोनों प्रतिक्रियाओं में कुछ नई सूचनाएँ और कुछ नये विचार हैं पर यथार्थ यह है कि समस्या का समाधान नहीं होता। केलादेवी के मंदिर के सामने हनुमान के मंदिर को 'लांगूर' का मंदिर कहा जाता है यह केवल साहचर्य के कारण ही है क्योंकि उसी क्षेत्र में करौली में शीतलाष्टमी पर जो लांगूर के प्रतिरूप खड़े किये जाते हैं उनमें हनुमानजी का रूप नहीं रहता। लांगुर के जितने भी गीत हैं और उनमें जो विवरण है उनमें हनुमानजी का आभास भी नहीं है और उनका कोई प्रसिद्ध पर्याय जैसे 'बजरंगी' आदि भी उनमें नहीं आता। पूंछ का भी कहीं उल्लेख नहीं। तब लांगुर को हनुमान कैसे माना जा सकता है। लांगुर भैरव हो सकते हैं क्योंकि भैरव केवल शिव के वीर या गण ही नहीं, वे स्वयं भी शिव हैं पर यहां भी एक समस्या है—भैंरोंजी को लूंकड़ियो लम्बकर्ण होने के कारण कहा जाता है। प्रश्न यह है कि भैरों जैसे प्रचलित शब्द को छोड़कर लम्बकर्ण वाले लूंकडियों को जनमानस ने कन्या लूंकड़ियो में क्यों प्रमुखता दी। क्यों लूंकड़ियो को एक अलग देवता माना गया? यह समस्या ही है जिस पर और अधिक अनुसंधान और अध्ययन अपेक्षित है।

इसी प्रकार इस पुस्तक के अन्य अध्यायों अथवा निबन्धों से भी ऐसी ही समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं। उनसे आगे अनुसंधान और अध्ययन के लिए प्रेरणा और आधार मिल सकेगा क्योंकि वास्तव में लोकवार्ता की किसी भी पगडंडी का ओर और छोर अभी नहीं दिखाई पड़ रहा। यों पगडंडी पर जितना भी चला जायगा उतना ही रोचक भी होगा और ज्ञान की उत्तेजना के लिए लाभप्रद भी।

मैं भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर के दोनों कर्णधारों—पद्मश्री सामरजी तथा डॉ. महेन्द्र भानावत के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि उन्होंने मेरी यह पुस्तक प्रकाशित कर मुझे कृतार्थ किया।

इन निबन्धों से जहाँ तहाँ अन्य विद्वानों के उद्धरण दिये गये हैं उन सबके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अन्तिम निबन्ध में अध्यापन के शास्त्रा

वाला अंश क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ के एक विद्यार्थी द्वारा लिखा गया था पर उनका शुभ नाम मुझे स्मरण नहीं रहा, न उन्होंने उस लेख में ही कहीं अपना नाम लिखा था अतः बिना नाम दिये ही उनका लेख सम्मिलित किया गया है अतः उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

—डॉ० सत्येन्द्र

1

लोकनाट्य : ऐतिहासिक दर्शन

०

लोकनाट्य का लोकमंच से सम्बन्ध है। इन दोनों से लोकरंग प्रस्तुत होता है। लोकनाट्य का आधार कोई लोक-नाटक होता है और यह प्रतीत होता है कि लोकमानस से ओतप्रोत लोकनाट्य अनादि प्रागैतिहासिक काल में जन्म लेकर काल के विशाल अवरोधों को चीरता हुआ आज तक लोक में प्रचलित है और उसी लोकनाट्य के ऊपर नाटक और उसका नाट्यशास्त्र खड़ा होता है।

वस्तुतः प्रत्येक शास्त्र का निर्माण कला-विकास के उन्नत शिखर पर पहुंचने के उपरान्त ही होता है। भारतीय नाट्य-शास्त्र इसका अपवाद नहीं है। कितना विलक्षण कला-विकास और उसका सूक्ष्म निरूपण और विश्लेषण नाट्यशास्त्र में है!

नाटक में प्रयुक्त प्रत्येक कला और शिल्प के उत्कर्ष का ही नहीं वरन् उसके स्थिर स्तर का भी भान नाट्यशास्त्र से हमें होता है।[1]

स्पष्ट है कि नाटकों के इतिहास में यह कम से कम पांचवीं अवस्था हो सकती है। यथा—प्रथम अवस्था आदिम अवस्था है। इस अवस्था के अंतिम छोर पर मनुष्य ने कहानी कहना सीख लिया था, गीत भी गाने लगा था तथा नृत्य भी करने लगा था[2] पर यह सब कुछ ऐसे था जैसे कोकिल गाती है और मयूर

---

1 इधर लोकनाट्यों के अध्ययन की ओर विद्वानों और अनुसंधानकर्त्ताओं की दृष्टि गयी है। आगरा विश्वविद्यालय के क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ से एक अनुसंधान कार्य आगरा की भगतों पर कुछ वर्ष पूर्व हो चुका था। माच पर मध्य प्रदेश के विक्रम विश्वविद्यालय से अनुसंधान हुआ था, ऐसा मुझे स्मरण आता है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से हाथरस के सांगों पर अभी हाल में ही एक शोध-प्रबंध प्रेषित किया गया है। इधर हिन्दी में जगदीशचन्द्र माथुर और डा० दशरथ ओझा ने परंपराशील नाट्यों पर अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। गवरी नाट्य पर डा० महेन्द्र भानावत ने उदयपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। उदयपुर का लोक-कला मंडल श्री देवीलाल सामर के निर्देशन में लोकनाट्यों पर अनुसंधान ही नहीं कर रहा, उनका पुनरुद्धार कर उन्हें जीवंत भी बना रहा है। अखिल भारतीय दृष्टि से लोकनाट्यों का अध्ययन भी हिन्दी में होने लगा है। लोकनाट्य और लोकमंच पर आज पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। हम जब इस विषय पर पुनर्विचार करते हैं तो हमें वेदों और नाट्यशास्त्र में भी कुछ संकेत मिलते प्रतीत होते हैं। अब तक के विद्वानों ने उन संकेतों को अपनी तरह ही ग्रहण किया है।

2 जी० एस० घुरे ने लिखा है कि—Some kind of dance would appear to have been an early need of man. How early in his cultural evolution man executed dance of some kind and in connection with what life ? Activity, we can not positivily state. But we know it definitely from the art effects of the upper Palaeolithic Age, i. e. of about 25,000 or 20,000 B. C., that fairly elaborate dances, both sole—masqared and collective and even mixed once, were indulged in by the people of Europe in that age.

—Bharat Natya and its Costume, 1958. P. 2.

नाचता है अर्थात् प्रकृति के अवयव की तरह, उससे तादात्म्यपूर्वक। उसकी कहानी भी मनुष्य से अधिक प्रकृति के व्यापारों की थी। वह और प्रकृति के विविध तत्व एक कुटुम्ब के सदस्य की भांति व्यापार-विद्ध थे। अतः प्रकृति के तत्वों से तादात्म्य करते हुए मानव ने उनकी क्रियाओं में अपने तद्रूप अभेद से गति, घटना और उनसे कहानी निर्मित होती देखी। मानव सहज ही अनुकरणप्रिय है। ये सभी अभिव्यक्तियां अत्यन्त सहज थीं। उतनी ही प्रबलता से अंतःप्रेरित थीं। यहां उसकी शारीरिक क्रियाओं और क्रीड़ाओं को अभिनय नहीं माना जा सकता। इन अनुकृत क्रियाओं को भी अभिनय नहीं माना जा सकता। इन क्रियाओं को भी वह भोग रहा था, उन्हीं की तरह जिनका वह अनुकरण कर रहा था। यहां गीत था, उसके साथ ही नृत्य भी था और नाट्य भी था। गीत या नृत्य की प्रधानता थी पर नाट्य भी संयुक्त था।

दूसरी अवस्था वह है जब मनुष्य ने अपनी अस्मिता की चेतना प्राप्त की और प्रकृति-तत्वों में एक अन्य सत्ता का आभास पाया। इन प्रकृति-तत्वों का नामकरण वह पहले ही कर चुका था। अब उनमें उसने वर्ग देखे और उनके कार्यों के रूप और परिणाम के आधार पर वह उन्हें देवता या दानव, सुर या असुर कहने लगा। उनके साथ उसके दुःख-सुख के सम्बन्ध या नाते स्थापित हुए। उसने आह्लादक तत्वों की स्तुति की और उनका अभिनंदन किया तथा स्वागत किया। जो अनाह्लादक थे उनके निवारण की इच्छा प्रकट की। यहाँ उसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ा।

लुई एच ग्रे ने अपने 'नाटक' नामक निबन्ध की भूमिका में बताया है—The evidence at our command seems to show that for primitive man life was by no means simple delight or poetic outlook upon the beauties of Nature, but rather a matter of deadly earnest, a struggle for existence and a terror of mishap of which we, in modern days, can scarcely form an adequate conception.[1]

देवासुर संग्राम भी इसी भूमि पर उभरा तथा परी-कहानियाँ (fairy tales) भी यहीं पैदा हुईं। यहीं मनुष्य ने रति और भय के मूलभूत स्थायी भावों की अनुभूति की और 'एकोऽहं बहुस्याम्' तथा 'त्राहि माम्—त्राहि माम्' की भावना उद्‌भूत हुई। उसने प्रकृति में व्यापारों को अभिधान ही प्रदान नहीं किया, उनके अर्थ को भावतत्व से भी संयुक्त किया। उषा को, जो उसके लिए देवी थी, उसने

---

[1] Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol. IV, P. 886.

भागते हुए देखा और उसका पीछा करते हुए सूर्य को देखा। उसका मुँह लाल, अनुराग से लाल। इन कृत्यों का भी अनुकरण किया गया। अब यह अनुकरण स्वयं स्फूर्त नहीं था। अब यह अनुकरण था।

तब तीसरी अवस्था में मनुष्य इस प्रयत्न में लगा कि वह इन देवों और दानवों पर किसी प्रकार अधिकार प्राप्त करे। एक ओर उसने लिरिक (गीत–स्तुति) से उन्हें विमोहित कर वश में करना चाहा तो दूसरी ओर अपनी आदिम अभेदवादी अनुभूति के सहारे 'अनुकृति' से उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जैसे उनकी अनुकृति ही देवता हो। अनुकृति करली मानो देवता को पा लिया या किसी भी पदार्थ को इस विधि से पाया जा सकता है, यह आस्था उदित हुई। यहाँ टोना (मैजिक) और धर्म दोनों साथ–साथ उदित हुए। अब देवताओं की कहानियाँ जटिल होने लगीं। वे परी कहानी से देव दानवों की पुराणगाथाएँ (मिथ) होने लगीं। जैसे व्यवहार में वैसे ही कहानियों में उन टोनों की कल्पना हुई जिनसे देवताओं और दानवों को वश में किया जा सकता था और उनसे अभिप्रेत कार्य कराया जा सकता था।

चौथी अवस्था में हम मानव के हाथ में वह टोना आते देखते हैं जिससे वह देवताओं का आह्वान कर सकता है। उनके गुणों एवं उनके आदेश को स्वयं अपने अन्दर आवेष्ठित कर सकता था। इसी भूमि पर मानव में भी देवत्व प्रतिष्ठित होने लगा, मानव में देवता का अवतार होने लगा। इस उपलब्धि से मानव महानकर्मा (हीरो) बना। देव-कथा और मानव-कथा मिलजुलकर चली। यहीं 'एपिक' (पुराण महाकाव्य) का जन्म हुआ। यज्ञ और टोने आदि आनुष्ठानिक तंत्र की उद्भावना की गयी। इन सब के साथ समग्र मानवीय अभिव्यक्तियों को सजाकर यज्ञ को एक महान कर्म की संज्ञा दी गयी।

यजुर्वेद में विविध कलावेत्ताओं की नियुक्ति का परामर्श इसी उद्देश्य से किया गया है।[1] इसके अर्थ हैं कि वे सभी कलाएँ अलग-अलग समुदायों द्वारा अलग-अलग विकसित की गयीं और यज्ञ के माध्यम से उन्हें एक उद्देश्य विशेष के लिए सुनियोजित किया गया।

---

[1] नृत्ताय सूत गीताय शैलूषं धर्म्माय सभाचरन्नरिष्ठायै भीमलन्नर्म्माय रेभं हासय कारिमानन्दाय स्त्रीषखम्प्रमदे कुमारी पुत्र मेधायं रथकारन्धैर्ययाय तक्षाणाम।

शुक्ल यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता, ३०वाँ अध्याय पुरुषमेध प्रकरणः।
—पं० सीताराम चतुर्वेदी; भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ० ५।

रास नृत्य ऋग्वेद् को भी ज्ञात था, यह संभावना डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने बतायी है। वे लिखते हैं कि हम ऋग्वेद् में आयी हुई नृत्य सम्बन्धी सामग्री पर ध्यान दें तो उसका यह उल्लेख ध्यान देने योग्य है:—

यद्दे वा अदः सलिले सुसंरब्धाः अतिष्ठत ।
अत्रावो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरजायत ॥ ऋ० १०।७२।६ ॥

अर्थात सृष्टि के आरंभ में एक महान् सलिल समुद्र था। उसमें देवता एक दूसरे से हाथ मिलाकर (सुसंरब्धाः=शृंखला बाँध कर) ठहरे हुए थे। उनके नृत्य या तालवद्ध चरण-क्षोभ से जो तीव्र धूल छा गयी वही यह विश्व है। अदिति माता के सात पुत्र ही वे देव थे जो इस प्रकार का सम्मिलित नृत्य कर रहे थे। श्री कुमारस्वामी ने सुसंरब्धाः का यही अर्थ किया है और सूक्त में वर्णित विषय से वह सुसंगत है, अर्थात ऐसा नृत्य जिसमें कई नर्तक परस्पर छंदोमय भाव से नृत्य करते हुए चरणों की ताल से रेणु का उत्थापन करें। यह वर्णन रास संज्ञक मण्डली-नृत्य या सावर्त चरण सचालन की ओर ही संकेत करता जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में मण्डलाकार रास-नृत्य की लोक परम्परा का दर्शन संस्कृति के आरंभिक युग में ही मिल जाता है।[1]

वेदकालीन इस सांस्कृतिक स्थिति में वेदों के संवादों का क्या यह अर्थ नहीं हो सकता है कि ये लोकनाट्य के अंश रहे होंगे जिन्हें ऋषियों ने परम्परा से सुरिक्षत रखा और नाट्यशास्त्र ने यहीं से इन्हें लेकर शास्त्रीय रूप देकर नाटकों में सम्मिलित किया। इन चारों अवस्थाओं में से मानव की अनुकरणप्रियता पहले तादात्म्यभाव से फिर पराकर्षण भाव से, तब वशीकरण भाव से, और तदनतर स्वयंभू भाव से प्रकट होती रही। लोककृति का शास्त्रकार ने सूक्ष्म विश्लेषण करके कला तत्व के समावेश के लिए सभावनाएँ पैदा करदीं ।

नाट्यशास्त्र में उल्लेख है कि पंचमवेद-नाट्यवेद का निर्माण ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर किया।[2] पाठ्य का अर्थ 'सवाद' लगाया जाता है। ऋग्वेद में कई संवाद हैं किन्तु उसमें संवाद ही हैं, उनके प्रसंग नहीं हैं। प्रत्येक 'संवाद' की भूमिका किसी न किसी कथा-प्रसंग से जुड़ी है जिसे आगे के वैदिक साहित्य में खोला गया है। यथा 'पुरुरवा उर्वशी'

---

1 डा० दशरथ ओझा एवं डा० दशरथ शर्मा; रास और रासान्वयी काव्य, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रस्तावना, पृष्ठ १२।

2 जग्राह पाठ्यंऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ (नाट्यशास्त्र, १-१७)।

पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ में 'रासलीला के विदेशी दर्शक' शीर्षक निवन्ध में श्री नारविन हईन हेवन ने विदेशियों के जो विवरण दिये हैं, उनके ये अंश द्रष्टव्य हैं—

टाड ने वताया है कि दौलतराव सिंधिया के दरवार में जन्माष्टमी के अवसर पर रासधारी मथुरा से आया करते थे।

टामस डूएट ब्रोटन ने १८०९ के एक पत्र में उदयपुर की उत्तरी सीमा पर रुपहली नामक स्थान पर पड़े माधोजी सिंधिया के कैम्प में जन्माष्टमी के अवसर पर लिखा कि मथुरा से रासधारी आये थे। रास के लिए एक शामियाना लगवाया गया। जिस शामियाने में हमें विठाया गया था वह १५०फीट लम्वा था। वह तीन भागों में विभाजित था। वांसों और वल्लियों पर रंगीन कागज चढ़ाकर एक वड़ी वाड़ खड़ी कर दी गई थी जिस पर दीपक जल रहे थे। सामने दो फीट ऊंचा मंच था। इसके स्तम्भ और शिविकाएं भली प्रकार चित्र-वेष्ठित थीं। इसे सिंहासन कहते थे। इसके मध्य में फूलडोल था। फूलडोल से पुष्प, हीरक रत्न और वहुमूल्य मणियां सुसज्जित थीं। पुष्पगुच्छ, पुष्पमालाएं फूलडोल में विहंसते हुए वालगोविंद को झूला (ढकेल) रही थीं। पंडितों, व्राह्मणों का समुदाय अर्चना कर रहा था। कुछ व्यक्ति पंखा खींच रहे थे। शामियाने का मध्य भाग नर्तकों के लिए छोड़ दिया गया था। शेष दोनों ओर का स्थल दर्शकों से परिपूर्ण था।

१८७४ का एक उल्लेख एफ० एस० ग्राउस द्वारा 'मथुरा मैमायर्स' (गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहावाद), में दिया जो इस प्रकार है—

व्राह्मणों का एक वर्ग जो मुख्यतः करहला और पिसाये के ग्रामों में निवास करता है और जिनका मुख्य कार्य रासलीलाओं का निरीक्षण है। रास अलिखित

फुटनोट पीछे पृष्ठ का—

मनीपुर की रासलीला में शोमनिक और ग्रंथिक मिलते हैं।

Vocal duets of the two women side-singers, which relieve the performers from continuous singing and enable them to gesticulate more freely. These lead side singers generally sing the arias of Radha. —The Dance in India, P. 136.

ऐसे ही गायक कृष्ण के लिए होते हैं। यहाँ लेखक ने भूल की है। वह यह मानकर चला है कि दोनों की वार्ता मूल में अभिनेता करते थे। यथार्थ यह है कि मूल में पार्श्वगायिकाएँ और गायक अभिनेताओं का वाचिक अभिनय करते थे वाद में अभिनेता स्वयं वात करते थे।

धार्मिक रूपक है जिसमें कृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाएं व्यक्त होती हैं। यह मध्यकालीन यूरोप के मिरेकिल-प्लेज के समरूप है। सम्पूर्ण रास एक या उससे अधिक समय में समाप्त होता है। प्रत्येक दृश्य अपने मौलिक रूप में मौलिक स्थान पर प्रदर्शित होता है। जिस दृश्य को बड़े सौभाग्य से मैं देख सका, विवाह का दृश्य था जो संकेत में व्यक्त किया गया था। रंगमंच के स्थान पर एक वाटिका थी। पृष्ठभूमि में एक लाल पत्थर का मंदिर था। ऊपर पूर्णिमा का चंद्रमा था। सामने से अनेकों दीप–रश्मियों का प्रकाश पात्रों के मुख पर बिखरकर एक अपूर्व दीप्ति फैला देता था। एक स्थान पर ग्राउस ने यह भी लिखा है कि रासलीला के अभिनेता मूक अभिनय करते थे और मंडली का स्वामी कथोपकथन की पूर्ति करता था।[1] यहां अभिनेता शोभनिक है। मंडली का स्वामी ग्रंथिक है। इसमें पतंजलि के समय से आज तक की परम्परा मिल जाती है।

डा० श्याम परमार ने 'रासलीला' शीर्षक निवन्ध में 'साहित्यकोश' में दी गयी टिप्पणी के आधार पर 'रासलीला' का जो विधान दिया है वह पारसी स्टेज से प्रभावित मंचवाली नाटक मडलियों का सा है।[2]

परम्परागत 'रास' में नेपथ्य का पर्दा नहीं रहता। दर्शकों से घिरा खुला मंच रहता है।[3] एक तख्त पर कृष्ण-राधिका के लिए आसन रहते हैं। आरती से पूर्व एक चादर का पर्दा उनके आगे कर दिया जाता है।[4] आरती के उपरान्त

---

1 पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ७१३-७१६।

2 लोकरंग, पृ० ३३।

3 The stage, on the same level as the audience, is quite bare except for a small square Platform on which there are two seats, to Radha and Krishna. —Indian dances, Rina Singha and Reginaldy Masse P. 165.

4 इस पर्दे का विधान कथाकली में भी मिलता है—

Behind it, there is a simply patterned, rectangular silk curtain (Thelissira) held by two men dressed like ordinary chaprasis. During scenes the curtain is dropped to the floor and removed The men who held it set about their other jobs of the evneninig.

—The Dance in India, P. 65-66.

व्रज की रासलीला के सम्बन्ध में भी यही बात बताई गई है—

The only curtain used is held up by two men when a special dramatic effect is required, such as before the Jhankis or etc.

—Indian Dances, (1967), P. 165.

संवाद । पुरुरवा मानव-संतान है । उर्वशी देवलोक की अप्सरा है । दोनों की प्रेमकथा अत्यंत प्रसिद्ध है । अब प्रश्न यह है कि वेदों में और मूलतः ऋग्वेद में कथा क्यों नहीं, संवाद ही क्यों हैं ? स्पष्ट है कि ये उस काल में अति प्रचलित कथा-प्रसंगों में से लिये गये संवाद हैं । ये संवाद भी लोक-प्रचलित रहे होंगे । वहीं से सुनकर वैदिक साहित्यवेत्ताओं अर्थात् ऋषियों ने इन्हें ग्रहण किया और इन्हें संस्कृत रूप दिया । तभी ये 'श्रुति' हैं और ये बहुत पहले से प्रचलित रहे । उनके कर्त्ताओं का नाम विदित नहीं होने से ये अपौरुषेय माने गये ।

ऋषि को द्रष्टा माना गया है । द्रष्टा 'संवाद' को देखता है अर्थात् संवाद दृश्य हैं । यदि संवाद काव्य है तो वह काव्य को दृश्य रूप में देखता है । प्रत्येक संवाद किसी न किसी आख्यान या कथा से सम्बद्ध है, यह निस्संदेह है तो कथा रूप में जो ऋषियों ने देखा उसी में से लिया हुआ यह संवाद है । ऋषि ने सचमुच काव्य को देखा । उसने लोकमंच में से उन अंशों को चुना जिनमें उन्हें किसी महान काव्यात्मा की संभावना दिखायी पड़ी । इस प्रकार उन्होंने जो देखा उस देखे महान् तत्व से युक्त करके उन संवादों को प्रस्तुत किया पर संभावना यही प्रतीत होती है कि ये संवाद विकास की उक्त अवस्थाओं में से किसी न किसी से सम्बन्धित हैं फलतः ये संवाद स्वयं लोकरंग की साक्षी प्रस्तुत करते हैं । इसके साथ ही वैदिक कर्मकाण्ड में कुछ ऐसे विधानों का समावेश है जिनकी प्रकृति नाटकीय है ।

कर्मकांड में केवल गीतों का गान या देवताओं का स्तुतिपाठ ही नहीं सम्मिलित था, उसके अन्तर्गत अनुष्ठानों का एक जटिल चक्र था जिनमें से कुछ में नाटकीय प्रदर्शन का तत्व विद्यमान था अर्थात् संस्कारकर्त्ता उस समय के लिए अपने व्यक्तित्व से भिन्न रूप धारण करते थे ।[1] उदाहरण—कतिपय विवरणों में सोम-विक्रेता अनुष्ठान की समाप्ति पर दाम से वंचित किया गया है और पीटा गया है या ढेलों से मारा गया है । ऐसी दशा में यह संदेह नहीं हो सकता कि यहां पर सोम—व्यापार के निषेध का प्रतिबिम्ब नहीं बल्कि संरक्षक गंधर्वों से सोम प्राप्त करने का नाटकीय वृत्तान्त मिलता है ।[2]

महाव्रत में 'अनुष्ठान का एक आवश्यक अंश है—गौर वर्ण वैश्य, और कृष्ण वर्ण शूद्र का एक चिकनी सफेद खाल के लिए संघर्ष जो अंततोगत्वा विजयी वैश्य के पल्ले पड़ती है ।' .... वस्तुतः हमें एक आदिम नाटकीय कर्मकांड मिलता है और कहा जा सकता है कि वह सारे वैदिक युग में लोकप्रिय था । उसी अनुष्ठान

---

1 संस्कृत नाटक, कीथ, पृ० १३ ।

2 पृ० १३ ।

में एक विचित्र उपाख्यान की विशेषता पायी जाती है; एक दूसरे को भद्दी गाली देते हुए एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी तथा गणिका का प्रवेश कराया गया है[1] तथा महाव्रत के अवसर पर फसल के हेतु पानी बरसाने तथा जन-समूह की समृद्धि प्राप्ति के लिए बालाएँ टोटके के रूप में आग के चारों ओर नृत्य करती हैं ।[2]

फलतः यह भी सिद्ध होता है कि रूप—आरोप और अभिनय भी वैदिक युग में पूर्णतः प्रचलित थे । इनका सादृश्य आदिम कर्मकांडों से भी विद्वानों ने लक्षित किया है । आदि कर्मकांडों का सादृश्य वैदिक जटिल कर्मकांडों में केवल एक निष्कर्ष की प्रेरणा देता है कि वैदिक नाटकीय कर्मकांडों का प्रेरणास्रोत आदिम जन ही है अतः वैदिक साहित्य की पृष्ठभूमि में लोकनाट्यों की परम्परा का संकेत माना जाना चाहिये । यहाँ वेदों की पृष्ठभूमि में हमें संवाद—पाठ्य संवाद प्रधान नाट्य, संगीत प्रधान नाट्य और नृत्य-नाट्य तीनों का आभास मिलता है । फिर पतंजलि से शोभनिक, चित्रकार और ग्रंथिक का पता भी चलता है । शोभनिक अभिनय द्वारा कंसवध और बालिवध प्रत्यक्ष दिखाते हैं । चित्रकार चित्र में कंसवध और बालिवध कराते हैं तथा ग्रंथिक जो शब्दों के द्वारा (वाचिक अभिनय द्वारा) कंसवध और बालिवध का वर्णन करते हैं । इनमें हमें वर्तमान 'रामलीला' के प्राचीन बीज के दर्शन हो सकते हैं । बालिवध का सम्बन्ध रामलीला से और कंसवध का सम्बन्ध कृष्णलीला से (रास से नहीं) है । रामनारायण अग्रवाल ने 'रामलीला' शीर्षक लेख में लिखा है कि 'अधिकांश रामलीलाओं में मानस का पाठ तबले और हारमोनियम आदि साजों पर व्यासजी ही करते हैं और पात्र अभिनय की शैली से उनका अर्थ करते जाते हैं ।[3] स्पष्ट है कि व्यासजी पुराने ग्रंथिक हैं और पात्र पुराने शोभनिक । यही स्थिति कृष्णलीला की भी है । कृष्णलीला के समाजी ग्रंथिक हैं और पात्र शोभनिक ।[4]

---

[1] संस्कृत नाटक, कीथ, पृ० १४ ।

[2] वही, पृ० १४ ।

[3] डॉ० महेन्द्र भानावत द्वारा सम्पादित 'लोकरंग' में प्रकाशित लेख, पृ० २५ ।

[4] दक्षिण में कथाकली नृत्य में भी गायक और समाजी ग्रंथिक की भांति हैं और अभिनेता शोभनिक हैं ।

Singers and musicians became separate parts of drama, and Kathakali turned into a kind of dumb show, an animation set to an accompanying orchestra's descriptive words and music.

—The dance in India, Faubion Bowers (1953), P.68.

फुटनोट शेष आगे पृष्ठ पर ।

राधा-कृष्ण और गोपियों का रास नृत्य अवश्य होता है। रास-नृत्य के बाद ही विशेष लीला की जाती है। कृष्ण-राधा के सिंहासन के सामने कुछ स्थान नृत्य और नाट्य के लिए खाली छोड़ दिया जाता है। दर्शक चारों ओर से घेर कर उस स्थान पर बैठते हैं। एक कोने में दर्शकों से आगे समाजी बैठते हैं। लीला के अभिनेताओं के साथ पद गायन में सामाजिकों में बैठे गायक भी गाते हैं। संवाद लिखित नहीं होते। वहीं यथावसर उद्भावित होते हैं अतः पर्दे के पीछे किसी निर्देशक की आवश्यकता नहीं रहती। निर्देशक तो जनता-दर्शकों के पास ही बैठता है।

इन रासलीलाओं में भी वस्तुतः सामाजिक गायक ग्रंथिक माने जायेंगे। वे नाट्य-नृत्य नहीं करते। अभिनेता या नर्तक पात्र शोभनिक हैं जो बहुधा अर्द्ध मूक अभिनय करते हैं। अतः महाभाष्य के शोभनिक तथा ग्रंथिक दोनों किन्हीं-किन्हीं रासकों और हल्लीशकों में महाभाष्य काल में रहे होंगे और इनमें कंस-वध तथा बालि-वध दिखाये जाते होंगे।

लोकरंग की यह एक परम्परा है जिसमें यह आभास स्पष्ट मिलता है कि लोकनृत्य में से ही लोकनाट्य का जन्म उस समय हुआ होगा जब गायकों का पृथक दल वादकों के पास पीठस्थ होकर रास गान करता होगा और विविध उद्दाम भावपूर्ण स्थलों पर नर्तकों में से कोई या कुछ भावानुकूल नाट्य मुद्राएं भी कर सकते होंगे। रासक,नाट्य-रासक,साटक,हल्लीशक आदि ऐसे ही रूपक उपरूपक हैं।

पतंजलि ने इसी प्रसंग में ग्रंथिकों के सम्बन्ध में एक और बात कही है।[1] कभी-कभी ग्रंथिक लोग दो दलों में विभाजित हो जाते थे। कुछ कंस-भक्त बनते और मुख काला कर लेते थे। कुछ कृष्ण-भक्त बनते और अपना मुख लाल रंग लेते थे। ग्रंथिक अर्थात् वाचिक अभिनेता या कथक दो दलों में बँट जाते थे। इस अंश का अर्थ पूरी तरह स्पष्ट नहीं है, तभी कुछ ने कुछ और कुछ ने कुछ अर्थ लगाया है। ग्रंथिकों में से कुछ कालमुख-काला मुख कर लेते थे। कुछ रक्तमुख-लाल मुख करते थे।[2] वे ऐसा मुंह रंगकर करते थे। रंग से रंगे

---

1 आतश्च सतो व्यामिश्रा हि दृश्यन्ते केचित् कंसभक्ता भवन्ति, केचिद्वासुदेवभक्ताः। वर्णान्यित्वं खल्वपि पुष्यन्ति केचित् कालमुखाः भवन्ति, केचित् रक्तमुखाः ।३।१।२।।

2 लोकाभिनयों में मुख रंगने के उदाहरण आज भी मिलते हैं। कथाकली नृत्य में नायक पच (pacha) कहलाते हैं अर्थात् हरे मुख वाले। उनका

फुटनोट शेष आगे पृष्ठ पर।

काले और लाल मुख वाले वर्ग को लेकर कई विवाद खड़े किये गये हैं। उनसे कई अर्थ निकाले गये हैं। कुछ भी अर्थ क्यों न किया जाय, इस वर्ग या रंग से मुख रंगने की बात का तथा ऐसे संवादों और नाट्यों का सम्बन्ध लोक-तात्विक स्थिति से निर्विवाद बैठता है। लोकमंच की परम्परा का संकेत इसमें है।

यह स्पष्ट है कि लोकमंच और लोकनाट्य का क्षेत्र ही मौलिक था। वहीं से मनीषियों ने उसे लेकर उसे साहित्यिक रूप दिया और शास्त्र में बांधा। यह तर्क कि नाटक का उदय धार्मिक अनुष्ठान से हुआ, लोकनाट्य और मंच की लोक-तात्विक स्थिति के लिए अर्थहीन है। बात यह है कि विचारकों ने भ्रम में पड़कर ऐसी बातें कही हैं। अनुष्ठान या कर्मकांड और धर्म एक बात नहीं। अनुष्ठान और कर्मकाण्ड में मनुष्य के अपने स्वरूप (fulfilment) की संप्राप्ति

फुटनोट पीछे पृष्ठ का—

वेष (मेकअप) हरे रंग का होता है। राक्षसों के मुख पर हरे पोत पर लाल अग्निशिखा जैसे टिपके और मुखाकृति के चारों ओर काली रेखाएँ बनाई जाती हैं। कुछ के मुख लाल पुते होते हैं और उन पर काली रेखायें खिची रहती हैं। अच्छे चरित्र जो अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होते हैं उनके मुख सफेद रंगे रहते हैं तथा उन पर नारंगी और काली रेखाएँ रहती हैं। धूर्त और ठग काले मुख के होते हैं जिन पर लाल धारियाँ पड़ी होती हैं।

—The Dance in India (1953).

इसी प्रकार राजस्थान के भीलों के गवरी नृत्य में भी रंगों का उपयोग किया जाता है। डा० महेन्द्र भानावत ने अपने निबन्ध गवरी में हमें बताया है कि या तो ये मुख गहरे रंगों से रंग दिये जाते हैं या फिर मुखौटे लगा दिये जाते हैं। राक्षस तथा दैत्य-दानवों के लिए गहरा नीला, चोरों के लिए काला, देव-देवियों के लिए लाल तथा जोगी साधुओं के लिए पीला रंग काम में लाया जाता है। ये सारे कलात्मक अंकन रूढ़िगत होते हैं।

—लोकरंग पृ०, १३३.

फाविअन बोवर्स ने इन रंगों का सामान्यतः यह अर्थ बताया है—

In general, green means godliness, white means spirituality, red means ambition and violence, black means evil and yellow means passivity.

—The Dance in India, P. 73.

निश्चय ही यह कथाकली के सम्बन्ध में बताया गया है।

और उपलब्धि के लिए किये गये सार्थक और निरर्थक सभी प्रयत्न आते हैं। धर्म उनमें एक विशेष चेतना से नया अर्थ देता है और तद्नुकूल उन्हें संशोधित भी करता है। बालक अनेकों कर्म और अनुष्ठान करता है। अपने आपको अभिव्यक्त करने के लिए और अपनी अस्मिता को प्राप्त करने के लिए इन कर्मों और अनुष्ठानों में अनुकृति तो रहती है पर धार्मिक चेतना नहीं रहती।

लोकनाट्यों के मूल में भी इसी प्रकार से मानव के वे प्रयत्न, कर्म या अनुष्ठान हैं जिनसे वह अपनी सत्ता, अस्तित्व अथवा अपनी अस्मिता को प्राप्त करना चाहता है। उसके यह प्रयत्न और अनुष्ठान उसके उस जीवन में से फूटे जिसमें उसका प्रकृति से उसके प्रत्येक व्यापार से तादात्म्य था। मानव-चेतना के विकास में उसे भेदक चेतना मिली तो उसके साथ अनजाने ही उन समस्त क्रियाओं और कर्मों में शेष विश्व के साथ विविध सम्बन्धों में ऐसा घनिष्ठ तारतम्य प्रतीत हुआ कि स्मरण मात्र से किसी को भी वह प्राप्त कर सकता है। भय और रति के भाव अब उभरने लगे थे और भय से रक्षा तथा रति से विस्तार की चाह उसमें होने लगी थी। ये ही अनुकृति कार्य आगे अनुष्ठान हो गये और जब प्रकृति को देवत्व प्रदान की स्थिति से आगे उस देवत्व के बीजों से पुराणगाथा (माइथालॉजी) ने जन्म ग्रहण किया तब धर्म (रिलीजन) ने जन्म लिया। अतः अनुष्ठान जीवनगत कर्मकांड का वह पक्ष है जिसमें मनुष्य की आदिम आस्था आज भी उसे यह मानने के लिए विवश करती है कि उसके करने से उसकी आत्मोपलब्धि यानी उसके जीवन के अस्तित्व के आवश्यक पदार्थ या तत्व उसे मिल सकेंगे और अवांछनीय का निवारण हो सकेगा। वस्तुतः क्रम यही है— अनुकृति, अनुष्ठान, जादुई तत्व, मिथ (धर्म गाथा) किसी देवतत्व युक्त होकर तथा धर्म। लेविस स्पेन्स ने भी 'द आउटलाइन्स ऑफ माइथालॉजी' के तृतीय अध्याय में 'द मेकिंग ऑफ मिथ' में किञ्चित हेर-फेर से यही कहा है। यह आनुष्ठानिक तत्व मनुष्य की समस्त अभिव्यक्तियों में मिलता है।

नाट्यशास्त्र से विदित होता है कि नाटक का कृतित्व धार्मिकता से सम्बद्ध नहीं था क्योंकि प्रथम नाटक किसी धार्मिक अभिप्राय से नहीं खेला गया था। वह केवल एक मेले के अवसर पर खेला गया था। मेला था 'इन्द्रध्वज' का। प्रथम नाटक देवासुरसंग्राम विषयक था। देवताओं के लिए देव-असुर संग्राम उनके युग की एक घटना मात्र थी। उसमे धार्मिकता का कोई तत्व नहीं था। मानवों के लिए उसमें 'धर्म' की भावना मानी जा सकती है, देवताओं में धार्मिक आस्था के कारण। 'इन्द्रध्वज' का मेला भी देवताओं के लिए मात्र विजयोत्सव था जिसमें वीर पूजा के तत्व हो सकते हैं पर वीर पूजागत धर्म-भावना (देव-

ताओं के स्तर पर) नहीं। पूर्वरंग आदि में जो अनुष्ठान-तत्व हैं, प्रथम नाटक में वह कुछ भी नहीं था। जर्जर पूजन भी बाद की बात है।

वास्तविक बात यह प्रतीत होती है कि वैदिक अनुष्ठानों का मूल भी लौकिक अनुष्ठानों में ही था। वे अनुष्ठान भी वहां से लेकर उन्हें एक सांस्कृतिक और आभिजात्य स्तर वैदिक ऋषियों ने प्रदान किया तथा उनका विशदीकरण किया। यही ध्वनि निकलती है लेविस स्पेंस के इस कथन से —It is to the ritual drama, the allegorical enactment of the stories of how the gods created and governed the earth, peopled it and furnished it with game and grain, which were displayed at seasonal intervals, that we must look as the great source of myth, the original story of the gods [1]

अतः लोकनाटकों की परमपरा तब से आज तक चलती चली आयी है। लौकिक अनुष्ठानिक तत्व आज भी प्रायः प्रत्येक लोकनायक के साथ लगे हुए मिलते हैं। फ्रेज़र ने लिखा है—Yet if we could trace the drama of the civilisinations back to its origin, we might find that it had its roots in magical and religious ideas like those, which still mould and direct the masked dances of many savages.[2]

टोने से भी पूर्व की स्थिति अनुष्ठान (रिच्युअल) सम्बन्धी होती है। अनुष्ठान वे अनुकृत क्रियाएं और आचरण हैं जिन्हें करने से ही यह भावना पूरी होती है कि हमने अवसर और अपने रूपगत कर्म को सम्पन्न कर लिया है और शेष प्रकृत सृष्टि के साथ तादात्म्यपूर्वक यथार्थ उपलब्धि प्राप्त करली है। अतः फ्रेजर ने जब टोने और धर्म का उल्लेख किया तो वह एक सीढ़ी नीचे ही रह गया। नाटक का मूल उस आनुष्ठानिक प्रक्रिया में है जो प्रकृत अनुकृति होती है और यथार्थ में तो वह अनुकृति के भाव से नहीं वरन् प्रकृति की सम्पूर्ण गति में सहभागी उसी के एक अवयव की भांति होती हुई कुछ उद्भावित भेदक चेतना में अनुकृति लगने लगती है। बाद में इस अनुकृति में उसे टोने का आभास होने लगता है। फ्रेजर ने एक स्थान पर लिखा है—

---

1 The outlines of Mithology–chap. III. The making of Myth. p. 32.

2 The Golden Bough, Part VI. The Scapegoat, J.G. Frazer, p. 384.

For it is familiar tenet of magic that you can produce any desired effect by merely imitating it. And as they now explained the fluctuations of growth and decay, of reproduction, dissolution, by the marriage, the dath and the rebirth or revival of the gods, their religious or rather magical dramas turned in great measure on these themes.[1]

प्रश्न यह है कि ऐसे कृत्यों में टोने की भावना कब और किसने प्रकट की ? क्या मैंजिकल ड्रामाज़ के अभिनेता को ऐसा कुछ ज्ञान था ? नहीं तो, फ्रेजर महोदय कुछ आगे ही कहते हैं कि अभिनेता का काम तो अभिनय करना ही है बस । "His affair is to act not to analyse the motives of his action". ठीक यही स्थिति आनुष्ठानिक अनुकृति (रिच्युअलिस्टिक्स) की ही तो होती है । इसमें कहां मैंजिक और कहां रिलीजन है? टोने के तत्व की संज्ञा तो व्याख्याता के पास ही है । धार्मिक भावना अवश्य अभिनेता में हो सकती है किन्तु वह मात्र अनुष्ठानों में नहीं, केवल तभी आती है जब मनुष्य धार्मिक भावना सभ्यता के विकास के परिणामस्वरूप प्राप्त कर लेता है और यह वर्ग शीघ्र ही अलग छंट जाता है । लोक की आनुष्ठानिक वृत्ति स्वतंत्र भाव से चलती रहती है ।

निष्कर्ष यह है कि मानव के विकास में कृत्यों और गतियों की आनुष्ठानिक (आनुकृतिक) प्रकृति पहले आयी और यह टोने तथा धर्म से अधिक आदिम (प्रिमिटिव) है । फलतः सभ्यता के विकास के साथ टोने और धर्म के भाव जुड़ जाने और उनमें से कुछ के परिमार्जित हो आभिजात्य हो जाने पर भी लोकधारा प्रवाहित रही और आनुष्ठानिक प्रकृति भी साथ लगी चली आयी । यही कारण है कि आज भी प्रत्येक मंच स्थापना या नाट्यारम्भ से पूर्व कुछ अनुष्ठान किये जाते हैं । रामलीला और रासलीला में मुकुटपूजा और आरती ऐसे ही आनुष्ठानिक कृत्य हैं । मालवा में मच के लिए खंभ-स्थापना शुभ मुहूर्त में की जाती है । लालाचोला हरा धनिया, गुड़ और आम्रपल्लव आदि पूजन सामग्री के साथ होती है तथा पूर्वरंग जैसे अन्य कृत्य और देवी-देवताओं की स्तुतियां इसी वर्ग की हैं । ख्याल में तुर्रावाले शिव और कलंगीवाले शक्ति के पक्ष के हिन्दू सन्त और मुसलमान फकीर तुकनगिरि तथा शाहअली की शिष्य परम्परा के गेय विवादों का परिणाम है । प्रश्नोत्तर और कूट प्रश्न का समावेश अनुष्ठान की भूमि पर खड़े हैं । गवरी नाट्य–नृत्य तो भीलों का ही है । अतः आनुष्ठानिकता से भरा हुआ है । डा०

---

1. The Golden Bough, part IV, Adonis, Attis, Osiris, Vol. II, Page. 4.

महेन्द्र भानावत ने गवरी का उद्देश्य इन शब्दों में बताया है—गवरी धारण करने के पीछे मात्र मनोरंजन का उद्देश्य ही नहीं रहा है और न आजीविका उपार्जन की भावना ही दृष्टिगोचर होती है। इसका मुख्य उद्देश्य अपने धार्मिक कर्त्तव्य की सपूर्ति तथा बाबा भैरवनाथ (शिव) को रिझाकर गांव की खुशहाली, जाति की सुरक्षा एवं रोग, शोक, दुःख, दारिद्रय तथा दुर्भिक्ष से छुटकारा पाने का रहा है।[1] इसमें एक संशोधन अपेक्षित है। धार्मिक कर्त्तव्य की भावना यहां नहीं मानी जा सकती। वस्तुतः ये समस्त क्रियाएं अनुष्ठान-रूप हैं और परम्परा से अनुकृत हैं। इसमें अपने और समूह के अस्तित्व का आनुष्ठानिक भाग अन्तर्निहित है। आनुष्ठानिकता मूल में टोने रहित होती है, बादमें समें उटोना प्रतीत होने लगता है। साथ ही उसे धार्मिक आवरण से आवृत्त कर दिया जाता है अथवा अनुष्ठान को ही टोने के रूप में धार्मिक व्याख्यापूर्वक प्रस्तुत कर दिया जाता है। अनुष्ठानों का मिलना प्रत्येक लोकरंग में स्वाभाविक है।

यहां तक यह प्रतिपादित किया गया है कि लोकनाट्य नृत्त-नृत्य से आदिम काल में विकसित हुआ और ऐतिहासिक विकास में इस लोकनाट्य की प्राकृत धारा प्राकृत-भाषा की तरह प्रवाहित रही और मनीषियों ने इनको या इनमें से उपयोगी तत्वों को लेकर उन्हें परिमार्जित कर विशेष अभिप्राय से संयुक्त कर एक विशिष्ट स्तर प्रदान किया और उसे आभिजात्य बना दिया। यही बात नाट्यशास्त्र से नाटक निर्माण और खेलने के संबंध में सिद्ध होती है।

नाट्यशास्त्र में पचमवेद—नाट्यवेद की उत्पत्ति का रोचक इतिहास दिया हुआ है। वह यों है:—

१. त्रेतायुग के आरम्भ में देवताओं ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि वे पंचमवेद-नाटयवेद का निर्माण करें क्योंकि—

    (क) लोक ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध से विमूढ़ काम और लोभ के वशीभूत वासनाओं में प्रवृत्त सुख दुःख को अनुभव करने लगा है।

    (ख) जम्बूद्वीप देव, दानव, गंधर्व, राक्षस, यक्ष तथा महानागों से आक्रान्त हो गया है।

    (ग) वेदों का व्यवहार और श्रवण स्त्रियों और शूद्रों के द्वारा नहीं किया जाता। अतः सर्ववर्णोपयोगी क्रीडनीयक (मनोरंजन) जो दृश्य-श्रव्य हो आप बनायें।

---

1 लोकरंग, पृ० १३१-१३२।

२. 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी ने विचार किया कि मैं—

(क) धर्म, अर्थ और यश की प्राप्ति करने वाले, शास्त्र-वचनों के उपदेश सहित,

(ख) लोक-ज्ञान के संकलन से युक्त,

(ग) भविष्य में लोक के लिए सब कर्मों के मार्ग का निर्देश करने वाले,

(घ) सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ को व्यक्त करने वाले,

(ङ) सभी शिल्पों को प्रेरणा देने वाले,

(च) नाट्य पर आधारित,

(छ) इतिहास के सहित, पचमवेद की रचना करूंगा ।

३. ब्रह्माजी ने सभी वेदों का स्मरण किया और

(क) ऋग्वेद से पाठ,

(ख) सामवेद से गीत,

(ग) यजुर्वेद से अभिनय,

(घ) अथर्ववेद से रस,

(ङ) उपवेदों से भी आवश्यक सामग्री लेकर पंचम वेद का निर्माण किया ।

४. तब ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा—अब आप अपने

(क) कुशल,

(ख) ज्ञानवान,

(ग) वाणीचतुर तथा

(घ) श्रम से पीछे न हटने वाले, देवताओं से अभिनय करायें । इन्द्र ने कहा—देवता यह कार्य नहीं कर सकते । आप यह काम—

(क) वेद के रहस्य को समझने वाले, और

(ख) अपने व्रतों से निवृत्त ऋषियों से सम्पन्न कराइये ।

५. ब्रह्माजी ने तब भरत को सौंपा कि अपने १०० पुत्रों के साथ प्रयोग करायें ।

६. पहले भरत ने इन्द्रध्वज के अवसर पर देवासुरसंग्राम खेला ।

७. असुरों ने रुष्ट होकर विघ्न डाला ।

८. इन्द्र ने जर्जर से दैत्यों और बाधाओं को मार भगाया ।

९. तब ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से कहा कि लक्षणयुक्त नाट्यशाला बनाओ ।

१०. विश्वकर्मा ने नाट्यगृह बनाया । उसकी पूजा की गयी । देवताओं को प्रतिष्ठित किया गया और उन्हें बलि प्रदान की गयी ।

११. ब्रह्मा ने भरत से कहा कि इसमें मेरा रचा 'अमृतमंथन' समवकार खेलो ।

१२. फिर शंकर के यहाँ 'अमृतमंथन' समवकार एवं 'त्रिपुरदाह' डिम अभिनीत किये गये।

१३. शिव ने इसे ताण्डव प्रदान किया।

१४. पार्वती ने लास्य।

तब 'भरत' ही इसे देवलोक से मर्त्यलोक में लाये। हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त ने बताया है कि-In India which was then called Jambudvipa, dramatic art was introduced by Nahusha, King of Lunar dynasty who usurped the throne of Indra ....At the order of the conquering Emperor, Bharata had to send his disciples Kohala Shandilya, Dhavttila and Vatsya with a numbers of players of both the sexes who displayed the art sorely against their will before the Indian people.[1]

नाट्यशास्त्र की भूमिका-रूप यह विवरण व्यंजना से यह प्रकट करता है कि—

१. स्त्री और शूद्रों को वेदों से वंचित कर देने मे समाज में दरार पड़ गयी। संभवतः विद्रोह भी हुआ हो। फलतः वैदिक ऋषियों की श्रव्य कथाओं अथवा काव्य से बढ़कर दृश्यकाव्य का निर्माण हुआ।

२. देवताओं और ब्राह्मणों ने भी इस खाई को पाटने के लिए इसे 'वेद' नाम देना स्वीकार कर लिया।

३. देवताओं ने अपने आभिजात्याभिमान से नाटक खेलना अस्वीकार कर दिया। वे भला साधारण लोक की वस्तु को कैसे स्वीकार करते? नाट्य लोक-वृत्ताश्रित होता था इसलिये भी देवताओं ने उसे खेलना स्वीकार नहीं किया।

४. पहले नाटक खुले क्षेत्र में हुआ या होता था अर्थात् नाटक का मूल मंच लोकमंच था। लोकमंच की यह परम्परा अनादिकाल से आज तक चली आयी है। पहले नाटक के खेल के लिए भरत ने मंच आदि का कोई उल्लेख नहीं किया; इससे यही ध्वनित होता है कि मंच बनाया नहीं गया था। साथ ही यह बात भी दृष्टव्य है कि पहला खेल 'इन्द्रध्वज' के मेले पर हुआ था। हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त ने नाट्यशास्त्र, बड़ौदा संस्करण के प्रथम अध्याय के ५२–५७ श्लोक का अंग्रेजी रूपान्तर यों दिया है— In that 'flag-staff festival' that was held to celebrate the victory of Indra etc.

५. खुले मंच पर 'नांदी' के बाद नाटक आरम्भ कर दिया गया।

---

1 The Indian Stage, P. 14.

डा० रघुवंश ने नाट्यशास्त्र के अनुवाद की भूमिका में बताया है कि 'अभिनव के उपाध्याय (भट्टतौत) के अनुसार, पूर्वरंग की व्यवस्था दैत्यों द्वारा विघ्न उपस्थित किये जाने पर की गयी है अतः यहाँ केवल नांदी के प्रयोग का भाव है। अभिनव ने वेद सम्मत होने के कारण 'मंगलकामना' की दृष्टि से नांदी का प्रयोग स्वीकार किया है, पूर्वरंग का अवसर नहीं माना है।' इस मत को डा० रघुवंश ने दूरारूढ़ कल्पना माना है।

नाटक के मंचन में विकास होने पर 'पूर्वरंग' जैसा जटिल प्रयोग संभव था, अतः भट्टतौत तथा अभिनव का मत पूर्णतः समीचीन है। जैसा डा० रघुवंश ने माना है वैसा दूरारूढ़ नहीं।

६. यह भी द्रष्टव्य है कि नाट्यशास्त्र ने प्रथम नाटक के रचयिता का न तो नाम ही दिया है और न उसका प्रकार ही बताया है—

नान्दीकृता मया पूर्वमाशीर्वचनसंयुता ॥५६॥
अष्टांगपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता।
तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्याः सुरैर्जिताः ॥५७ (प्रथम अध्याय)

मुझे इसमें यह व्यंजना प्रतीत होती है कि 'देवासुरसंग्राम' लोकनाट्य था। उसकी लोक प्रचलित कथा को लेकर अनूकरणपूर्वक उसका नाट्य प्रस्तुत करते हुए उसमें यथा प्रसंग संवाद नटों ने प्रस्तुत किये। वस्तुतः 'अमृतमंथन' से नाट्यशाला के अनुकूल लिखे गये नाटकों और उसके अभिनय का प्रवर्तन हुआ क्योंकि नाट्यशास्त्र में इसके लेखक का भी उल्लेख है। स्वयं ब्रह्मा इसके प्रणेता थे। यह विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये मंच नाट्य-गृह में खेला गया था।

इस चर्चा से यह विदित होता है कि नाटक का मूलाधार लोकरंग था। लोकक्षेत्र की वस्तु को उठाकर आभिजात्य वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में उसे वेदों से जोड़ा गया और नाट्यशाला को यज्ञानुष्ठान और बलि से युक्त करके उसे धार्मिकता और आध्यात्मिकता से अभिमण्डित किया गया। अब वह आभिजात्य वर्ग के अहं को संतुष्ट कर सकता था। यह और कहा गया कि—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन्यन्न दृश्यते ॥११६॥ (प्रथम अध्याय)

नाट्यशास्त्र के गहन अध्ययन से और भी इस बात की पुष्टि होती है कि नाट्यशास्त्र-प्रणेता ने तत्कालीन लोकनाट्यों को संस्कृत रूप देने का प्रयत्न किया। प्रो० कोनो ने माना है कि वेदों के कर्मकांड सम्बन्धी रूपक तत्कालीन लोकप्रचलित

स्वांग से लिये गये थे।[1] प्रो० लेवी ने माना कि भारत के नाटक पहले प्राकृत में लिखे गये।[2] वे उसे 'कृष्णसम्प्रदाय' पर आश्रित बताते हैं।[3] प्रो० हिलब्रांट भी लोक प्रचलित स्वांग की सत्ता संस्कृत नाटकों से पहले से मानते हैं।[4] इन लोगों की स्थापनाओं की आलोचना हुई है और उन्हें अमान्य ठहराया गया है। स्वयं कीथ ने भी इन्हें अमान्य माना है किन्तु गहरे पैठने पर हिलब्रांट तथा लेवी प्रभृति विद्वानों का मत ठीक प्रतीत होता है।

नाटक और वैदिक कर्मकांड पूर्वलौकिक स्वांग ही लोकरंग या लोक-नाटक हैं। डॉ० कीथ की आलोचना का एक मात्र आधार तत्कालीन साहित्य की साक्षी पर निर्भर है। इस आधार पर लोकनाट्य के अस्तित्व को यदि सकारा नहीं जा सकता तो नकारा भी नहीं जा सकता। अनेकों ऐसे लोकप्रचलित धर्म कर्म होते हैं जिनको साहित्य में स्थान नहीं मिलता। मिलता भी है कभी, तो तब मिलता है जब उसे कोई प्रतिभाशाली उठाकर एक मान्य स्तर प्रदान कर देता है या उसका व्यापक शास्त्र निरूपित किया गया हो। तब सब प्रकार के वर्गों का उल्लेख करना ही होता है और उसमें ऐसे लौकिक रूपों को भी समाविष्ट करना पड़ता है। उदाहरणार्थ दशरूपकों के भेदों में स्वयं कीथ ने 'प्रहसन' की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'प्रहसन में इस बात के सभी लक्षण पाये जाते हैं कि वह लोक में उत्पन्न हुआ और लोक प्रचलित था।'[5] भाण एकालाप है। स्पष्टतया प्रतीत होता है कि वह भी लोकधर्मी था। भाण आदिम स्वांग का शास्त्रीय रूप है[6] और उपरूपकों में शिल्पक का स्वरूप अस्पष्ट है। यदि उसे स्वांग माना जाय तो स्पष्ट है कि वह मनोरंजक नहीं था।[7]

इन उल्लेखों से यह विदित होता है कि नाट्यशास्त्र के दशरूपकों में से दो और अन्यत्र प्रतिपादित उपरूपकों में से एक शिल्पक लोक प्रचलित परम्परा में पैदा हुए और शास्त्रकार ने उन्हें शास्त्र में स्थान दिया। स्पष्ट ही उन्होंने उनका शास्त्रीय निरूपण किया। इनके साथ ही उपरूपकों में कुछ ऐसे भी रूपक हैं जो

---

1 कीथ— संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद), पृ० १५।
2 वही, पृ० ३७।
3 वही, पृ० ३७।
4 वही, पृ० ४०।
5 वही, पृ० ३७३।
6 वही, पृ० ३७४।
7 वही, पृ० ३७७।

नृत्य से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। कीथ का ही मत हम यहाँ व्यक्त करेंगे। वे कहते हैं—सट्टक उसका नाम नृत्य के प्रकार का द्योतक है। बहुत सम्भव है कि इन रूपकों में इस प्रकार के नृत्यों के प्रयोग से उपरूपकों के एक भेद में 'सट्टक' का आरम्भ हुआ हो।[1] हल्लीश स्पष्टतया उदात्तीकृत नृत्य है।[2] नाट्यरासक सांगीत रास है।[3] प्रस्थान नाट्यनृत्य पर आश्रित है।[4] एकांकी भाणिका और काव्य भी उसी प्रकार के प्रतीत होते हैं।[5] फिर कीथ ने नाटी या नाटिका, प्रकरणिका, सट्टक और त्रोटक के लक्षण बताकर अन्य उपरूपकों पर चर्चा करने से पूर्व यह लिखा कि-उपरूपक के जिन अन्य भेदों का निरूपण किया गया है उनकी प्रतिनिधि रचनाएं प्राचीन साहित्य में नहीं मिलतीं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि उनमें वास्तविक रूपक की अपेक्षा गीत, नृत्य और वाद्य से युक्त मूक नाट्य की विशेषता कहीं अधिक पायी जाती है।[6] अतः इन नाट्य-नृत्य प्रधान भेदों और अन्य रूपक-उपरूपकों को तुलनापूर्वक देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय रूपक तथा उपरूपक का मूल लौकिक अथवा लोकक्षेत्रीय है।[7] शास्त्रकार ने वहाँ से उठाकर उसका उदात्तीकरण और संस्कार करने का प्रयत्न किया। इनमें से कुछ को वह पूर्णतः शास्त्रीयता के क्षेत्र में ले आया। उनमें लोकक्षेत्र के तत्व परिमार्जन-प्रक्रिया से दूर हो गये। कुछ को वह पूरी तरह परिमार्जित

---

1 कीथ–संस्कृतनाटक, पृ० ३७६।

2 वही, पृ० ३७६।

3 वही, पृ० ३७६।

4 वही, पृ० ३७६।

5 वही, पृ० ३७६।

6 वही, पृ० ३७६।

7 हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में बताया है कि 'गेयं डोम्बिका भाण प्रस्थान शिंगकभाणिका प्रेरणा रामा क्रीड़हल्लीसक रासकगोष्ठी श्रीगदित रागकाव्यादि। ८-४ (डा० द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ९४ पा०टि०) डा० द्विवेदी ने लिखा है कि सो, सट्टक एक प्रकार का नाटक है या लौकिक तमाशा है नौटकी की तरह। रासक भी इसी प्रकार का एक रूपक भेद है ... रासक वस्तुतः एक विशेष प्रकार का खेल या मनोरंजन है। रास में वही भाव है। सट्टक भी ऐसा ही शब्द है। लोक में इन मनोरंजक विनोदों को देखकर संस्कृत के नाट्यशास्त्रियों ने इन्हें रूपकों और उपरूपकों में स्थान दिया था।

नहीं कर सका या उसने नहीं करना चाहा। इनमें नाटकों के मूल का द्योतक स्वांग या लोकधर्मी रूप शेष रह गया और कुछ में लोकधर्मी नाट्य के वे रूप भी सुरक्षित रह गये जो नृत्य-नृत्त में से विकसित हुए थे। यह अभिजातीकरण तत्वतः नाट्यशास्त्र में भी सूचित है, जिसकी ओर संकेत किया जा चुका है।

नाट्यशास्त्र में एक स्थल पर उल्लेख है—

धर्मी या द्विविधा प्रोक्ता मया पूर्व द्विजोत्तमाः।
लौकिकी नाट्यधर्मी च तयोर्वक्ष्यामि लक्षणम् ॥७०॥
स्वभाव भावोगत शुद्ध तु विकृतं तथा।
लोकवार्ता क्रियोपेतमंजलीलाविवर्जितम् ॥७१॥
स्वभावाभिनयोपेतं नाना स्त्रीपुरुषाश्रयम् ।
यदीदृश भवेन्नाट्य लोकधर्मी तु स्मृता ॥७२॥

यहां स्वयं नाट्यशास्त्र में द्विधर्मी नाट्यों की विद्यमानता स्वीकार की है। एक लोकधर्मी नाट्य दूसरा नाट्यधर्मी। इन श्लोकों में से पहले से मिलता हुआ एक श्लोक जगदीशचन्द्र माथुर ने उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

लोकधर्मी नाट्यधर्मी धर्मीति द्विविधः स्मृतः।
भारती सात्वती चैव कैशिक्यारभटी तथा ॥

इस पर टिप्पणी करते हुए वे कहते हैं कि कुछ विद्वानों के अनुसार लोकधर्मी से भरत का संकेत ऐसे नाट्य की ओर है, जो जनसाधारण अर्थात् लोक का मनोरंजन करे और उनके जीवन को प्रतिविम्बित करे तथा नाट्यधर्मी से ऐसे नाटकों का तात्पर्य है, जो शास्त्रसम्मत नाट्य सम्बन्धी विधान के अनुकूल हो।

यद्यपि श्री माथुर का आगे का कथन सही है कि तीन श्लोकों में आये 'लोकवृत्तानुकरण', 'लोकोपदेशजनम' लोकस्य सर्वकर्मानुदेशकम्' शब्द समूचे नाट्य को ही लोक की वृत्ति का अनुकरण लोकनिमित्त लोकप्रेरित सिद्ध करते हैं किन्तु यह बात भी दृष्टि में रखने की है कि यह लोकदृष्टि मूलाधार विषयक है। पर नाट्यशास्त्र जब शास्त्र की दृष्टि से नाट्य पर विचार करेगा तो वह किसी भी नाटक में नाट्य के अभिनय-पक्ष की सूक्ष्मताओं पर दृष्टि रख कर यह विधान कर सकता है कि जिसमें सीधासादा सपाट नाट्य (लीलाविवर्जितम्) हो, पात्रों या अभिनेताओं की अभिव्यक्ति में, वह लोकधर्मी नाट्य है। शास्त्रीय दृष्टि से लोकधर्मी नाट्य की परम्परा प्राकृत धारा की भाँति प्रवाहित रहती है और आज तक चली आयी है। यहीं से नाट्य तत्त्वों को लेकर नाट्यधर्मी नाटककार नाट्य की कला-में संयुक्त कर उसे विशिष्ट वर्गीय बना देता है। फिर भी उसमें लोकतत्व रह जाते हैं, इन्हीं के कारण श्री माथुर को यह कहना पड़ा है कि 'लगभग इन सभी शैलियों

में किसी-न-किसी प्रकार आर्य संस्कृति के साथ आर्येत्तर द्रविड़ और आदिम जातियों की संस्कृति को जानबूझकर शामिल किया गया है।' वस्तुतः बात उलटी है। लोक क्षेत्र (जिसे आर्येतर कहा गया है) के नाट्य को लेकर उसे आभिजात्य संस्कार (जिसे आर्य संस्कृति कहा गया है) से मंडित किया गया है। लोकनाट्य तो आधार भूमि है। लोकनाट्य और नाट्यशास्त्र में भेद को मानकर ही नाट्यशास्त्र लोकनाट्य की आधार भूमि पर खड़ा हुआ है। नाट्यशास्त्रीय नाट्य का स्वरूप नाट्य के विशेष मंच के वैशिष्ट्य के साथ खड़ा हुआ है, उधर लोकमंच का समस्त स्वरूप वैशिष्ट्य रहित स्थल-मात्र होता है। कुटकड़िया, रांगलो, रंगा जैसे पात्र की नाट्यगत अनिवार्यता लोकधर्मी नाट्यो में होती है। इससे उसकी प्रकृति कुछ और हो जाती है।

इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि लोकरंग और लोकनाट्य की धारा स्वतंत्र रूपेण प्रवाहित रही। भरत ने भी वहीं से सामग्री लेकर नाटक प्रस्तुत किये और १०वीं ११वीं शताब्दी से भी जो भाषासंगीतकों का रूप मिलता है, उसकी आधारभूमि लोकरंग ही है। श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने कुलशेखर वर्मन को भाषा-संगीतकों के प्रथम उत्थान के प्रथम चरण का कर्ता या प्रवर्तक माना है। उनकी नयी परिपाटी के सम्बन्ध में उनके ये शब्द द्रष्टव्य हैं— ऐसा जान पड़ता है कि कुलशेखर वर्मन ने लोक प्रचलित पुराट्टु इत्यादि से विदूषक की शैली ग्रहण की। फिर स्पष्ट किया कि ....कुलशेखर वर्मन ने लोकनाट्य के चाक्यार और विदूषक का मिश्रण किया किन्तु यथार्थतः इस संगीतक में केवल विदूषक की शैली ही नहीं ली गयी, समस्त नाट्य विधान ही लोकधर्मी था। उसे संस्कृत (संस्कार करके परिमार्जित) किया गया। श्री माथुर ने बताया है कि—

१. क्षेत्रीय भाषाओं के नागरिक साहित्य की अपेक्षा परम्पराशील नाट्य के आंचलिक साहित्य में अखिल भारतीय स्वरूप के पुट कहीं अधिक दृष्टिगत होते हैं।

२. यह नाट्य-साहित्य ताल, नृत्य और गान के परिवेश में पलता है और क्षेत्रीय भाषाओं की सीमाएं इस परिवेश को संकुचित नहीं कर पातीं।[1]

नृत्त के साथ नृत्य, नृत्य के साथ एक ओर नाट्य दूसरी ओर गीत लोक के आदिम छोर में विकसित होते हैं। उन्हीं के मूल सूत्र काल और देश भेद के मूल तत्वों को आघात पहुँचाये बिना, सामग्री में परिवर्तन स्वीकार करते रहते हैं। यही कारण है कि परम्पराशील नाट्यों में अखिल भारतीय स्वरूप अधिक मिलता है।

---

[1] जगदीशचन्द्र माथुर, परम्पराशील नाट्य, पृ० १३४।

परम्पराशील नाटकों में श्री माथुर ने 'संगीतक' को ही लिया है—वह भी भाषा-संगीतक को। भाषा संगीतक के प्रवर्त्तक दसवीं शताब्दी में केरल के राजा कुलशेखर वर्मन को इन्होंने माना है। यह प्रथम चरण इन्होंने सन् १००० से १५०० ई० तक माना है। इसकी तीन विशेषताएँ उन्होंने बतायीं—(१) राज-महल का वातावरण क्योंकि ये नाट्य केरल, आंध्र, कर्नाटक, मिथिला-नेपाल और उत्कल के राजाओं के आश्रय में राजा के ही प्रयत्न से बने और खेले गये। (२) जयदेव के प्रभाव से नृत्य संगीत का आकर्षक समावेश और (३) संस्कृत प्राकृत मूल के बीच भाषा-गीतों का आरोपण। इन्होंने दूसरा चरण सन् १५०० ई० से १६५० ई० तक माना है। इसमें इस नाट्य को वैष्णव संतों ने विशेष अपनाया। तृतीय चरण सन् १६५० से १८०० ई०। इसमें क्षेत्रीय रूप विकसित हुआ।

वस्तुतः श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने तीन चरण संगीतक के माने हैं और संगीतक के सम्बन्ध में जब यह प्रश्न उठता है कि क्या ये लोकनाट्य हैं अर्थात् लोकसाहित्य की वस्तु हैं तो श्री माथुर की मान्यता है कि जो आंचलिक नाट्य-विधाएँ भारतवर्ष में आज दिन प्रचलित हैं उन्हें 'लोकनाट्य' का नाम देना सही नहीं है। उनका साहित्य और उनकी प्रस्तुतीकरण-पद्धतियाँ लोककला की अपेक्षा कहीं अधिक परिमार्जित और अलंकृत हैं, रंगमंच और नाटक के अन्य रूपों से इनका पार्थक्य इनका परम्परानुगामी (ट्रेडीशनल) होने में है। अतः मैंने इन्हें 'परम्पराशील नाट्य' मानकर इनका अध्ययन किया है।[1]

स्पष्ट है कि इनके मन में लोकनाट्य से भिन्न हैं 'परम्पराशील नाट्य'। भिन्नता का कारण है इनका अधिक परिमार्जित और अलंकृत होना। श्री माथुर तत्वदर्शी हैं तभी उन्होंने संगीतकों को लोकनाट्यों से पृथक वर्ग में रखा है और उन्हें परम्पराशील नाट्यों का नाम दिया पर समस्त विवरण से यह प्रकट होता है कि संगीतक के सभी मूल-तत्व लोकनाट्य के हैं। बस विशिष्ट वर्ग ने इतिहास की १०वीं शती से आरम्भ होने वाले मध्ययुग में इन लोकनाट्यों में विशिष्ट कला-तत्वों को जड़ कर दो रुचियों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। इसमें धुरी लोक-नाट्य की ही है। इसमें अलिखित और लिखित दोनों प्रकार के नाटकों का समावेश हो जाता है। तभी हाथरस के नत्थाराम की संगीत नौटंकी का उदाहरण और ब्रज की रासलीला के उदाहरण रूप में चाचा श्री हितवृन्दावनदासजी की स्वप्नलीला का उल्लेख किया गया है। १८८४-८५ में संकलनकर्त्ता टेम्पल ने 'लीजेन्ड्स आव् दी पंजाब' में किसी बंसीलाल के रचे कुछ स्वांग दिये थे। भूमिका में इस समस्त संकलित

---

[1] परम्पराशील नाट्य, प्रस्तावना।

साहित्य को लोकसाहित्य के अन्तर्गत ही उन्होंने लिया था। वंसीलाल के स्वांग भी नत्थाराम के स्वांगों की तरह सांगीत या संगीतक ही हैं। उदाहरणार्थ:—

सिव के सुत गज वदन हैं, चरन निवाऊं सीस।
पैंर पदम गौरापती, किरपा करो जगदीस॥
किरपा करो जगदीस! मात मेरी करो कण्ठ में वासा।
छन्द ग्यान सुर करो आनके, देखें लोग तमाशा॥
गोपीचन्द के सांग कहन की दिल को लग रही आसा।
रहते शहर उज्जैन राउ नित करते भोग विलासा॥
गौड़ वंगाला देस जिन्हों का त्याग दिया विसवासा।
कहते वंसीलाल मात मेरी, पूरन कीजै आसा॥

मुक्ताल

मात शाकम्भरी माई
आन के करो सहाई।
मैं मूरख अग्यान,
बुध दीजे महा माई॥

गोपीचन्द महिलों चले धर गनपत का ध्यान।
आ उतरे रनवास में करन लगे अशनान॥
करन लगे अशनान राउ ने चन्दन चौक बिछाई।
चमकत वदन कनक जैसा और मुख चंदर की नीयांई॥
निकसा भान गगन में सूरिज की इक जोत छिप छाई।
हैं मृगनयन, कण्ठ कोईल, मुख ना उपमा कही जाई॥
मोरी बैठी, नैन निहारी मैनावन्ती मई।
टप-टप आंसू पड़े धरन पर थमती नहीं थमाई॥

यह भी संगीतक है जो परम्पराशील नाट्य के अन्दर आयेगा क्योंकि टेम्पल महोदय के अनुसार यह अम्बाला जिले के जगाधरी गांव में खेला जाता था। इस सांग या संगीतक को लोकवार्ता की दृष्टि से अवदानों या 'लीजेण्ड्स' में सम्मिलित टेम्पल महोदय ने किया है।

'लीजेण्ड्स आव द पंजाब' के प्रथम खंड में १७ अवदान (लीजेण्ड्स) हैं। उनमें से ५ हिन्दी में हैं और अंतिम लालवेग सम्बन्धी भी हिन्दी-प्रकृति का है। खंड २ में १८ से ३८ तक २१ अवदानों में से ५ हिन्दी के हैं और अंतिम तृतीय खण्ड में ३६ से ५८ तक २० अवदान हैं। इनमें से ६ हिन्दी के हैं। इस प्रकार

टेम्पल महोदय ने पंजाब में प्रचलित अवदानों में ५+५+९=१९ हिन्दी के अवदान दिये हैं। इसमें 'स्वांग गुगे राजपूत वागड देश का' का रचयिता वंसीलाल है।[1] 'महल शीला देई' भी वंसीलाल कृत स्वांग है। १८ वाँ अवदान है 'स्वांग राजा गोपीचंद', उन्हीं वंसीलाल का; २० वां 'स्वांग राजा नल का' भी वंसीलाल कृत है। ४१ वां 'किस्सा लड़ाई राजा पिरथीराज' 'किशनलाल शिव कंवर' का रचा हुआ है।[2] ४२ वां 'क़िस्सा राजा हरीचंद का' भी किशनलाल शिवकंवर' का है।[3] इन्हीं का रचा 'किस्सा राजा हरीचंद का' ४५ वाँ 'गीत गूगे का' सितावी मेव (?) का रचा हो सकता है।[4] 'किस्सा लड़ाई राजा सिसपाल वा राजा परदुमन' ५६ वां अवदान किशनलाल शिवकंवर का है। 'किस्सा राजा सिसपाल दरबयान लड़ाई राजा किश्न' भी इन्हीं का है।

ये सभी अंगरेजी में प्रकाशित हैं, किन्तु हिन्दी के इन सांगों की यह परम्परा बहुत प्राचीन होनी चाहिये। ये लोकनाट्य हैं। ये मूलतः छापे नहीं जाते। इनके अखाड़े हैं, वहां हस्तलिखित रूप में रहते हैं। उनकी सुरक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं। डा० सोमनाथ गुप्त ने 'अगरोहा' से ऐसे कितने ही सांग, सांगीत या चौबोले बड़े प्रयत्न से प्राप्त किये हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत से लिखे गये थे, जो अब नहीं मिलतें। अखाड़े भी लुप्त होगये। डॉ० गुप्त को प्राप्त सांगों में सबसे पुराना सांग सन् १८२७ का है, विशनबिहारी लाल का लिखा 'वीनवाज शहजादी'। प्रायः इसी समय का चांदनारायण माथुर का 'रूप-वसन्त' है। १८५६ ई० का मालती–वसंत पं० चंदर सेन का लिखा हैं। १८६६ का लिखा पं० रामसुख गौड़ का दिलवर-दलदार भी सांगीत है। इसी प्रकार पं० बनवारी लाल का शम्स-ओ-केसर १८७४ का, इन्हीं के सन् १८७५ के लिखे गुलदस्ता-सोसन तथा १८७३ के हुस्न-वहार हैं। मजहर अली खां के सांगीत पद्मावत एवं लैला–मजनूं का भी पता चला है। रामलाल का सांगीत शाहरूम है। इस प्रकार कुछ

---

1 "अरी ! शाकंभरी तेरी है जोत सवाई,
कहता वंसीलाल आन के करो सहाई। (पृ० १२२)

2 किशनलाल शिवकंवर ने भाखा कही बनाइ,
जैसी मीन समुन्दर की जित चाहे उत जाइ। (खंड ३, पृ ४५)

3 किशनलाल शिवकंवर ने बानी कही अपार,
राजारानी रल मिले, सत का किया अधार। (पृ० ८८)

4 संवत तेरा सौ उन्हत्तरा येह साका चौहान,
कहते सितावी मेव का जगजग जिओ गवान (पृ० ३००)

और का भी पता चला है। यह अमरोहा की सांग परम्परा का १८२७ का पक्का प्रमाण टेम्पल से ५० से ऊपर वर्ष पहले का है।

इन सभी अवदानों को लोकसाहित्य माना गया है और माना जायगा। पर क्यों? क्या यह बात बाधक नहीं कि इसके रचयिता हैं और उनका नाम भी ज्ञात है, जिससे ये अवदान परम्परा से चले आने वाले नहीं माने जा सकते।

'स्वांग' (सांग) लोकमंच की वस्तु है। टेम्पल के इसी संग्रह में 'स्वांग' को ही 'किस्सा' भी कहा गया है। ये स्वांग आदि से अंत तक गेय हैं। ये लोकमंच पर खेले जाते थे। इनके खेलने की एक परम्परा थी। साथ ही इन स्वांगों की वस्तु भी परम्परा से प्राप्त हुई है। पर, वास्तविक बात यह है कि लोकसाहित्य वही होता है जिसमें लोकमानस की अभिव्यक्ति होती है और रचयिता में 'अहंचैतन्य' वही होता है[1] इसलिए ये 'स्वांग' लोकसाहित्य की सम्पत्ति हैं।

हिन्दी में गेय स्वांगों के कई नाम हैं। इन्हें नौटंकी, स्वांग, भगत, रासलीला, रासधारी, माच आदि नाम दिये जाते हैं। यों प्रत्येक शब्द से जिस मंच का ज्ञान होता है, वह अन्तर में एक दूसरे से भिन्न भी होता है। 'रास' शुद्ध रूप से धार्मिक है, और 'कृष्ण' से सम्बन्धित है, यद्यपि इसे खेलने वाली मंडलियां व्यावसायिक होती हैं। भगत अव्यावसायिक मंच है और अर्द्ध-धार्मिक है।

ये अखाड़ों के माध्यम से खेले जाते हैं। नौटंकी व्यावसायिक है। जिन्हें नौटंकी कहा जाता है, उन्हें उनके रचयिताओं ने अधिकांशतः 'संगीत' नाम दिया है। सन् १९१०-११ में पं० श्रीधर पाठक जी ने एक निबंध में नौटंकी या स्वांग के ६ ग्रंथों के नाम उनके रचयिताओं के साथ दिये थे। इन छह में से चार के साथ 'सांगीत' लगा हुआ है यथा—

१. सांगीत चित्रकूट चरित्र— चिरंजीलाल नथाराम, हाथरस
२. सांगीत मैना-मैया — गोविंददास, हाथरस
३. सांगीत पूरनमल — ?
४. सांगीत हरिश्चन्द्र — औरैया ?

श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने इस सांगीत को संगीतक ही माना है। इस सांगीत या संगीतक के प्रवर्त्तक थे केरल के राजा कुल शेखर वर्मन।[2] उन्होंने

---

[1] डॉ० सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान, पृ० ५।
[2] परम्पराशील नाट्य, पृ० १३।

सांगीत या संगीतक को लोकमंच की भूमि पर फिर एक बना दिया। संगीतक लोकमंच की परम्परा बहुत प्राचीन प्रतीत होती है। नाट्यशास्त्र में जिन गेय रूपक-उपरूपकों का उल्लेख है वे प्रकृति से संगीतक के ही विविध रूप विदित होते हैं पर दसवीं शती में कुलशेखर वर्मन ने इसका पुनरुद्धार किया और नये प्राण फूंके।

इस प्रकार हमें तो संगीतक के परम्पराशील सभी रूप लोकवार्ता क्षेत्र के ही प्रतीत होते हैं। अतः लोकनाट्य के अन्तर्गत वे सभी लोकरग आते हैं जो नृत्त और नृत्य प्रधान होते हैं और जिसमें नाट्यांश भी विकासावस्था में जोड़ा गया मिलता है। व्रज का रास मूलतः रास नृत्य था। आज भी आरंभ में इसका नृत्य भाग सबसे पहले अनिवार्यतः प्रस्तुत किया जाता है, कोई विशेप लीला उसके बाद ही की जाती है। इसीसे वह रासलीला कहा जाता है। इसी प्रकार असम का अंकिया नाट है। इसमें मुख्य अभिनय या लीला से पूर्व पूर्वरंग 'नवधेमाली' में वायनों या वाद्यकारों का चक्राकार नृत्य आवश्यक माना गया है। यही नहीं श्रीकृष्ण, रुक्मिणी आदि प्रमुख पात्र नृत्य करते हुए ही 'अग्निधर' में से आड़ कापड़ को हटाकर रंगभूमि में प्रवेश करते हैं। 'गवरी' भी मूलतः नृत्त-नृत्य था। डा० महेन्द्र भानावत ने बताया है कि—'गवरी' के मूल में नृत्य की प्रधानता रही है। नृत्य की यह प्रधानता आज भी इसमें देखी जाती है। इसी प्रधानता के कारण गवरी नाट्य को 'गौरी का नाच' भी कहा जाता है। जब यह नृत्य अपने विकास की मंजिल को पहुँच गया तब इसमें नाना स्वांग स्वरूपों की रचना आरम्भ हुई।[1]

'चविट्टुनाटकम' का जो विवरण[2] दिया गया है उससे यह प्रकट होता है कि नृत्य को प्रत्येक पात्र में रमा दिया गया है। पात्रों का रंगमंच पर अभिनय पैरों की ताल से युक्त रहता है। यों मूल नाटक के आरम्भ से पूर्व लड़कियों का एक दल आकर नृत्य भी करता है। यह ईसाई नाट्य है। भवाई शब्द ही बताता है कि वह नृत्य ही है। निश्चय इसमें भी बाद में ही कथानकबद्ध नाट्य समाविष्ट हुआ होगा।

लोकमंच के सम्बन्ध में कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं। हिन्दी के लोकनाट्य १०—११ वीं शती से असम, महाराष्ट्र, पंजाब, बिहार, गुजरात तथा दक्षिण में भी मिलने लगे थे। साथ ही इस काल में लोकनाट्यों में पहले

---

[1] लोकरंग, पृ० ११६-११७।

[2] वही, पृ० १३६—१४५।

कृष्ण-कथा को अपनाया गया और फिर राम-कथा को। कृष्ण-कथा के लोकनाट्यों के रूप विविध हैं: कृष्ण अट्टम, कथाकली, कीर्तन, रासेश्वरी कीर्तन, मनीपुरी रासलीला, रामलीला (व्रज), महारास, रामधारी। कृष्णनाट्यों के १०-१६ शती के नवोत्थान में एक और वात उत्तर से दक्षिण तक मिलती है कि इन नाट्यों के नव-प्रवर्त्तकों या नवोनायकों को स्वप्न में कृष्ण स्वयं दर्शन देकर रास लिए प्रेरणा देते हैं। इसके लिए किसी को वे मोरपंख देते है।[1] किसी के पास अपना मुकुट अवतरित करते हैं[2] तो किसी को नृत्य के रूप की अनुभूति कराते हैं।[3]

मणिपुर में रास के आरम्भ की पुराण-कथा (मिथ कुछ वैसी ही है जैसी नाट्यशास्त्र में नाट्यारम्भ की दी हुई है। उदाहरणार्थ—

नाट्यारंभ की कथा

१. ब्रह्मा के आदेश से भरत ने रंगमंच पर ब्रह्मा-रचित 'अमृतमंथन' नाटक खेला।
२. ब्रह्मा जी ने कहा—चलो शिवजी को यह नाटक दिखायें।
३. शिव-पारवती को अमृत-मंथन दिखाया, फिर त्रिपुरदाह भी दिखाया।
४. शिवजी प्रसन्न हुए और नाटक को तांडव नृत्य प्रदान किया जिसे तंडु ने भरत को सिखाया।
५. पारवती ने लास्य नृत्य दिया।

मणिपुर रासलीला आरम्भ की कथा

१. कृष्ण-राधा तथा गोपियों ने रासनृत्य की उद्भावना की।
२. शिवजी ने कहा कि वे भी इसे देखना चाहते हैं।
३. कृष्ण ने कहा—देख तो नहीं सकते, हां द्वारपाल की तरह खड़े होकर हमारी ओर पीठ करके रास के समय उपस्थित रह सकते हैं।
४. शिव ने वह दिव्य रास सुना।
५. अब उनमें यह भाव पैदा हुआ कि इस दिव्य रास को स्वयं करें।

---

[1] जमोरिन (केरल) को स्वप्न में कृष्ण ने प्रेरणा दी तथा दो मोरपंख प्रदान किये। कृष्ण अट्टम में इन्हें सिर पर लगाना आवश्यक है।

[2] करहला में रास के आरम्भकर्त्ता के यहां कृष्ण का मुकुट उतरा था।

[3] मणिपुर में It was conceived by Jay Singh who first saw and heard it in a dream.

६. शिव और पारवती ने एक गोपनीय पर रम्य स्थान की खोज की। एक स्थान, पहाड़ियों से घिरा, पर उसमें पानी भरा हुआ। वह पानी नदियों से बाहर किया। रास योग्य सुन्दर भूमि प्रकट हुई।

७. यहां स्वर्ग की अप्सराओं की अवतारणा शिव ने की और रास रचा। शेषनाग ने मणियों से प्रकाश दिया।

शिव-पार्वती जिस वार्त्ता में पहुँच जाते हैं, वह वार्त्ता मूलाधार में लोकवार्ता-तात्विक हो जाती है। नाट्य के मूल लोकनाट्य से शिव का सम्बन्ध नाट्यशास्त्र से भी है और शिव के अपने ही प्रदेश हिमाचल में मणिपुर की लोकवार्त्ता से भी है।

रास या रासक भी प्रकृति के संगीतक हैं पर महाभाष्य में निर्देशित शोभनिक तथा ग्रन्थिक के मेल मे। संगीतक में पात्र स्वयं ही संगीत में कथोपकथन द्वारा कथानाट्य प्रस्तुत करते हैं। संगीतक में हिन्दी-क्षेत्र में भी नक्कारे का उपयोग होता है और जहां-जहां संगीतक खेले जाते हैं वहां घनोच्च घोर वाले वाद्य और नक्कारों का उपयोग होता है। वस्तुतः संगीतक की अखिल भारतीय परम्परा का और अधिक विस्तार से अनुसंधानपूर्वक निरूपण करने की आज आवश्यकता है। दूसरे वे लोकनाट्य हैं जो सीधे उस संगीतक परम्परा में रखे जा सकते हैं जिन्हें लीला विवर्जित होने के कारण लोकधर्मी गेय नाटकों में रखा जा सकता है।

ये आदिम नृत्त-नृत्य से नाट्य मुक्त होकर गेयत्व और नाट्य की प्रधानता को ही अंगीकृत कर चलते रहे। इन्हें लोककवियों ने अपनाया और अपनी नाट्य-प्रतिभा का प्रयोग किया। नृत्य की प्रधानता न रही, गीत-संगीत की प्रधानता हो गयी। इसी से ये संगीतक कहलाये पर मूलभूमि में लोकनाट्य हैं। इनमें संगीत पक्ष इतना प्रबल हो जाता है कि पात्रों को अभिनय-मुद्राओं के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। लगता है कि विविध पात्रों के संगीतमय संवादों के माध्यम से संगीतमय कथा कही जा रही है। इसीलिये कुछ लोग इसे कलंगी-तुर्रे की खयाल या लावनी के अखाड़े का विकास ही मानते हैं। यह संगीतक मूल लोकनाट्य का संगीत या गेयत्व की दृष्टि से संशोधित रूप है।

भारत में जितने भी लोकनाट्यों को अभी तक उभार कर अध्ययन का विषय बनाया गया है वे सभी मूलतः आनुष्ठानिक तत्वों से युक्त होकर किसी न किसी प्रकार की धार्मिकता से भी युक्त मिलते हैं। लेकिन इस धार्मिकता में संकुचित भावना नहीं है। इसके साथ केवल आस्तिकता मूलक श्रद्धाभिवंदन है।

लोकनाट्य लोकमनोरंजन का ही साधन नहीं है यह लोकगत अर्जितानुभूतियों में से मानव के मूल अध्यात्म की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है जिसके द्वारा वह

मूल अध्यात्म मानव के अति-प्रकृत अस्तित्व की हूक और कूक बन कर प्रकट होता है। यह अभिव्यक्ति अभिनेताओं को ही नहीं दर्शकों को भी अपना भागीदार बना लेती है। लोकनाट्य मात्र नाट्य नहीं है। यह समग्रतः अनुष्ठान है, ऐसा कि जिसमें अनुष्ठान जैसे लगने वाले कर्म तो मात्र औपचारिक होते हैं। यह नाट्य समग्रतः अनुष्ठान रूप में तादात्म्य और आत्मावेश को सिद्ध करता है। फलतः यही प्रतीत होता है कि लोकनाट्य मानव की आदिमावस्था में अनुकृतियों के बीज से उद्भूत हुआ और विविध भूमियों पर तब से आज तक निरंतर प्रवाहित है! नाट्य धर्मी कला ने लोकधर्मी कला से ही प्रेरणा ली है, उसी लौकिक प्रेरणा को उसने संस्कृत करके साहित्यक रूप दिया है।

2

लोकगाथा का अंतरंग तंत्र*

०

बचपन में पड़ा प्रभाव अमोघ होता है। वह मेरा बचपन ही तो था। कक्षा ८ से कक्षा ११–१२ तक के बीच की बात हो सकती है। एक देशराज थे। मैं समझता हूं कि नाम मुझे ठीक ही याद है, यद्यपि आज मुझे यह स्मरण नहीं कि वे कहां के रहने वाले थे और क्या काम करते थे पर उनकी कुछ झलकियां मेरे मानस–पटल पर इस समय उभरी हुई हैं। उनकी छरहरी शरीर-यष्टि, जिसमें यौवन की दीप्ति तो थी, भले ही उसका उफान बैठने को तैयार हो रहा था। नातिलम्बे, गेहुंआ रंग, हलकी-हलकी रेशमी श्मश्रु, एक हाथ की कुछ

* डॉ० कन्हैयालाल सहल द्वारा संपादित 'निहालदे सुल्तान' के विशेष सन्दर्भ में।

उंगलियां चिकनी-सी टेढ़ी-सी। उनके साथ कुछ हंडियां रहतीं जिनका मुंह कपड़े से कसकर बंधा होता, एक कपड़े के खोल में बंद चिकाड़ा।

वे बड़े अच्छे ढोला गायक थे। रात को ९–१० के बाद ढोलक खटकती और वे एक चारपाई या खाट पर बीच में बैठकर अपना चिकाड़ा मिलाकर जब एक–दो धुनें निकालने लगते तो ढोला के शौकीन श्रोता जुड़ने लगते। हजारों की भीड़ हो जाती। पहले दो-तीन नाई मशालें लेकर प्रकाश करते, बाद में हंडे (गैस) मंगाये जाने लगते। वे सरस्वती-गणेश आदि देवताओं की स्तुति करके ढोला गाना आरम्भ करते। पाठ्य-गान अरथाते हुए द्रुत विधियों से गीत को प्रभावपूर्ण बनाते चलते। स्वर-लहरी की एक ऊंचाई पर पहुंच कर वे रुकते तो सुरैया की झींगुर की झनकार-सी तीखी सुरीली सुर-भरन उनसे जुड़कर, कुछ देर तक चलती। एक समा-सा बंध जाता। हम लोगों की दृष्टि से गायक देशराज तो ओझल होने लगते, उनकी जगह ढोले के पात्र पिरथम मंझा, नल, मोतिनी आदि दीखने लगते। श्रोता जैसे कान में ही समा गया हो। आवेगमय स्थलों पर देशराज उठ कर श्रोताओं में जा पहुंचते और कभी मंद कभी द्रुत गति से चलते, कभी नाचते हुए-से, कभी चिकाड़ा अलग हाथ में ऊपर उठाकर और दूसरे हाथ में चिकाड़ा बजाने का गज लेकर गीत की व्याख्या गद्य में करते हुए, और भी ओज भर देते और एक नाटकीय तरंग के साथ फिर गज से चिकाड़े से चि–चिकार करते हुए आगे गीत की उत्ताल उर्मियों में श्रोता को बहा ले चलते और पहरी समाप्त होने को आती तो वे गा उठते—

'पहरी भई समाप्त हमारी (?)
तुम करो चिलम की त्यारी'

यों एक विराम आता तब भी चिलम में कश लगाते हुए, कोई रोचक चुटकला सुनाने लगते। मंत्र-मुग्ध जनसमूह विविध आवेगों में तैरता रहता।

ढोला की अपनी तर्ज है। उसमें वे यथावश्यक अन्य तर्जें भी जोड़ते जैसे नल के पैदा होने पर बेमाता देवियों के साथ जन्ति के गीत गाती, विवाह पर 'गाली' गाई जाती, 'अरे जितो हींस बिरे कौ जायो रे', कहीं मल्हार जड़ी जाती। इन जड़ी हुई तर्जों में एक निहालदे की तर्ज भी होती देशराज की वाणी इस तर्ज में कुछ अद्भुत जादू भर देती थी कि इतने विशद ढोला-गान की चित्र विचित्र स्वर-तरंगों में प्रवहमान विविध अन्य तर्जभंवरें और उन सब के ऊपर उतराती होती निहालदे की तर्ज। उसकी मार्मिकता का वर्णन करना आज कठिन है। बहुतों ने देशराज से निहालदे का पूरा गीत सुनाने का भी आग्रह किया था। उन्होंने आश्वासन भी दिया था कि कभी सुनायेंगे। पर मन में निहालदे के लिए जो तीव्र उत्कण्ठा जागृत हुई, वह आज तक शमित नहीं हो सकी।

निहालदे सुलतान एक शुद्ध लोकगाथा है। शुद्ध लोकगाथा वह होती है जो अभी तक कण्ठों पर ही विराजमान रही हो। उसे मसि-कागद ने न छुआ हो। अभी तक इस पर कोई काव्य नहीं लिखा गया। ढोला-मारू, आल्हा, सारगा-सदावृक्ष, नल-दमयन्ती, लोरचन्द्रानी जैसी कितनी ही अन्य लोककथाएं हैं जो लोक में कण्ठ पर भी विराजमान हैं और इन पर काव्य भी रचे गये हैं पर निहालदे-सुलतान पर लिखा कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं। इस दृष्टि से यह एक शुद्ध लोकगाथा है।[1]

भारत में लोकगाथा की बड़ी पुरानी परंपरा प्रतीत होती है। यदि धार्मिक भूमि से हटकर देखें तो अपौरुषेय वेदों में भी कितनी ही लोकगाथाएं मिल जाती हैं। प्रतीत होता है, जैसे कि वेद इन्द्र की लोकगाथा ही हो। यह बात क्या कम आश्चर्य की है कि हिन्दी का 'साका' शब्द ठेठ ऋग्वेद से ही आया है। ऋग्वेद में इसका रूप 'शाकः' था। उदाहरणार्थ—

साका=शाकः— शक्तिः। कर्म्म। यथा ऋग्वेदे। ६। २४। ४।

'शचीवतस्ते पुरुशाक शाका
गवामिव श्रुतय सञ्चरणीः॥"
"हे पुरुशाक। बहुकर्म्मन्निन्द्र शचीवतः
प्रज्ञावतस्ते त्वदीयाः शाकाः शक्तयः कर्म्माणि वा।"

इति तद्भाष्ये सायणः॥ समर्थेऽपि। यथा ऋग्वेदे। ५। ३०। १०

"सन्ता इन्दो असृजदस्य शाकैर्यदी सोमासः सुषुता अमन्दत" "शाकैः शक्तैर्म्मरुद्भिः सह।" इति तद्भाष्ये सायणः॥)— शब्दकलद्रुम part v लेखक-राजा राधाकान्त देव। प्रकाशक-चौखम्बा संस्कृत सीरीज़—Work No. ९३, पृष्ठ ४२।

उसके जन्म की कथा से लेकर पूर्ण उत्कर्ष के चरण तक की कथा जिसमें इन्द्र के कितने ही पराक्रम सम्मिलित हैं, वेदों में गुंथी हुई है। ये कण्ठस्थ थीं

---

[1] श्री अगरचन्द नाहटा ने सूचित किया कि 'निहालदे सुलतान' हस्तलिखित रूप में तो नहीं देखी पर ख्याल पहले छपे हुए थे। इसे पहली बार पिलानी में राजस्थानी शोधविभाग के द्वारा एकनाथ जोगी से सुनकर लिपि-बद्ध किया है। लिपिबद्ध हो जाने पर भी, वह लोकगाथा रूप में प्रकाशित नहीं हो सका है। डॉ० कन्हैयालाल सहल ने उसका सार मरु-भारती में क्रमशः गद्य-कथा के रूप में प्रकाशित किया था। अब इसका पुस्तकाकार संस्करण प्रकाशित होगया है।

श्रीर इन्हें विविध स्रोतों से संकलित किया व्यासजी ने। व्यासजी ने महाभारत को भी संपादित किया पर वह भी आज धार्मिक महत्व का ग्रंथ है।

किन्तु धर्म-क्षेत्र के साहित्य की इस प्रकार व्याख्या करने की अनधिकार चेष्टा न भी करें तो भी कथासरित्सागर या पैशाची भाषा में लिखी गयी वृहद्कथा या वड्डकड़ा क्या आज की कृति है? गुणाढ्य[1] की यह कृति भी तो विविध लोक-कथाओं का संकलन ही है जिसकी भूमिका कथा रोमाचक और रोचक होते हुए भी समस्त उपक्रम को लोकसाहित्य के संकलन का रूप ही देती है। वत्सराज उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की सूत्र कथा में अनेकों लोककथाएं और लोकगाथाएं पिरो दी ही गयी हैं। लगता है, उस समय जितनी भी लोककथाएं और लोकगाथाएं प्रचलित थीं, उन सभी को सूत्र-वद्ध कर दिया गया है।

---

1 भूमिका कथा कुछ इस प्रकार है—
शिवजी ने एकान्त में पार्वतीजी को कहानियाँ सुनाई। पार्वतीजी ने यह निषेध कर दिया था कि कोई भी उस समय उनके पास न जाय। किन्तु शिव के एक गण पुष्पदन्त ने छिप कर वे कहानियाँ सुनलीं। अपनी स्त्री जया को उसने वे कहानियाँ सुनादीं। जया ने पार्वती को वे फिर जा सुनाईं तो रहस्य खुला। पार्वती ने रुष्ट होकर पुष्पदन्त को शाप दिया कि वह पृथ्वी पर मनुष्य योनि में जन्म ले। माल्यवान ने उसके पक्ष में कुछ कहना चाहा तो उसे भी वही शाप मिला। पार्वतीजी ने वताया कि एक यक्ष शापवश कुछ काल के लिए पिशाच वन गया है। जव पुष्पदन्त की उससे भेंट होगी और उसे अपनी पूर्व स्थिति का स्मरण हो आयेगा, तव यदि वह पुष्पदन्त शिव से सुनी कहानियाँ उस पिशाच को सुना देगा तो अपने दिव्यस्वरूप को प्राप्त कर लेगा। माल्यवान इन्हीं कहानियों को उस पिशाच से सुनकर मुक्त हो जायगा।

पुष्पदन्त ने वररुचि का अवतार लिया। माल्यवान हुआ गुणाढ्य। वररुचि अनेकों आश्चर्यजनक घटनाओं से होता हुआ उस पिशाच से मिला। उसे वे कहानियाँ सुना कर शाप मुक्त हुआ। इसी प्रकार गुणाढ्य पिशाच से मिला, उससे वे कहानियाँ सुनीं, उन्हें पैशाची में लिखा और सातवाहन राजा को भेंट-स्वरूप देने ले गया। राजा ने उन्हें स्वीकार नहीं किया तो पशु-पक्षियों को सुनाकर एक-एक पृष्ठ जलाने लगा। तव राजा ने महत्व समझकर उस ग्रंथ को वचाया और संस्कृत में लिखाया। इस प्रकार गुणाढ्य भी मुक्त हुआ। यही कथासरित्सागर की कथाएं हैं।

डॉ० सत्येन्द्र— व्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ३६५।

और क्या वह प्रयत्न फिनलैंड के इस प्रयत्न के समकक्ष नहीं था जो १९ वीं शती में हेलसिंकी विश्वविद्यालय के विद्वान् पिता-पुत्र क्रोहन ने सम्पन्न किया था, 'कलेवल' का संग्रह और संपादन करके ? किन्तु इस महागीत या पुराण-काव्य के प्रथम संकलनकर्त्ता और संपादक तो Loonnart थे[1], कार्ल क्रोहन के पिता जूलियस क्रोहन के गुरु। उसने ही पहले कलेवल की मुखस्थ कथाएँ संपादित कीं। निहालदे-सुलतान के ये पँवाड़े उसी परंपरा में आते हैं। यह सच है कि 'कलेवल' के संकलन के लिए जिस पद्धति का अनुसरण किया गया था उस पद्धति का अनुकरण इस संकलन के लिए नहीं किया गया; केवल एक ही गायक-जयदयाल नाथ से सुनकर इसे लिपिबद्ध किया गया है। इसमें भी संदेह नहीं कि इस पवाड़े की परंपरा भी बहुत पुरानी होनी चाहिए। प्रस्तुत संकलन १९५९ से पूर्व ही हो चुका होगा क्योंकि इसका संक्षिप्त गद्यात्मक सारांश प्रथम खण्ड के रूप में १९५९ में प्रकाशित हुआ और मैंने निहालदे की तर्ज बाल्यावस्था में आगरा में सन् १९२३ से पूर्व सुनी होगी। इसका अर्थ यह है कि यह पवाड़ा बहुत पहले से लोकप्रिय रहा है और इसके गायक भी कितने ही होंगे। यह आवश्यकता आज भी बनी हुई है कि विविध गायकों का पता लगाकर स्थान-स्थान से इनका संकलन किया जाय और सबके आधार पर एक संशोधित पूरा संस्करण पवाड़ों का ही प्रकाशित किया जाय। साथ ही यह भी देखा जाय कि यह प्रचलित कहां-कहां पर है पर इसके लिए समय, श्रम और धन सभी अपेक्षित हैं। किन्तु इस पवाड़े का यह कथा-सार भी महत्वपूर्ण है। प्रत्येक पवाड़े या लोकगाथा में दो तत्व तो होते ही हैं—१. कथावस्तु, २. गेयतत्व। महत्व दोनों का ही है। पर साहित्य-अध्येता के लिए तो कथावस्तु ही अर्थ रखती है और श्रोताओं के लिए भी कथा-पक्ष यथार्थ

---

1 He (Lonnart) now set himself to a very great task to prepare a new edition of the Kalevale which would take advantage of all the newly collected material. He found, however, that it was necessary to undertake still further collections in the field A young student, Daniel Europaeas, spent the entire years 1845–1848 travelling about for this purpose. He recorded some 2,800 variants of runes most of them hitherto unknown. Lonnart now began working on the final form of the Kalevale .... the new or present edition of the Kalevale appeared in 1849.

में रुचिकारक होता है। गायक की गायकी तो कथा को कुछ अधिक स्वाद्प्रद ही बनाती है। अतः यह 'संक्षिप्त गद्यात्मक सारांश' इस पवाड़े का यथार्थ आधार माना जा सकता है।

यह पवाड़ा ५२ साकों का बना हुआ है। १२ वर्ष का देश-निकाला मिलने पर सुलतान चलते-चलते, गोरखनाथ की धूनी के पास पहुंचा। उनके चरणों में शीश नवाया और सारा हाल कह सुनाया। गोरख ने कहा—'इस बारह वर्ष की तपस्या को तू पूरा कर, पर-स्त्री को माता समझना और पराये धन को धूल। मुंह से झूठ न बोलना, युद्ध में पीठ न दिखाना। ५२ साके तुमसे होंगे। उसकी सिद्धि का वरदान तुम्हें दे रहा हूं।' यह वरदान गुरु गोरखनाथ ने सुलतान को पहली ही भेंट में दे दिया था फलतः यह पूरा गीत या पवाड़ा सुलतान के ५२ साकों से युक्त होना चाहिए। ये बावन साके ये हो सकते हैं—

१. मत्स्य-वेध
२. दानव (चंदवली) का संहार
३. दानव के शव को चिता पर रखना
४. भीमसिंह बनजारे को परास्त करना
५. सत्यक्रिया से नरवरगढ़ के ढाई कंगूरे झुकना
६. थानिया ठग का संहार
७. मोतिया ठग का संहार
८. हकड़ा दरिया को पार करना
९. हुड़दम बेगम को परास्त करना
१०. निहालदे का चिता से उद्धार
११. नदी में बह जाने के बाद निहालदे तथा घोड़े की पुनः प्राप्ति
१२. कीचलगढ़ में अपने ही बाग में पिता की तोपों का सामना
१३. सत्यक्रिया से चकवै बैण के किले को खोलना
१४. खैराती बाजार खोलना
१५. बून्दी के हाड़ा सरदार श्यामसिंह को परास्त करना
१६. अदलीखां पठान (आबू) से महकदे की मुक्ति कराना
१७. धरतीधकेल दानव को मारना
१८. देवलगढ़ के भानूसिंह की पराजय
१९. बावड़ी की कोठरी से मुक्ति पाना
२०. कच्छ के जगतसिंह की पराजय
२१. नरवल के द्वार खोलना
२२. बुधसिंह, ताराचन्द-मेघचन्द की पराजय

२३. इन्द्र के अखाड़े से पोप के फूल लाना
२४. मारू को भात पहनाना
२५. गंगराड़ की झोड़ी में निहालदे का पीवण सांप से पुनः संजीवित होना
२६. मोतीशहर की पनवाड़िन का जादू समाप्त करना
२७. पथरीगढ़ से स्वर्ग जाकर सबलसिंह कछवाहा को हराना
२८. स्वर्ग में चकवै वैण के दर्शन
२९. शंखपाड़ दानव को पछाड़ना
३०. कछुए का उद्धार करना
३१. आभा नगरी से आभलदे का अपहरण
३२. आभसिंह को परास्त करना
३३. जलदीप और रूपांदे का दानव के यहां से लाना
३४. गेंद को परास्त कर ढोल को छुड़ाना
३५. सबलसिंह को परास्त करना
३६. चिमनकोट के भारामल को ठगना
३७. वेंड राजा को परास्त करना
३८. तांवागढ़ में जलदीप का विवाह करना।

इन्हीं मुख्य साकों में पिरोये कुछ अन्य कृत्यों को भी साका मानकर ५२ संख्या पूरी की जा सकती है।

गायक ने अन्त में बताया है कि जलदीप के विवाह तक सुलतान ५२ साके कर चुका था। यही वरदान उसे प्राप्त था। हमने इस समस्त कथासार में से खींचतान कर ३८ साके निकाले हैं।

'साका' करने का अर्थ होता है किसी न किसी प्रकार की वीरता का प्रदर्शन।[1] चारों प्रकार की वीरता[2] के कार्य साके माने जाएंगे। साके करने के लिए सुलतान का जीवन समर्पित था। अतः स्पष्ट है कि निहालदे-सुलतान का यह पवाड़ा वीरगाथा है।

---

1 साका-संज्ञा पु० [सं-शाका] (६) कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग न कर सकें और जिसके कारण कर्ता की कीर्ति हो।
हिन्दी शब्द सागर, ना० प्र० सभा, काशी। पृ० ३५००।

2 युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और कर्मवीर या दयावीर। चार प्रकार के वीर, इनकी वीरता।

पर, यह एक अद्भुत वीरकथा है। अद्भुत इसलिए है कि इसका विधान सभी प्रचलित परंपराओं से भिन्न प्रतीत होता है। वीरकथा (Hero tale) लोक-कहानियों में एक अलग वर्ग माना गया है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के स्टिथ थामसन ने फोक टेल नाम की प्रसिद्ध कृति में लोककहानी के विविध भेद या वर्ग बताये हैं वे हैं : मार्खें (Marchen) उसकी व्याख्या यों दी गई है :

'A *Marchen is a tale of some length involving* a succession of motifs or episodes. It moves in an unreal world without definite locality or definite characters and is filled with the marvellous. In this never-ever land humble heroes kill adversaries, succeed to kingdoms, and marry princesses. Since Marchen deals with such a chiemerical world, the name Chimerate (किमैरेट) has been suggested for international usage, though it has not yet received wide adoption.'

अंग्रेजी में मार्खें का कुछ-कुछ पर्याय fairy tale (परी कहानी) माना जाता है।

दूसरा भेद या वर्ग नॉवेला (Novella) है। इसका उदाहरण अलिफ़लैला या सिंदबाद नाविक माना जा सकता है। इसकी व्याख्या यों दी गई है :

"The action occurs in a real world with definite time and place and though marvels do appear, they are such as apparently call for the hearer's belief in a way that the marchen does not."

तीसरा वर्ग 'वीर कथा' का है। स्टिथ थामसन ने बताया है कि "Hero tale is a more inclusive term than either Marchen or Novella. Since a tale of this kind may move in the frankly fantastic world of the former or the psuedo-realistic world of the latter. Most Marchen and Novella, of course, have heroes, but would hardly be called hero-tales unless they recount a series of adventures of the same. Almost everywhere are found such clusters of Tales relating to the superhuman struggles of man like Hercules or Theseus against a world of adversaries." फिर स्टिथ थामसन ने एक वर्ग बताया है saga या local legend का अर्थात स्थानीय अवदान का। एक अन्य वर्ग है Ectological tales या व्याख्याकारी कहानियों का। एक अन्य

है मिथवर्ग। पशु-पक्षी कथा तथा तंत्राख्यान कहानी भी एक-एक वर्ग बनाती है। चुटकले short anecdotes और सन्त-कथाएँ या saint's legends भी एक महत्वपूर्ण वर्ग है पर तभी जब कि ये संत-कथाएँ लोक मानसिकता से ओतप्रोत हों।

वीरकथा के लिए स्टिथ थामसन ने जो सबसे प्रमुख आवश्यकता बतायी है वह है एक ही वीर पुरुष के पराक्रमों की श्रृंखला a series of adventures. दूसरी बात यह बतायी गई है कि उसमें परी कहानी भी समा गयी हो और नोबेल्ला या पवाड़े का यथार्थ या अर्द्ध यथार्थ जगत् भी समाया हुआ हो।

'निहालदे-सुलतान' के पवाड़े में सुलतान के साके स्टिथ थामसन की परिभाषा में आते हैं[1] पर इस परिभाषिकता के जाल से मुक्त होकर देखें तो भी 'सुलतान' एक अद्वितीय वीर है।[2] कथाकार या गायक उसे यही मानता है। नरवरगढ़ में मेंदा ने उसका वर्णन यों किया है :

'मेरी भावज महलां में है आगयो वीर कोई औतार है,
पाय पदम हे मेरी भावज माथै मण दिपै।

आगे स्टिथ थामसन ने वीर कथाओं की कुछ विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं :

"Of first interest if such tales are the circumstances of the

---

द्रष्टव्य—

1 "The warrior kings,
In height and
prowess more than human, strive
Again for glory, while the
golden lyric
Is ever sounding
in heroic ears
Heroic hymns" —Tennyson

2 वीर का अंग्रेजी पर्याय hero है। इसके संबंध में यह लिखा गया है—
The term 'hero' is usually applly applied to one who stands out from among ordinary mortals by his superior quality or qualities, conspicuous bravery or sustaining power of endurance being the distinguishing features.
—Encyclo of Religion and Ethics. VI. Vol, Page 633.

heroes birth and childhood, and then the various causes assigned for his setting forth on adventures"

वीर पुरुष का जन्म अलौकिक रूप में होता है। हमारे नायक सुलतान का जन्म भी अलौकिक है। अलौकिक परिस्थिति और अलौकिक घटनाक्रम। कथाकार ने कितने ही कथा-तन्तु एक में मिला दिये हैं। हिरण का पीछा करते राजा बाण से हिरण को घायल करते हैं। हिरण एक गुफा में प्रवेश कर जाता है। राजा भी गुफा में जाते हैं। वहां गुरु गोरखनाथ मिलते हैं। इस अंश में हमें हिरण या मृग तो उन प्रेम-कहानियों से आया प्रतीत होता है जो मृगावती जैसी प्रेम कहानियों के समकक्ष हैं। कथासरित्सागर की भी एक प्रेम-कहानी में शक्तिदेव एक बनैले सूअर का पीछा करता है और उसे घायल कर देता है। वह एक गुफा या बिल में चला जाता है। शक्तिदेव भी बिल में प्रवेश कर उसके द्वारा एक उद्यान में पहुँचता है जहाँ उसे सुन्दर भवन और एक सुन्दरी मिली। वह उसकी पत्नी बन गयी।[1]

पर हमारी इस कथा के गायक ने एक अद्भुत मिश्रण कर दिया है। वह राजा गुफा में सुन्दरी को नहीं, गोरख सिद्ध को देखता है और गोरखनाथजी की सेवा में लग गया। उसने अपनी पत्नी की इच्छा अपने मन में की और उसकी पत्नी वहाँ तुरन्त और अनायास ही प्रकट हो गयी। अर्थात् हिरण का पीछा+गुफा[2]=प्रेम कहानी की भूमि[3] : गुरु गोरखनाथ (गुफा के संयोग से)+उनकी कृपा से गुफा में ही पत्नी की प्राप्ति=प्रेम कथा की परिपूर्ति, भले ही उसी रानी की प्राप्ति हुई, जो विवाहिता थी।

और यहाँ प्रसन्न होकर गुरु गोरखनाथ ने रानी को जौ दिये। जौ उसने खा लिये और गर्भवती हो गयी। जौ, फल, खीर या ऐसी ही कोई वस्तु खाने से गर्भाधान का एक अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। स्टिथ थामसन ने लिखा है कि–

---

1 कथा सरित्सागर, ५ वां लम्बक, श्लोक १७३-१८५।

2 कहीं-कहीं सरोवर है जैसे—हंस बाला (Swan maiden) में।

3 हिरन या मृग के माध्यम से प्रेम कथा की संभावना भी एक ही पक्ष है। नाथसंप्रदाय पर दृष्टि डालने से हिरन का अभिप्राय वहाँ हमें इस प्रकार मिलता है— "मुख्य कथा यह है कि ये किसी मृगीदल-विहारी मृग को मार कर घर लौट रहे थे तब मृगियों ने नाना प्रकार के शाप देना शुरू किया और वे नाना भाव से विलाप करने लगीं। दयार्द्र राजा निरुपाय होकर सोचने लगा कि किसी प्रकार यह मृग जी जाता तो अच्छा होता।

फुटनोट शेष आगे पृष्ठ पर।

"The general idea of the Miraculous birth of the hero is so common all over the continent that a listing of occurrnnce is of no special value. On the other hand particular way in which the hero is conceived or brought forth is frequently distinctive enough to furnish the basis for interesting studies of motif distribution. Conception from rain falling on a woman seems to be confined to South Western legend but pregnancy from eating is known to practically all tribes except those of the south-west. Pregnancy from some casual contact with a man occurs most frequently in the North Pacific areas, but also in the plains and plateaux."

स्टिथ थामसन के इस कथन के अनुसार कुछ खाने के उपरान्त गर्भ-धारण यूरोप में दक्षिण पश्चिमी जातियों की कहानी के अतिरिक्त कांटीनेण्ट की सभी जन जातियों की कहानियों में मिलता है। भारत में भी यह अभिप्राय बहुत प्रचलित है। दशरथ के पुत्र यज्ञ के चरु की खीर से पैदा होते हैं। जहरपीर भी गोरख के दिये जौ से उत्पन्न होते हैं।[1] स्टिथ थामसन और वारेन ई० रावर्ट्स ने 'टाइप्स आफ इंडिक ओरल टेल्स' में कथामानक संख्या ३२५ The magician

---

फुटनोट पीछे पृष्ठ पर—

संयोगवश गुरु गोरखनाथ वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने इस शर्त पर कि मृग के जी जाने पर राजा उनका चेला हो जायगा, मृग को जिला दिया। राजा चेला हो गया (नाथ सप्रदाय, पृष्ठ १६७)

आगे, विधना क्या कर्तार का बनाया हुआ भरथरी चरित्र के आधार पर यह भी लिखा है कि भरथरी या भर्तृहरि उज्जैन के राजा इन्द्रसेन के पौत्र और चन्द्रसेन के पुत्र थे। वैराग्य ग्रहण करने के पूर्व राजा सिंहल देश की राजकुमारी सामदेई से विवाह करके वहीं रहता था। वहीं मृग का शिकार करते समय उसकी गुरु गोरखनाथ से भेंट हुई थी। (नाथ संप्रदाय, पृ. १६७) हमारी इस कथा में कथाकार ने हिरण को ही स्वयं गोरखनाथ बना दिया है। उसका भी संबंध गोरख के इन शब्दों से जोड़ा सकता है—

'भणत गोरखनाथ मंछिद्र नां पूता,
मार्‌यौ मृघ भयौ अवधूता।

(मारा हुआ मृग=मन) अवधूत (=विरक्त योगी) हो गया।
५/२६ गोरखबानी, पृ० १२०।

1 राजा रिसालू का जन्म भी गुरु गोरख के शिष्य पूरन द्वारा अक्षत का एक दाना देने से हुआ। (लिजेंड्स आफ पंजाब, टेम्पल)।

and his pupil (जादूगर और उसके शिष्य) कहानी दी है। इसमें जादूगर के दिये 'आम' से संतान मिलती है। ब्रज की एक कहानी में भी यही तत्व है। नल का जन्म भी ऐसे ही उपक्रम से होता है और वही यहाँ है: गोरखनाथ, उनके जौ और रानी करणावती तथा राजा मैनपाल और रानी के जौ खाने से 'सुलतान' का जन्म। इस प्रकार इस कथाकार ने वीरकथा और प्रेमगाथा के तत्वों का समीकरण यहाँ प्रस्तुत कर दिया है।

यह बात द्रष्टव्य है कि सुलतान को सुन्दरता में भी अद्वितीय बताया गया है। एक व्यक्ति उसके संबंध में कुछ इस प्रकार कहता है:

आज इस बाग में एक ऐसा शख्स आया है जिसके सौन्दर्य को देख लेने पर नेत्र सार्थक हो जाते हैं। आँखें तृप्त हो जाती हैं। ऐसा सुन्दर व्यक्ति मैंने तो अपने जीवन में कभी देखा नहीं और न भविष्य में देखने की कोई उम्मीद ही है। रानी मारू उसे देखते ही मूर्छित हो गयी थी। इसी प्रकार और भी कई स्त्रियाँ सुलतान के सौंदर्य के कारण मुग्ध हुई। उन्होंने उससे विवाह का प्रस्ताव किया। इस प्रकार शौर्य और सौन्दर्य दोनों का प्रतीक है--सुलतान। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने राम में जिस शील-शक्ति-सौन्दर्य के दर्शन किये थे वही मूर्ति लोककथाकार ने निहालदे सुलतान के सुलतान में देखी है। 'गुरु' के आशीर्वाद या वरदान से पुत्र का जन्म, पुत्र को वीर बनाता है। यह चमत्कार-विधि ही मानी जायगी। ज्योतिषी बतलाते हैं कि राजा मैनपाल और करणावती के संतान का योग ही नहीं अतः सुलतान पूर्णतः गुरु के वरदान से विशिष्ट देन के रूप में उत्पन्न हुआ है।

स्टिथ थामसन के प्रमाण से जन्म के उपरान्त वीर-कथाओं में जो बात ध्यान आकर्षित करती है वह है—

"And then the various causes assigned for his setting forth on adventures."

ऐसे वीर पुरुष को घर छोड़कर यात्रा पर जाना पड़ता है और इस यात्रा में उसे विविध साहसपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। भारत में ऐसे वीरों की एक लम्बी परम्परा है। राम को देश-निकाला मिला विमाता के कारण, जगदेव पंवार को भी विमाता के कारण घर छोड़कर यात्रा पर निकलना पड़ा है। रिसालू को किसी भिन्न कारण से घर छोड़ कर जाना पड़ा है पर सुलतान और रिसालू की परिस्थितियां कुछ-कुछ समान हैं।

सुलतान सात वर्ष का हुआ तो उसने तीर-कमान बनाई और पनघट पर घड़े फोड़ना शुरू किया। शिकायत पहुंचने पर राजा ने तांबे के घड़े बनवा दिये।

सुलतान ने भी तीर कमान पक्के बनवाये और एक ब्राह्मण-कन्या का कलश फोड़ दिया। उसके हठ पर सुलतान को देश निकाला मिला। यही कुछ ऐसा ही वृत्त रिसालू का है।

"So Raja Rasalu followed her directions and reached Sialkot, and found the women of the city drawing water from the well which is near the entrance of it and he began throwing stones at their earthen pitchers and broke them all. The women went to Raja Salbahan to complain against Raja Rasalu. 'He is my son', said Raja Salbahan, and I love him greatly. So take your pitchers of iron and brass ... .., so the women went with iron pitchers and the poor got them from the treasury. But when they went to draw water from the well, Raja Rasalu made holes in all the pitchers with his iron-headed arrows."

—The legends of the Punjab by Temple.

यद्यपि ज्योतिष द्वारा वर्जन भी रिसालू के लिए एक बाधा थी पर यह घड़ा फोड़ना और तद्विषयक उसकी शिकायत को भी रिसालू के कथाकार ने उसके घर छोड़ कर जाने का कारण कल्पित अवश्य किया है।

तो १२ वर्ष तक का वनवास मिला सुलतान को। १२ की संख्या भी ऐसे सदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। रिसालू को १२ वर्ष तक न देखने का वर्जन ज्योतिष से था उसके माँ-बाप को। राम को भी १२ वर्ष का वनवास मिला।[1]

हमारे सुलतान के साथ यहाँ भी एक विशेषता है। उसे दो बार देश-निकाला मिला है। एक बार तो घड़े फोड़ने पर ब्राह्मण-कन्या के हठ से। यह हुआ कीचलगढ़ में। कीचलगढ़ से ईडरकोट या ईडरगढ़ गया और वहां के राजा कमधजराव ने उसे अपना धर्मपुत्र बना लिया। यहां धर्मभाई और धर्ममाता के कारण उसे ईडरकोट छोड़ कर जाना पड़ा। धर्ममाता का समीकरण 'विमाता' से किया जा

---

1 सभवतः कथाकार को 'गोपीचन्द' की कथा का प्रचलित एक रूप भी स्मरण में था जो अनजाने में इस कथा में जुड़ गया है। बंगला भाषा में 'मयनामतीर गान' में बताया गया है कि यह देखकर कि गोपीचन्द की आयु केवल १८ वर्ष है, उसने गोपीचन्द को हाड़िपा जालन्धरनाथ का शिष्य बनवा दिया और वे बारह वर्ष तक के लिए प्रव्रजित हो गये।

सकता है। अतः दूसरा देशत्याग राम के देशत्याग के समकक्ष-सा हो जाता है किन्तु अवधि की दृष्टि से पहला ही राम जैसा है।

यहां से हम देखते हैं कि कीचलगढ़ का सूत्र तो बिलकुल विच्छिन्न हो गया, पर ईडर का सूत्र निरन्तर सुलतान से जुड़ा रहा। पहले तो निहालदे के कारण, निहालदे का विवाह सुलतान से हुआ और इसी कारण निहालदे को ईडरगढ़ में धर्मपिता की देख-रेख में छोड़ कर वहां से चले जाना पड़ा। निहालदे को वह वचन दे गया था कि वह श्रावण की तीज को लौट आयेगा। निहालदे ने कहा था कि यदि तीज को न आये तो मैं सती हो जाऊंगी। ईडरगढ़ में दिया गया यह वचन सुलतान-कथा की पहली धुरी है।

पहले निष्कासन के अन्तर्गत यह दूसरा निष्कासन है किन्तु यह निष्कासन आत्मारोपित है। परिस्थितियां धर्ममाता ने पैदा की हैं। निष्कासन का निर्णय स्वयं सुलतान का है। पहली में निष्कासन की अवधि पिता+राजा ने निर्धारित की है। दूसरी निष्कासन की अवधि स्वयं सुलतान ने निर्धारित की श्रावणी तीज, और यही तिथि निहालदे के लिए आन बन गयी और सुलतान के लिए भी।[1]

यहां तक की गाथा को प्रेमगाथा भी कहा जा सकता है किन्तु स्पष्ट है कि इस अंश में भी प्रेम को उतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना शौर्य को। निहालदे और सुलतान वर्षा की झड़ी में मिले, निहालदे की वाटिका में। दोनों में प्रेम हो गया पर निहालदे को सुलतान ने प्राप्त किया स्वयंवर में मत्स्यवेध करके। मत्स्यवेध की कल्पना का स्रोत महाभारत ही हो सकता है। मत्स्यवेध की युक्ति स्वयं सुलतान ने निहालदे को सुझाई है। यह युक्ति धर्म-संकट से बचने के लिए है। निहालदे की सगाई पहले गयी कीचलगढ़ सुलतान को, वह बारह वर्ष के वनवास पर था, अतः उसकी सगाई ईडर में फूलकँवर को, सुलतान के धर्म-भाई को चढ़ा दी गयी थी। इसी धर्मसंकट से बचने के लिए मत्स्यवेध से स्वयंवर रचा गया और उसमें परीक्षा रखी गयी कि जो मत्स्यवेध करे वह निहालदे का वरण करे अतः स्वयंवर हुआ

---

1 इसी कथा-प्रसंग में दक्षिण की हीरां वेश्या का भी उल्लेख है-जिसने इन्हें प्रेम करना चाहा पर इन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। उसने इन्हें बहुत दुःख दिये। गुरु इन्हें कुछ कोड़ियों में उसके यहां बंधक रख गये थे। १२ वर्ष बाद यहां से ये लौटे। १२ वर्ष के देशनिकाले के प्रसंग में यह द्रष्टव्य है कि सुलतान भी मारू के यहां रहे। वहां 'मारू' का ही बोलबाला था, ढोला का नहीं। वही 'हीरां' इस कथा में संभवतः 'मारू' बनकर आयी है।

—नाथ सम्प्रदाय, पृ० १६९-१७१।

जिसमें फूलकँवर असफल रहा। सुलतान ने मत्स्यवेध किया और निहालदे का वरण किया। इस मत्स्यवेध के कारण प्रेम से शौर्य को प्रमुखता मिल गयी। और यह एक साका भी हो गया। यही पहला साका है और इसका फल स्वयं सुलतान को मिला है—स्त्री-प्राप्ति के रूप में। कथासरित्सागर[1] की भूमिका में डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने कथासरित्सागर की आयोजना पर लाकोत का मत देते हुए लिखा है कि—

"लाकोत के मत के अनुसार नष्ट हुई बृहत्कथा की आयोजना इस प्रकार थी—प्रस्तावित भाग में उदयन और उसकी रानी वासवदत्ता एवं पद्मावती की सुविदित कथा थी। वासवदत्ता का पुत्र नरवाहनदत्त जब युवा राजकुमार की अवस्था को प्राप्त हुआ तब उसका गणिकापुत्री मदनमंचुका से प्रेम हो गया। उसने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध उससे विवाह कर लिया। विद्याधर राजा मदन-मंचुका को हर ले गया। मदनमंचुका की खोज करते हुए नरवाहनदत्त ने विद्याधर-लोक और मनुष्य-लोक में नये-नये पराक्रम किये। दीर्घ-पराक्रम के बाद मदनमंचुका से उसका मिलन हुआ, वह स्वयं विद्याधर चक्रवर्ती बना और मदनमंचुका उसकी पटरानी हुई। इससे पूर्व उसके पराक्रमों की सूची में वह हर बार एक स्त्री से विवाह करता है।" अर्थात् प्रत्येक पराक्रम का फल एक स्त्री की प्राप्ति।

इसी कथासरित्सागर के आदर्श पर लिखी गयी—आदर्श पर ही नहीं, विद्वानों की राय में पूर्ण अनुकरण पर बनी हुई वसुदेवहिंडी में कथा का रूप क्या रहा? डा० अग्रवाल लिखते हैं:

संघदास ने गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा की शैली को तो अपनाया, किन्तु अपने ग्रन्थ को बदल कर 'वसुदेवहिंडी' कर दिया, प्रद्युम्न ने कुछ शरारत से बड़े वसुदेव को जिस प्रकार छेड़ दिया था[2], उससे वसुदेव के मन में आपबीती सुनाने के लिए एक फरहरी-सी उत्पन्न हो गयी और २९ लम्भकों के रूप में उन्होंने अपने २९ विवाहों की कहानियां सुना डालीं।[3]

---

1 विहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना का प्रकाशन, पृ० १३-१९।

2 इस छेड़खानी का रूप यह था—सत्यभामा के पुत्र सुभानु के लिए १०८ कन्याएं इकट्ठी की गई थीं. किन्तु उनका विवाह रुक्मिणी के पुत्र साम्ब से कर दिया गया। इस पर प्रद्युम्न ने वसुदेव से कहा—देखिए साम्ब ने अन्तःपुर में बैठे-बैठे १०८ बहुए पा लीं, जबकि आप १०० वर्ष तक उनके लिए घूमते फिरे।

3 वही, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० १२।

एक रूप वह होता है जिसमें एक प्रेमी होता है। दूसरा पराक्रमी मित्र होता है। प्रेमी के लिए उसकी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए पराक्रम करने होते हैं - पराक्रमी मित्र को। इसमें प्रेम का सूत्र और वीरता का सूत्र दोनों साथ-साथ जुड़े रहते हैं पर कथा का यथार्थ निर्माण होता है विविध पराक्रमों से. जिनकी प्रेरणा में होता है परहित-साधन का पावन सात्त्विक उद्देश्य। इसे परहित कातरता भी कह सकते हैं।

हमारी इस कथा में कथाकार ने प्रेम के प्रसंग को वहुत ही कम स्थान दिया है। इस प्रसंग को एक तो मत्स्यवेध[1] के पराक्रम का साधन बनाया है, दूसरे निहालदे से विवाह का भी साधन है।[2] निहालदे से विवाह आवश्यक था। इससे ही कहानी आगे बढ़ती है और वे स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो इस कथा को वह रूप प्रदान करती हैं जो इसका वैशिष्ट्य है। निहालदे से विवाह हुआ और वर वधू के ईडर पहुंचते ही दोनों का परस्पर विछोह हो गया। सुलतान को ईडर छोड़ कर चले जाना पड़ा। स्पष्ट है कि कथाकार की दृष्टि में निहालदे सुलतान के विवाह से दोनों के प्रेम की स्थिति दिखाना अभीष्ट नहीं। यह भी द्रष्टव्य है कि वर-यात्रा के समय सुलतान के रूप का जो वर्णन किया गया है, वह यद्यपि 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी' की प्रणाली का है तथापि जो रूप दर्शन का विवरण है, उसमें किसी 'प्रेमी' का उल्लेख नहीं है। वर्णन देखिए—

छत्तीसो जाति के लोग वर को देख कर
उसे सराह रहे थे। सुलतान के जगमगाते हुए
भाल को देख कर सब यही सोच रहे थे
निश्चय ही यह कोई अवतारी पुरुष है। कोई
कहता, यह गोपीचन्द का अवतार है, कोई उसे
भरथरी वतलाता, कोई अजनीपुत्र हनुमान
वतलाता, कोई उसे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न में से
एक वतलाता—कोई कहता—

---

1 इस निहालदे सुलतान की प्रेमगाथा में भी आगे 'सुलतान' को फूलकँवर के लिए, प्रेमिका प्राप्त करने के लिए साका करना पड़ा है।

2 नाथ सम्प्रदाय में मत्स्यवेध का एक विशेष उल्लेख गोरखनाथ के इस दोहे में मिलता है :

इक लख सींगणि नव लख वान,
वेध्या मीन, गगन अस्थान। १२७।
—गोरखवानी, पृ० ४५।

'एक वी भांण तो उग्यो आकाश में,
आज यो दूजो ऊग्यो केलागढ़ मांय।'

यहां कथाकार को स्मरण आये हैं गोपीचन्द भरथरी जैसे नाथ संप्रदाय के महान् योगी, हनुमान जैसे पराक्रमी ब्रह्मचारी सेवक, अर्जुन तथा भीम जैसे वीर या फिर मर्यादा पुरुषोत्तम राम और उनके भाई।

तुलसी ने राम के सम्बन्ध में ऐसे ही अवसर पर 'जाकी जैसी भावना' बतायी। उसमें लिखा—

"नारि बिलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप
जनु सोहत सिंगारु धरि, मूरति परम अनूप।२४।
—बालकाण्ड

रामहिं चितव भाय जेहि सीया।
सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया।।

और स्वयं कवि की दृष्टि में—

सहज मनोहर मूरत दोऊ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ।२४३।
—बालकाण्ड

स्पष्ट है कि महाकवि तुलसी भी काम-क्रोध को छोड़ नहीं सके। किन्तु हमारा कथाकार प्रेमकथा को कथते हुए भी उसे वीरकथा ही बना रहा है। क्योंकि कई पराक्रमों के उपरान्त उसमें आयी हुई स्त्री स्वयं अपना समर्पण सुलतान को करना चाहती है—प्रेमकथा का फल, पर सुलतान की अस्वीकृति से कथा की प्रकृति बदल जाती है। एक और बात ध्यान आकर्षित करती है: प्रिय, प्रेमी या पति के चले जाने पर प्रेमकथाकार नायिका या प्रेमी की विरह-वेदना का वर्णन करता है, और उसे ही प्रमुखता देता है। कवि संदेशरासक में नायिका की विरह-व्यथा की ही कथा कहता है। जायसी के पद्मावत में भी नागमति का विरह प्रसिद्ध है किन्तु हमारी गाथा में ऐसा नहीं होता अर्थात कथाकार एक बार और प्रेमकथा के मार्मिक स्थल की उपेक्षा कर गया है। वस्तुतः उसकी दृष्टि उतनी निहालदे की ओर नहीं जितनी सुलतान की ओर है। निहालदे का विरह प्रकट अवश्य किया गया है पर पत्रों में जो मारू को लिखे गये थे, विरह-वर्णन मार्मिक है, पर समस्त कथा-विधान में वह गौरव का स्थान नहीं ग्रहण कर पाता।

सुलतान गोरखनाथ का शिष्य हो गया है और उसे गोरखनाथ ने यह उपदेश दिया था—

(१) परायी स्त्री को माता समझना; (२) पराये धन को धूल, (३) मुँह

वसुदेव भाई से रूठ कर घर से निकल पड़े थे और पराक्रमों की यात्रा पर चल पड़े थे। पराक्रमों का फल था—हर पराक्रम से स्त्री-रत्न की प्राप्ति। कथा-सरित्सागर को भारतीय प्रेमगाथा या काम-कथा माना जा सकता है क्योंकि इस महान् ग्रन्थ का आरम्भ कामदेव की विजय से युक्त मंगलाचरण से होता है—

श्रियं दिसतु वः शम्भोः श्यामः कण्ठो मनोभुवा-
अंकस्थपार्वतीदृष्टिपाशैरिव विवेष्टितः।

साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि नरवाहनदत्त भी कामदेव का अवतार माना गया है। नरवाहनदत्त के जन्म पर आकाशवाणी हुई :

गगनादुच्चचारैवं काले तस्मिन् सरस्वती ॥७२॥
कामदेवावतारोऽयं राजन् जातस्तवात्मजः।
नरवाहनदत्तं च जानीह्येनमिहाख्यया ॥७३॥
अनेन भवितव्यं च दिव्य कल्पमतन्द्रिणा।
सर्वविद्याधरेन्द्राणामचिराच्चक्रवर्त्तिना ॥७४॥

इससे पहले भी जब उदयन और वासवदत्ता ने पुत्र-कामना से शिव की आराधना की थी तो प्रसन्न होकर स्वप्न में शिव ने कहा था—

उत्तिष्ठतां स युवयोः कामांशो जनिता सुतः।
नाथो विद्याधराणां यो भविता मत्प्रसादतः ॥१४४॥

यहां 'कामांश' के जन्म की बात कही गयी है। रानी को स्वप्न में एक जटाधारी द्वारा फल दिये जाने का भी उल्लेख कथासरित्सागर में है।[1]

हमारे सुलतान के जन्म के सन्दर्भ में 'शिव' गोरखनाथ हो गये हैं, फल ने जौ का स्थान ले लिया है। जैसे स्वप्न माया है, वैसी ही माया गोरखनाथ ने आवृत्त करदी है—मैनपाल है, रानी करणावती भी माया से प्रकट हो जाती है[2] और उसे जौ मिल जाता है। स्वप्न यहां भी स्वप्न है—गोरखनाथ कहते हैं—

सुपना में दीख्या वी गोरखनाथ जी,
कोई वात सें मतना घवराइये चेली दिल का वीच में

---

1 कथा सरित्सागर, पृ० ४७४।

2 जद वैं मृगा का वी वन गया गोरखनाथ।.... काई दिन वी वैठा व राजा नै जिस दिन होलिया,.......जैंका चित् पैं वी आगई राणी करणावती,....... जद वाँवाँ अंग कैं वैठी थी राणी पास, ऐसी के माया या वी आडे फिर गई।

जो दिया मनै तेरे वी हाथ।
नवैं वी महनै जलमैगा व लड़का वड़ा करामती।
जो सातों वी पीढ़ी वी दे उजाल।
कोई बात को विचार चेली मत करै
वड़ो कलाधारी जलमैगा वे लड़का जांण।

इस स्वप्न में जन्म लेने वाला सुलतान कलाधारी होगा, नरवाहनदत्त की भांति कामांश नहीं। इस तुलनात्मक विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि निहालदे-सुलतान का ग्रारम्भ भी कथासरित्सागर के समान होते हुए भी विवेषतः भिन्न हो गया है।

कथा-विकास में हमें एक स्थिति ऐसी दिखायी पड़ती है जिसमें काम-कथाएं वीरभाव को लेकर चल रही थीं, पर झुकाव 'काम' की ग्रोर था। हिन्दी साहित्य के साक्ष्य से भी यह सिद्ध होता है।

संवत् १५१६ में दामो ने 'लखमसेन पद्मावती' के प्रथम ग्रध्याय के प्रारंभ में लिखा—

सुणहु कथा रस लील विलास। योगी मरण राय वनवास।
पद्मावती वहुत दुःख सहइ। मेलउ करि कवि दामउ कहइ।
काममीर हूंती नीसरइ। पवन हू मत ग्रमृत रस भरइ।
सुकवि दामउ लागइ पाइ। हम वर दीया सारद माय।
नयु गणेश कुंजर केस। मूसा वाहण हाथ फरेस।
लाडू वावण जस भरि थाल। विघन हरण समरू दूंदाल।
संवतु पनरइ सोवीत्तरा मंझार। ज्येष्ठ वदि नवमी बुधवार।
सप्तातारिका नख त्रृढ़ जाणि। वीरकथा रस करू वखांण।
सरस विलास कामरस भाव। जाहु दुरोय मनि हूंउ उछाह।

यहाँ कामरस ग्रौर वीररस दोनों का समान उल्लेख है। साथ ही पृथ्वी-राज रासो पर दृष्टि डालते हैं तो वहाँ भी वीररस ग्रौर कामरस का समरस ग्रायो-जन हुग्रा मिलता है। यद्यपि कहानियों के दो वर्ग ग्रलग किये जा सकते हैं—एक वह जिसमें पराक्रम=युद्ध ग्रादि ग्रौर फल 'स्त्री' प्राप्ति होता है। दूसरा वह जिसमें स्त्री को प्राप्त करने के लिए ही युद्ध होता है। इनमें से पहली कथा वीरकथा या वीरगाथा ही कही जायगी क्योंकि इसमें पराक्रमों या संकटों से संघर्ष 'स्त्री' को लक्ष्य वनाकर नहीं है। दूसरे प्रकार की कथा प्रेमगाथा है। इसमें स्त्री, सुन्दरी या प्रेमिका के लिए पराक्रम, प्रयत्न, सकट, योग या परीक्षाग्रों में से गुजरना होता है। इसमें प्रेम ही मूल प्रेरणा होती है। इस प्रेमगाथा का ही

से झूठ न बोलना और (४) युद्ध में पीठ न दिखाना।

इसमें पहली दो बातें उस प्रसिद्ध उपदेश-वाक्य से मिलती हैं जो इस प्रकार हैं—मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्, आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति सः पण्डितः। पर गोरखवानी का यह चरण भी यह उपदेश देता है कि 'काछ का जती, मुख का सती। सो सत पुरुष उत्तमो कथीं।[1] ब्रिग्स के अनुसार रांझा से गोरख ने कहा था—युवती स्त्री को बहन और वयस्का को माता के नाम से अभिनन्दित करो।[2]

यह सुलतान ईडरगढ़ से चलकर नरवरगढ़ पहुंचता है। मार्ग घटना रहित है। यहाँ उसकी भेंट पनिया पठान से होती है। वे मित्र बन जाते हैं। पनिया पठान के स्थान पर सुलतान नगर की देखभाल रखने नगर में परिभ्रमणार्थ निकल पड़ता है। यहाँ उसका दूसरा साका होता है। वह एक सेठ के स्थान पर दानव की बलि बन कर जाता है और दानव को मार डालता है।

यह अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय कहानी है। भीम ने एकचक्रा नगरी में इसी प्रकार एक ब्राह्मणी के पुत्र के स्थान पर जाकर दानव का संहार किया था। Types of Indic Oral Tales–India, Pakistan and Ceylon; by Stith Thompson and Warren E. Roberts में 300–749 A Tales of Magic शीर्षक के 300–399 Supernatural Adversaries उपशीर्षक के अन्दर ३०० संख्या का प्रथम कथानक The Dragon slayer इसी कथा-रूप से संबद्ध है। इस पर दिये गये विवरण को यहां ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है:

300. The Dragon slayer. A hero on his travels comes to a devastated kingdom. He sees a weeping woman who tells him her son is next to be sacrificed to a monster. The hero takes the son's place, slays the monster, and cuts off the claws. A man of a low caste (sweeper, scavanger, washerman etc.) sees the corpse, goes to the King, and claims the reward of the princess and half the kingdom. The hero appears and produces the claws often combined with other Tales.

II (c) A man is demanded as a sacrifice.

एक मनुष्य बलि के लिए मांगा जाता है।

---

1 गोरखवानी—४५८, पृ० ५२।

2 गोरखनाथ और उसका युग, पृ० ५६।

III (d) An ogre (Rakshasa, etc) एक राक्षस (e) A tiger शेर
(f) A serpent साँप

IV (h) The hero has taken a crab (Scorpion) as a companion The crab kills the monster or holds him while the hero kills him.
नायक उसे मार डालता है।

V (c) The hero cuts off the monster's claws.
(d) ears and other parts.
नायक उसके पंजे, कान आदि काट लेता है।

VI (f) The imposter is a man of low caste.
छली निम्न जाति के हैं।

Bodding, II, 285–287 : III d, V c, VI f, VII e; II, 289—307=Bompas, 274—276 : III d, IV h, V c, VI f, VII e, [+507 B].–Bompas, 453 : III e [+131].–Campbell, 20–21. III d, V c, VI f.—Chilli, 48–49 : II c, III e [+301+302]; 88–91 : II c, III d, V d, VI, VII e, [+513 A].—Day, 69-75 : II c, III d, V c, VI f, VII e [+302]—Dexter, 101–104 : III d, IV h—D' Penha, Ind. Ant; XX, 185–187.—Drcott, 64–67 : II c. III e, V d, VI f, VII e. [+567]—Elwin, Mahakoshal, 78–183 : III d, V d, VI f. VII e, 430–431 : II c, III d, V d [+131], 453–455 III f, IV h, V d, VI f, VII e [+910 +182]—Emenean, Kota, III, 119, V d; IV, 227 : V c—Furer Haimendorf, 204–209 : III e, V c, VI f, VII e.—Grierson, IX (2). 190 : II c, III d [+507B].—Lorimer, II, 281–289 : II a,b,III a, IV a, b, c.—Mc Culloch,262–269 : II c, III d, V a,VI f, VII c [+566+302].—Morgenetierne, 70–76 : II a, b, III b, V d, VI.—NQ. V no. 378 : II c, III d.—Parker. I, 137–145 : II a, III d, V a, VI f, VII c, d, [+502]; I, 186–190 : II a, b, III d, IV c, e [+462+1119]; II, 162–169 : III e, V d, VI, VII c [+301 B+302 B Ind.]; III, 373–379; III e, V a, VI, VII c [+302 B].—Schulze, 124–130 : ef. 303.—Sen. 196–202 : III f, [+856]—Steel–Temple, 138–152=Ind.

Ant, XI, 342–346=Steel, 129–143 : II c, III d, V d, VI [+567].–Steel- Temple, 258–262=Steel, 245–250=Temple, I, 17–21 : II c, III d.—Steel–Temple, 304–312=Steel, 289–296 : II c, III d, V d, [+425 A].—Swynnerton, Upper Indus 284–286 : III e, V b, VI c [+567]; 357–359 : IIc, III d [+881 A Ind]; Raja Rasalu, 59–74 : II c, III d—Temple, II, 182–196 : II c, III d, V d.—Thurston, IV, 41–42 : III (bull), V d, VI f, VII c, d.—Wadia, Ind. Ant., XVII, 75–81=RTP, IV, 438–445 : II c, III d, V a, b, VI f, VII c [+567].

इस उद्धरण से हमें अंग्रेजी में प्रकाशित भारत के विविध क्षेत्रों में प्रचलित इस कथा के प्रचलित रूपों का पता चलता है। कितना लोकप्रिय है यह कथांश, इसी से प्रकट होता है। पर यह तो विश्व भर में प्रचलित है। इस कहानी के भी दो हिस्से माने जा सकते हैं : पहले में एक व्यक्ति दूसरे के लिए प्राण अर्पण करने राक्षस, दानव या नाग के पास जाता हैं। और दूसरे में वह राक्षस को मार डालता है। यहां कथा दोनों से युक्त है पर भारत में ही इसका पहला रूप अलग से भी मिलता है और दोनों मिले हुए रूप तो यहाँ मिलते ही हैं प्रचुर मात्रा में जिनका उल्लेख पाश्चात्य विद्वानों ने किया है। उनके अतिरिक्त इसके अनेकों रूप मौखिक अलिखित कहानियों में भारत भर में फैले हुए हैं। इस पूरे रूप का एक उल्लेख महाभारत में भीम से सम्बन्धित है, इसका संकेत ऊपर दिया जा चुका है। पहले रूप की प्राचीनता तो वेद के शुनःशेप से जानी जा सकती है। इसका एक रूप जीमूतवाहन की कहानी में भी है। कथासरित्सागर में इस रूप की भी कई कहानियां संम्मिलित हैं और इन पर परिशिष्टों में Tawny & Penzer द्वारा संपादित Ocean of Stories में विस्तारपूर्वक इसकी व्यापकता और लोकप्रियता का विवरण सोदाहरण दिया गया है। इसमें से यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

We leave the East and on entering in Europe find the story of a hero sacrificing himself or endangering his life for that of some hopeless person whose turn it is to be destroyed by a monster. So extensive is the cycle in European folk-tales that many volumes would be required to give them all. E. S. Hartland has already written three volumes on the subject, and he has far from exhausted the variants, still less has he discussed all possible sources of the motif. Frazer also has given us a useful list of forty-one different versions, the fiirst five of which are all

from ancient Greek mythology. He has added to this list in the Golden Bough, and dicuusses the possible origin of the custom of sacrifices to water spirits

और फ्रेजर के गोल्डन बाउ में यह देखकर कि हमारी कथा के अनुरूप कथा का वास्तविक आनुष्ठानिक अभिनय या लीला भी कहीं होती है तो आश्चर्य भी होता है। यह आनुष्ठानिक अभिनय ववेरिया के फर्थ नामक स्थान पर होता है। फ्रेजर ने बताया है कि —

ववेरिया में फर्थ में प्रतिवर्ष मिड समर के लगभग कार्पसक्रिस्टी के उपरांत रविवार को एक नाटक ड्रेगन (अजदहा) का संहार नाम का अभिनीत किया जाता था। पास-पड़ोस से दर्शकों के झुण्ड के झुण्ड उसे देखने के लिए एकत्र होते। एक सार्वजनिक वाड़े में यह खेला जाता था। एक चबूतरे पर एक राजकुमारी सोने का मुकुट तथा पूरे शरीर पर जितने भी चांदी के आभूषण माँगे मिल सकते थे, उन्हें पहने बैठी होती। एक सम्मानित स्त्री परिचारिका रूप में उसके पास होती। उसके सामने लकड़ी के कंकाल पर कैनवैस मढ़ कर और रंगों से चीत कर बनाया हुआ भयावह अजदहा खड़ा किया जाता, जिसके भीतर घुसे हुए दो मनुष्य उसे चालित करते। समय-समय पर वह अजदहा अपना मुँह फाड़े भीड़ पर कभी इधर, कभी उधर दौड़ पड़ता जिससे भयभीत होकर भीड़ बचने को एक दूसरे पर गिरती पड़ती-रौंदती भाग उठती थी। तब एक वीर हथियार बंद घोड़े पर सवार उस राजकुमारी के पास आता और पूछता—इस कठोर पत्थर पर बैठी आप क्या कर रही हैं और इतनी उदास क्यों हैं? वह कहती कि उसे खाने के लिए अजदहा आ रहा है। तब वह राजकुमारी से कहता कि आप प्रसन्न हों, मैं इस दानव को नष्ट कर दूंगा। तब वह उस दानव पर आक्रमण करता है।

With that he charged the dragon, thrusting his spear into its man and taking care to stab a bladder of bullock's blood which was there concealed. The gush of blood which followed was an indispensable part of the show.

वह वीर इस प्रकार दानव का संहार कर राजकुमारी के पास पहुंचता है और सूचना देता है कि उसने दानव को समाप्त कर दिया है जो नगर को अब तक पीड़ित कर रहा था और राजकुमारी से उसका विवाह हो जाता है।

फ्रेजर ने बताया कि अजदहे से बहने वाले रक्त को और उससे रंजित मिट्टी को लोगवाग लेकर अपने खेतों में डाल देते थे कि खेती अच्छी हो। This use of

the blood suffices to prove that the slaying of the Dragon at Furth was not a mere popular spectacle but a magical rite designed to fertilise the fields.[1]

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि यह कहानी विश्व भर में व्याप्त है और कहीं-कहीं तो आनुष्ठानिक होने से भी जुड़ी हुई है। ऐसे प्रत्येक वीरवृत्त से जो परदुखकातर, परहितकारी वीर का होता है, यह कथांश कथाकारों द्वारा सम्मिलित किया जाता रहा है। जगदेव पँवार में व रसालू में भी है।

स्टिथ थामसन-राबर्ट्स ने इस कथा में जो VI (f) चरण बताया है, The imposter is a man of low caste. यह चरण हमारी कहानी में 'रूमी-घूमी' वाला अंश है।

तो, नरवरगढ़ में आते ही सुलतान यह साका करता है। राजा ढोलकुलार को जब सुलतान का पुरुषार्थ विदित होता है तो मारू उसे लाख टके दैनिक पर राज्य सेवा में नियुक्त कर लेती है। यों सुलतान लखटकिया की कोटि में आ जाता है। लखटकिया की कहानियां भी बहुत व्यापक हैं। कथासरित्सागर में वीरवर की कहानी भी एक प्रकार से लखटकिया की ही है और जगदेव की कहानी में भी इस अभिप्राय को सम्मिलित किया गया है।

इसके बाद कहानी एक विशेष रूप ग्रहण करती। एक चोर को चोरी करते पकड़ा जाता है। उसे मृत्युदण्ड दिया जाता है पर सुलतान उसे क्षमा करा देता है और अपना मित्र बना लेता है। इसी प्रकार उसने एक गोदू जाट को मित्र बना लिया। ये उसके अभिन्न मित्र हो गये। अब ये चार हो गये। इन सभी की अपनी अपनी विशेषताएँ हैं। जानी को देवी सिद्ध थी और गोदू को हनुमान। पनिया पठान पट्टेबाजी में दक्ष था। ये तीनों मित्र उसे नरवर में ही मिले। नरवर में यथार्थ साका तो भीमसिंह बनजारे के साथ ही किया गया है। प्रसंग है बावड़ी स्नान का। भीमसिंह बनजारा मारू को छीन ले जाना चाहता था। उसने अवसर यही ढूंढा कि जब मारू बावड़ी-स्नान के लिए जाय तभी उसका अपहरण किया जाय। फलतः सुलतान ने भीमसिंह को परास्त किया। इसके बाद वह ढोलसिंह और मारू से विदा लेता है तीज तक ईडरगढ़ पहुँचने के लिए। तब मारू से अपने पवित्र भाई-बहन के सम्बन्धों को सिद्ध करने के लिए उसने एक साका चलते चलते किया। इसमें सच्चक्रिया से उन्होने नरवरगढ़ के कंगूरे झुका दिये। चलते समय उन्होंने मारू से केवल एक घोड़ा लिया और वह अकेला चल दिया। यहाँ

[1] Golden Bough Part I. The Magic Art, Vol. II page- 161-162

से सुलतान का साथ इस घोड़े से हो गया। आगे के प्राय: समस्त घटना-चक्रों में घोड़ा ऐसा ही उपयोगी सिद्ध होता है जैसे प्रसिद्ध वीरों या लोककथा के नायकों के घोड़े। इस घोड़े को मिलाकर अब सुलतान पांच वीर हो गये। इस प्रकार कथाकार ने पंचवीर या पंचपीर की भावना भी इस लोकगाथा में जाने-अनजाने प्रस्तुत कर दी है।

पर नरवर से ईडर की यात्रा तो अकेले घोड़े के साथ ही उसे करनी पड़ती है। घोड़ा दरियायी है। ग्रिम ने ट्यूटानिक माइथोलोजी में बताया है कि-वीरों की पहचान का एक प्रमुख लक्षण यह है कि उनके पास बुद्धिमान घोड़ा होता है और वे उससे बातचीत भी करते हैं।[1] यह घोड़ा सुलतान को सकटों से भी बचाता है। यथास्थान उचित परामर्श भी देता है। एक बार तो वह उफनती नदी में से सुलतान को पार लगा देता है। इस घोड़े का इष्ट देव सूर्य है। उसी की प्रार्थना वह करता है। इसी घोड़े का उपयोग निहालदे और सुलतान को बीच मझधार में डुबाकर एक दूसरे से पुन: वियुक्त कर देने के लिए भी किया गया है। बाद में काशी में तीनों को पुन: मिला दिया गया है। नरवरगढ़ से ईडर अकेले घोड़े के साथ सुलतान को दो बार ठगों से पीछा छुड़ाना पड़ा है और एक हुड़दम बेगम के जादुई चक्र से। हुड़दम बेगम का प्रसंग इस्माइल सिद्ध को गोरख से महानता में कम दिखाने के लिए हुआ है।

नरबरगढ़ से ईडर को चलने का मुख्य कारण तीज तक ईडर पहुँच जाना है जिससे वह निहालदे को सती होने से रोक सके। निहालदे ने पत्र द्वारा सूचना दे दी थी कि यदि इस तीज को सुलतान उसके पास नही पहुँचेंगे तो वह जल मरेगी। अत: कथाकार ने जो बाधाएं मार्ग में खड़ी की हैं वे सभी व्यग्रता बढ़ाने के लिए हैं और उधर निहालदे को प्रतीक्षा की अवधि को अंतिम क्षण तक पहुंचा देने के लिये है। एक ओर वह सुलतान को उलझन में डालता जा रहा है और सुलतान व्यग्र होता जा रहा है। उधर निहालदे की वेदना शनैः शनैः बढ़ती जा रही है और वह सती होने के लिए तैयार होती जा रही है। कथाकार ने अपने ढंग से दोनों ओर की विकलता को बढ़ाने का कुशल प्रयत्न किया है। इसी प्रसंग में उसने थके हुए सुलतान को नींद में सुला दिया है। लगता है कि सुलतान-निहालदे अब मिलने से रहे और निहालदे भस्म होकर रहेगी। तभी निहालदे की अंगूठी कौआ लेकर आता है और वृक्ष पर से कांव कांव करता हुआ उसे सुलतान की छाती पर गिरा देता है। इस युक्ति से सुलतान जग पड़ता है। अंगूठी का उपयोग भारतीय साहित्य और गाथाओं तथा लोकगाथाओं में कई रूपों में हुआ है। यहां भी अंगूठी का उपयोग लोककवि ने अनूठे ही रूप में किया है। कौवे का उपयोग एक अभिप्राय

---

[1] "The Ocean of Story by Tawny and Penzer". Vol. II page 57n.

(motif) के रूप में गहन अध्ययन की अपेक्षा रखता है तो घोड़े की सहायता से वह उस समय ईडर पहुंचता है जब चिता में आग लग गयी होती है। चिता के पास वह घोड़े के पराक्रम से दीवाल फांद कर पहुंचता है। इस सब के पीछे अन्य बाधाओं के साथ फूलकुंवर के मालिन्य की भूमिका भी इसे मानवीय दुर्बलता के अध्ययन का अवसर देती है।

दोनों के मिलन में एक और बाधा उपस्थित हो जाती है। निहालदे तो निराश हो चुकी है। चिता में आग लग चुकी है तभी सुलतान ने पहुंचकर निहालदे को चिता से उतारने के लिए उसका हाथ पकड़ा तो निहालदे ने उसे फूलकुंवर समझ कर कहा कि धर्म भाई! जो हाथ तुमने पकड़ा है, वह अब जलेगा नहीं। अब सुलतान निहालदे को पत्नी रूप में कैसे ग्रहण कर सकता है? उसे तो निहालदे ने अनजाने ही सही, भाई मान लिया है। मुख से अनजाने भी निकले वचनों के मूल्य पर क्या समाजशास्त्रीय अध्ययन ऐतिहासिक, तांत्रिक और मनोवैज्ञानिक के साथ मानवीय संस्कृति के आधार पर अपेक्षित नहीं है?

इस समस्त लोकगाथा में व्याप्त यह धर्म भाई और धर्म वहिन का भाव और उसकी मर्यादा और आन अपने आप में एक महान् सांस्कृतिक उपलब्धि मानी जा सकती है। आदि से अन्त तक यह महान् पवित्र भावना इस लोकगाथा में जुगजुगा रही है। जिसे उसने वहन कह दिया, वह उसकी वहन हो गयी। जिसे किसी स्त्री ने भाई कह दिया, वह उसका भाई हो गया। वह ऐसे संबंध को अन्यथा दृष्टि से, पत्नी-भाव से, नहीं देख सकता। यह स्थिति वेचारी निहालदे के लिए अत्यन्त कष्टकर है। कहां तो प्रियमिलन का क्षण, कहाँ उसी के प्रमाद से वह क्षण ही टूट गया।

यहाँ कथाकार ने एक सूक्ष्म और जटिल समस्या खड़ी करदी है। लगता है दोनों का स्थायी विछोह हो गया। कहे हुए शब्द लौट नहीं सकते और सुलतान उन शब्दों की मर्यादा तोड़ नहीं सकता। तव निहालदे शिव का स्मरण करती है। इस प्रकार यहाँ एक और देवता का संयोग हुआ। निहालदे शिव-भक्त है। शिव-पार्वती आते हैं और मार्ग निकालते हैं, पुनः दोनों का विवाह रचाकर। इसी कठिन क्षण तक पहुँचा कर अर्थात् निहालदे-सुलतान के पारस्परिक कथा-सूत्र के महत्तम स्थान तक पहुँचा कर और निहालदे-सुलतान के मिलन में कथा की परिणति कराके कथाकारों ने मूल कथा पूरी करदी है। यही कथा मूलतः प्रेम-कथा है और इस प्रेम-कथा का प्रेम-तत्व केवल निहालदे के पत्र-प्रसंग में प्रकट होता है। उन छह पत्रों या परवानों में जो विरह की व्यथा-कथा निहालदे ने प्रकट की है वह भी वड़ी मार्मिक है। ये परवाने मारू के नाम भेजे गये और वियोगिनी स्त्री की मनःस्थिति का सफल चित्रण करते हैं।

किन्तु एक दूसरी कथा का बीज सुलतान ने तब बो दिया था जब नरवरगढ़ से चलते समय वह मारू से कह आया था कि बहिन, तू अपनी लड़की का भात मांगने आना, मैं भात भरूंगा। कहीं मारू भात भरने कीचलगढ़ न आजाए इसलिए सुलतान निहालदे को साथ लेकर ईडरगढ़ से कीचलगढ़ को चला। इस यात्रा में भी विघ्न उपस्थित कराया गया है। नदी पार करते समय सुलतान, निहालदे और घोड़ा तीनों ही वह जाते हैं और अलग हो जाते हैं।

यह बिछुड़ने और मिलने की कहानी भारतीय कथा-मानकों में ९३८ वें मानकांक प्लेसीडास से मिलती है केवल विछोह वाले चरण से कुछ-कुछ। इसमें पुरुष और स्त्री बिछुड़े हैं, पिता-पुत्र नहीं। बिछुड़ने-मिलने की कितनी ही कहानियां हैं, पर यह कहानी यहां भी अद्भुत है। इसमें एक तो वचन-पालन का वर्णन है, दोनों उससे बंधे हुए हैं। दूसरे दैवयोग और भाग्य का समावेश है। तीसरे घोड़े की विवशता जिसे घोड़े ने बता दिया था पर सुलतान ने ध्यान नहीं दिया। निहालदे को भी पीठ पर बिठाकर चमचमाती पूर्णिमा की चाँदनी में घोड़े को नदी में चला दिया। चाँदनी में निहालदे की पानी में पड़ती प्रतिच्छवि ने घोड़े को विचलित कर दिया और वह वह गया। इसमें भी कथाकार ने वह नाजुक क्षण चरम के रूप में प्रस्तुत किया है, इस वचन के बावजूद कि वह किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करेगा, सुलतान परिस्थिति के चक्र में पड़ा विवाहार्थ जा रहा है और उधर निहालदे इस वचन के बावजूद कि वह पर-पुरुष को नहीं देखेगी, ब्राह्मण-पुत्रियों से प्राप्त उत्तेजना में वर को देखने के लिए आँख की पट्टी उतार देती है और देखती है कि उसी का सुलतान दूसरा विवाह करने जा रहा है और कुशल कथाकार सुलतान का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के निहालदे के पहले कुछ प्रयत्नों को विफल करा देता है तब अंत में अँगूठी फेंकती है निहालदे, जो सुलतान की गोद में गिरती है—इस विधि से निहालदे से उसका मिलन होता है।

अब दोनों कीचलगढ़ पहुंच जाते हैं। १२ वर्ष की अवधि पूरी हो जाती है। अब मारू के भात भरने से संबंधित कथा का सूत्र आरंभ होता है। भूमिका भाग है—मारू-ढोला का भात न्योतने आने का। इस भूमिका भाग को रोचक बनाया गया है—हीरा पन्नों के खैराती बाजार का अभिप्राय (मोटिफ) प्रस्तुत करके। इसमें कथाकार का कौशल यह है कि हीरा-पन्नों का खजाना पाने का जो वृत्त तिलस्मी और जादुई हो सकता था, उसे सत की परीक्षा का साधन बना दिया है। सिंहासनबत्तीसी की पुतलियों की तरह यहाँ भी बोलने वाली दो पुतलियां हैं।

इसके बाद इस कथा में हमें तीन मोड़ दीखते हैं:—(१) भात भरने जाने

और लौटने का वृत्त। इसमें निहालदे भी साथ रहती है। जानी चोर और गोदू जाट भी साथ हैं। यह वृत्त घटनाओं से भरा हुआ है। (२) भात भरकर कीचलगढ़ आ जाने पर फिर फूलसिंह के साथ शिकार पर जाने से फूलसिंह को ईडरगढ़ तक पहुंचाने का वृत्त और (३) कीचलगढ़ लौट कर फिर जलदीप के विवाह तक का।

इन तीनों में से पहला वृत्त तो, जैसा ऊपर बताया गया है, सुलतान के चरित्र को निष्कलंक करने और 'मारू' की प्रतिष्ठा को और धवल करने के लिए आवश्यक माना जा सकता है। भात भरने की उसकी प्रतिज्ञा थी ही किन्तु शेष दो तो परिशिष्ट रूप में ही जोड़े गये माने जायेंगे। इन तीनों में ही कथा–सरित्सागर की तरह मूल-सूत्र में अनेकों कहानियाँ जोड़ी गयी हैं। भात भरने जाने और भरकर लौटने के वृत्त में वस्तुतः जानी चोर के करतव ही प्रमुख हैं। इस सूत्र में जुड़े सुलतान के साकों की सफलता का आधार जानी ही है।

चोर-कथाएँ विश्वभर में प्रचलित हैं और अपने आप में विश्व की लोककथाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। महकदे को मुक्त कराने की कथा में कथाकार ने चोर शिरोमणि के प्राचीनतम कथा-रूप के अनुकरण पर अभिप्रायों का नियोजन किया है। इस कथा की सूत्र-कथा इतनी है कि एक राजा एक चोर को पकड़ने के लिए कई प्रयत्न करता है। कई व्यक्ति बीड़ा उठाते हैं। चोर सबको छलता है और अंत तक पकड़ा नहीं जाता। टानी तथा पेंजर ने 'ओसिन आफ स्टोरी' के पाँचवें खण्ड में 'घट कर्पर' की प्रसिद्ध कथा दी है और उसके चौर्य-कला विषयक अंश पर 'द्वितीय परिशिष्ट' मे विस्तार से विचार किया है। इस परिशिष्ट के अंत में बताया गया है कि इस कहानी का एक रूप दो हजार तीन सौ वर्ष पुराना माना जा सकता है (पृ० २८६)। इनका प्राचीनतम रूप मिश्र में उद्भावित लगता है। परिशिष्ट लेखक का कहना है कि-Versions of the story have found their way into nearly every important collection. To such an extent, indeed, has the tale circulated, that it would require a volume to give all the versions in their entirety. (Page 245).

इस कहानी के जिस रूप का उल्लेख TOIOT[1] ने किया है वह इस प्रकार है : पृ० १२१ पर कथा क्रमांक ९५०, Rhampsinitus II(c) The thief steals a camel and kills it. An old woman promises to find the thief and came begging for ca nel's flesh to cure her sick son. The

[1] Types of Indic oral tales.

thief's mother gives the old woman camel's flesh. The thief kills the old woman or discredits her testimony. इसके कितने ही भारतीय रूपों का उल्लेख इसमें किया गया है। हमारी गाथा में जानी को पकड़ने के लिए अशर्फियों से लदा ऊंट बाजार में छोड़ा गया है। और बातें ऊपर की कहानी की तरह हैं। हमारी गाथा में चोर की मां के स्थान पर मालिन है जिसे जानी ने मौसी बना लिया है। आगे के चरण का अर्थात दूती को मारने की बात का उल्लेख इसमें नहीं है वरन् उसकी साक्षी को झुठला देने की बात है। हमारी गाथा में दूती ने मालिन से लिये ऊंट के मास के रक्त से द्वार पर एक थापा लगा दिया ताकि वह मकान पहचाना जा सके। जानी ने सभी मकानों पर ऐसे ही थापे लगा दिये! अलीबाबा चालीस चोर की कहानी में भी यह अभिप्राय आया है।[1]

इसी प्रकार हमारी गाथा अनेकों साहसपूर्ण घटनाओं, जादुई चमत्कारों, स्वर्ग की यात्राओं, कई प्रकार के दानवों के सहार, चौर्यकला के करतब, स्त्रियों के अप-

---

1 हमारी गाथा के और चोर शिरोमणि की गाथा के विविध रूपान्तरों में आने वाली विविध चतुराइयों का वर्णन TOIOT में पृ० १४५-१४६ पर १५२५ कथाक्रमांक शीर्षक The Master Thief (R 301) के अन्तर्गत १५२५ G शीर्षक 'The Thief Assumes Disguises (K 311) में IV के इन चरणों में मिलते हैं:

Theft by Disguising. The thief (thieves) steals from and escapes from or entraps the King, the police chief, the adviser, etc. by assuming various disguises ... (b) The thief disguises as the police chief's son–in–law and steals the daughter's jewels. (c) The thief disguises as an old woman grinding corn and gets the adviser to take his place.... ..

इनके कितने ही रूपों के संकेत भी इसमें दिये गये हैं। भारत में यह चोर–शिरोमणि की कहानी इतनी प्रचलित है कि हर क्षेत्र और हर गाँव में इसे सुना जा सकता है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि घट-कर्पर की संस्कृत कथा के इन दो चोरों में कर्पर का देसी रूप खापरा हो गया है। खापरा चोर पर डा० मनोहर शर्मा ने भी प्रकाश डाला है, और कर्नल टाड को जूनागढ़ में तो खापरा चोर की गुफा भी देखने को मिली। (दे. पश्चिम भारत की यात्रा; ले. कर्नलटाड, पृ० ३७३) इस चोर की गुफा का रेखा-चित्र भी टाड महोदय ने दिया है।

हरण और मुक्ति आदि-आदि से भरी हुई है। संक्षेप में लोक कहानियों में से अनेकों इस लोकगाथा में गूंथ दी गई हैं। कथासरित्सागर की तरह इसमें सूत्रकथा के पेट में कितनी ही अन्य कथाओं का समावेश है, पर सभी कथाएँ सूत्रकथा के नायक और मित्रों की हैं, साक्षी कथाएं तो एक दो ही हैं।

ये सभी कथाएं कथाओं के रूप में तो महत्वपूर्ण हैं ही, पर इनके अध्ययन के कितने ही पक्ष हैं। ये कहानियाँ मानव की प्रतीक भाषा मानी जा सकती हैं। विद्वानों ने कहानियों के प्रतीकों की तिलस्म को तोड़ने के कितने ही प्रयत्न किये हैं। विश्वभर में ऐसी गाथाएँ-कथाएं प्राचीनतम काल से मिलती चली आयी हैं। विविध युगों में विविध क्षेत्रों में इन कहानियों को विविध अर्थों के प्रतीकों के लिये काम में लिया है और लेते चले जा रहे हैं। लोकसाहित्य विज्ञान इनके अर्थों को वैज्ञानिक ढंग से खोलने का प्रयत्न कर रहा है। वह अभी भी अपने शैशव में है। नृतत्ववेत्ता अपनी तरह से इनकी व्याख्या करना चाहते हैं और सामाजिक विकास की साक्षियां पाते हैं। इतिहास अलग अपनी तरह से इनको समझना चाहता है। इधर मनोविज्ञान भी इनके माध्यम से मन के अवचेतन की गहरी अन्धकारपूर्ण गुफा में प्रकाश कर वहां के विविध मार्गों को हृदयंगम करना चाहते हैं और धर्म-गाथाविज्ञ अलग ही तरह से इनका रहस्य खोलना चाहते हैं। निहालदे-सुलतान की इन कहानियों में भी ये सभी स्तर और पार्श्व विद्यमान हैं। आगे इनके अध्ययन में अवश्य ही विद्वान प्रवृत्त होंगे और इनका रहस्योद्घाटन करेंगे या पुनः इन्हें रहस्यावृत्त कर देंगे।

जिस प्रकार परहितार्थ दूसरे के लिए स्थानापन्न होकर बलि देने की कथा वेदों में शुनःशेप के आख्यान में आयी है, पुराण साहित्य में जीमूतवाहन और बक को वध करने वाले भीम की कथा बन कर आयी है पर, हमारी गाथा में यह अपने वैशिष्ट्य के साथ है। यों सम्पूर्ण निहालदे-सुलतान की कथा ही वैशिष्ट्य से युक्त है। एक तो गोरखनाथ, शिव, देवी, हनुमान और सूर्य भक्तों की कथा के रूप में यह हमारे समक्ष आती है। इन सिद्धों और देवी-देवताओं की माहात्म्य-कथा जैसी लगती है पर इन सब में होड़ नहीं है। ये सभी अपने भक्तों के माध्यम से संकटों में कार्य साधते हैं। एक ओर इनसे भक्ति का माहात्म्य हमें प्रभावित करता है। दूसरी ओर कहानियों में चमत्कार आता है। तीसरी ओर इनके कारण नायकों में एक विशेष चारित्रिक सत्व का ओज भी प्रकट होता है। 'कान्तासम्मिततयोपदेश युजे' की भावना भी पद-पद पर है। समस्त कथा का अंतरंग, परहितार्थ पराक्रम से ओतप्रोत है।

यह गीत लोकगाथा है, धर्मगाथा नहीं। यह उसी प्रकार जोगियों द्वारा लोगों की भीड़ एकत्र कर गांव-गांव में गाया जाता होगा जैसे ब्रज में ढोला गाया जाता

है या जगदेव का पंवाड़ा गाया जाता है। यह कल्पना की जा सकती है कि लोक-गायक सुलतान के ५२ साकों को मंत्रमुग्ध जनता को कई सप्ताहों तक सुनाता होगा। इसका क्या प्रभाव पड़ता होगा ? क्या मनोरंजक कहानियां सुनकर और अंत में अपने पल्ले झाड़कर लोग अपने घर चले जाते होंगे ? गोरखनाथ ने सुलतान को यह उपदेश दिया—

'पर वी तिरिया नैं हे चेला, मता समझिये,
पर धन नैं धूल समान।
रण में वी जाकैं उलटा मतना भागिये,
मूंडा वी सेती झूठ वी बोलिये नांय।'

लोकगाथा में गायक स्थान-स्थान पर सुलतान के सामने प्रलोभन, संकट भय और रोमांचकारी स्थितियां खड़ी करता है पर सुलतान बारबार इन उपदेशों का स्मरण करता है—

'पर वी तिरिया नैं हे चेला माता समझिये,
पर धन नैं धूल समान।
रण में वी जाकैं उलटा मतना भागिये,
मूंडा वी सेती झूठ वी बोलिये नांय।'

फिर एक मन-ग्राही घटना और उचित अवसर पर ये ही जगमगाती पंक्तियां—'Example is better thanprecept' उदाहरण सुलतान की कहानियों का, उपदेश गोरख के—देवी, हनुमान और शिव भी सहायक श्रोताओं में पल-पल यह आस्था उत्पन्न करते हुए कि सिद्ध हैं, देवता हैं—आपकी पीठ पर हर संकट में सहायता करने के लिए। कथागायकों की प्रभावात्मक गायन-शैली श्रोताओं पर कितना प्रभाव न डालती होगी ! क्या यही वीरों के लिए वह पाठशाला नहीं थी जिसमें वे महान मानवीय आदर्शों को जीवन में ग्रहण करते होंगे और सुलतान की भांति अपने भी जीवन में उन्हें उतारते होंगे, यह समझ कर कि यह मात्र आदर्श नहीं यथार्थ है और जीवन में ढाला जा सकता है। क्या आज भी ऐसी लोक-पाठशालाओं की आवश्यकता नहीं है ?

वास्तविक बात यह है कि लोकगाथायें भी प्रभावोत्पादक होती है, जैसे इस कथासार से ही सिद्ध होता है। पर इसके साथ इसका छन्द या गीत, जो स्वयं एक वैशिष्ट्य रखता है, इसके स्वरों का उतार-चढ़ाव मानव के अवचेतन तक चोट करता है। फिर गुरुपरंपरा के सीखे गायक के कौशल पर परवान चढ़ा हुआ स्वर कथाओं को श्रोताओं के मनश्चक्षुओं के लिए यथार्थ रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है और गोरख के वे छन्द भेद जाते हैं श्रोता की भावना को भी, यह चाहे कर भी

उन्हें निकाल कर नहीं फेंक सकता। वे कथा-गीत में ढल कर गायक द्वारा पढ़े गये मंत्र की तरह प्रभावशाली हो ही जाते हैं। इस संभावना का मूल्य आंकना क्या आज अपेक्षित नहीं ?

कथा तो कथा है, पर उस कथा को यथावश्यक प्रभाव और वातावरण से आवृत्त तो गायक ही करता है। यदि यह लोकगाथा गायक के शब्दों में पूरी की पूरी प्रकाशित की जाय तो गायक का कौशल भली प्रकार समझा जा सकता है। इस कथासार में ही यह कौशल स्थान-स्थान के दिये गये विवरणों में झांकता है। ऐम० आई० एवट्ट एम० ए० का यह कथन ठीक है—So in the hero-legends of our nation we may find traces of the thoughts and religions of our ancestors many centuries ago.[1]

यथार्थ यह है कि यह लोकगाथा सभी पार्श्वों से ध्यान आकर्षित करती है और अध्येता को प्रेरित करती है कि लोकसाहित्य-विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जाय। यों भी यह अत्यन्त रोचक है।

---

[1] Hero-Myths and Legends of The British Race, पृ० XVIII-XIX.

3

घूमर : एक लोकनृत्य गीत

०

घूमरें नृत्यगीत हैं। इनके एक संग्रह के विद्वान संपादक श्री मोहनलाल पुरोहित का मत है कि घूमर राजस्थान के प्राचीनतम लोकनृत्यों में से एक है। नगाड़े के चारों ओर वृत्ताकार रूप में औरतें नाचती हैं और साथ ही साथ गीत भी गाती हैं। ताल लय का बड़ा ध्यान रखा जाता है।[1] घूमर लोकनृत्य के साथ होते हैं घूमर गीत अतः घूमर निश्चय ही नृत्यगीत है।

घूमर के साथ कई आवर्जनाएँ हैं। आवर्जनाएँ टैबू भी हो सकते हैं। आवर्जनाओं के दो रूप होते हैं : सामान्य तथा

1. 'राजस्थान के लोकगीत में घूमर', बिहार थिएटर, क्रम संख्या १४, सिन्हा लायब्रेरी रोड, पटना।

विशेष। सामान्य आवर्जनाएँ सभ्यताविशिष्ट मनोवृत्ति का परिणाम होती हैं। विशेष आवर्जनाएँ ही टैबू हैं जो लोकमानस की प्रवृत्ति का परिणाम होती हैं।

पुरोहित जी ने घूमरों के सम्बन्ध में जिन आवर्जनाओं का उल्लेख किया है, वे हैं—

१. घूमरों में एक ही (जाति के) मोहल्ले के लोग भाग ले सकते हैं। अन्य जाति के लोग तो उसे देख भी नहीं सकते।
२. इसमें पैरों में घुँघरू नहीं होते।
३. यह नृत्य दिन में नहीं होता।
४. इसमें सात से कम संख्या नहीं होती।
५. इसमें नौ से अधिक की संख्या नहीं होनी चाहिये।
६. यह नृत्य चाहे जिस गीत से आरम्भ नहीं होता।

स्पष्ट है कि इन वर्जनों में काफी गहराई है। प्रथम वर्जन में वंशानुगत (racial) तत्व है। यह वंशानुगतिकता भी आदिम भावना से परिपुष्ट है जिसमें एक रक्त के लोग ही भाग ले सक थे। फलतः एक टोने का वातावरण यहाँ प्रस्तुत हो जाता है। यों यह भी कहा जा सकता है कि यह वर्जना सामाजिक शील का परिणाम है, टोने का नहीं। स्त्रियों के प्रति नृत्य होते समय किसी उत्तेजक स्थिति में परिवार या जाति के बाहर का व्यक्ति कुछ अभद्रता कर गया तो कैसे होगा? अतः शील रक्षा के निमित्त ही यह वर्जना है किन्तु इसके साथ ही यह तत्व कम ध्यान नहीं आकर्षित करता कि परिवार के बड़े-बूढ़े सभी उपस्थित रहते हैं और सभी वह नृत्य देखते हैं जिसमें सभी बहू-बेटियाँ होती हैं और जब स्त्रियों को कुछ विश्राम अपेक्षित होता है तब पुरुष दण्ड-नृत्य करने लगते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों की सम्मिलित उपस्थिति और बीच-बीच में पुरुषों का नृत्य; ये दोनों बातें इस ओर संकेत करती हैं कि इस समस्त नृत्य-विधान में मूल लोकमानस अभिव्याप्त है। पहले स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूप से नाचते होंगे फिर सभ्यता के विकास में यह समझौता हुआ होगा कि पुरुष अलग तथा स्त्रियाँ अलग-अलग नाचें पर उपस्थित सभी रहें। नृत्य रात भर होता है अतः रात्रि जागरण का भी यह एक रूप है, और होली का अवसर तो इसे और भी लोकमानसिकता से युक्त कर देता है। संख्या-विधान भी लोकवार्त्ता के तत्व से युक्त है और तब है नृत्य के आरम्भ का एक विशिष्ट्य। यह एक विशेष गीत से ही आरम्भ होता है, चाहे जिससे नहीं। ये सभी वर्जनाएँ इस नृत्य को लोकमानसावृत्त बना देती हैं फलतः इस नृत्य की जड़ें सामान्य सामाजिक व्यवहार में नहीं, जनजीवन की मूल भूमि में हैं। नृत्य का जन्म मूल आदिम स्थिति में ही हुआ होगा, और वह भी आदिम मानव की समग्र

अभिव्यक्ति का ही एक अंग रहा होगा। इसमें निश्चय ही निम्नलिखित तत्व घुले-मिले होंगे—

१. जीवन्त-जीवन के स्फुरणों की अभिव्यक्ति।

२. प्रकृति की गति से संगति।

३. प्राकृतिक मानसिकता में प्राकृतिक तत्वों के अनुरूप पारस्परिक समर्पण।

४. नृत्ययुक्त समर्पण से कार्य-साधन।

प्रथमतः जीवन की समग्रता के कारण प्रकृति-पुरुष और उनके व्यापारों और मानसिकता में अभेद था अतः ये तत्व घुलेमिले थे। एक को दूसरे से भिन्न करना असंभव था किन्तु मानव-विकास में ये तत्व शनैः शनैः पृथक होने लगे और इनके अभिप्राय भी अलग—अलग प्रतीत होने लगे। यों तो समस्त नृत्य आज भी जीवन्त—जीवन के स्फुरणों की अभिव्यक्ति ही हैं, फिर भी इस तत्व ने जो रूप लिए वे ये माने जा सकते हैं—

१. मनोरंजनार्थ नृत्य, जो ऋतुओं पर निर्भर नहीं करते।

२. प्रीति-नृत्य—मित्रों के लिए, अतिथियों के लिए; जैसे आस्ट्रेलिया का मोलोंग नृत्य, पालीनेशिया का माओरी हक नृत्य।

३. युद्ध-नाट्य—युद्ध-नृत्य यों तो जीवन्त-जीवन के स्फुरणों की ही अभिव्यक्ति है, पर इसके तीन अभिप्राय या उपयोग माने गये हैं:—

(क) यह जातीय घनिष्टता की सम्वर्द्धना करता है।

(ख) शौर्य-तेज के प्रदर्शन द्वारा यौन अभिप्राय से योग्य वरण में सहायक होता है।

(ग) कृषि-संबंधी अनुष्ठानों से प्रतीकतः संबंध जोड़ता है।

प्रकृति की गति से संगति के विकसित नृत्यों में वे सभी नृत्य आते हैं जो—

१. ऋतुमतीत्व के लिए नाचे जाते हैं। गौरी कन्या के प्रथम रजोदर्शन के उपलक्ष्य में ये नृत्य होते हैं।

२. ऋतु अनुकूल नाचे जाते हैं जैसे होली पर।

३. ज्योतिष्क नृत्य—सूर्य-चन्द्र के सम्बन्ध में नृत्य। कई जातियों में सूर्य नृत्य, चन्द्र नृत्य प्रचलित हैं।

४. व्यापारिक नृत्य-किसी व्यापार या क्रिया को करते समय प्रकृततः जो नर्तन हो उठता है वही विकसित होकर व्यापारिक नृत्य बन गया है।

इन नृत्यों में प्रकृति के परिवर्तनों से प्रेरणा होती है और तदनुकूल ही नृत्यों का विधान होता है।

मनुष्य स्वभावत अपनी प्राकृतिक मानसिकता में प्रकृति से एकमेक हो परस्पर समर्पण करता रहा है। इस भावना ने विकसित होकर श्रद्धा-भय का रूप ग्रहण किया अत: ऐसे नृत्यों का विकास हुआ जो देवी-देवता या प्रकृति के किसी अंगादि को रिझाने के लिए नाचे जाते हैं। ऐसे नृत्यों का संबंध उन अनुष्ठानों से होता है जो वंश या उपज के संवर्द्धन के लिए किये जाते हैं और जो सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों और नक्षत्रों के लिए नाचे जाते हैं। अत: समस्त ज्योतिष्कीय (Astronomical) नृत्य इसी वर्ग में आते हैं। पशुवेशी नाट्य (Animal mimes) जो उर्वरत्व के लिए अथवा टोटयमी (Totemic) पूजा के लिए नाचे जाते हैं। रहस्यावेशी (Ecstatic) नाट्य आदि भी इसी वर्ग के हैं। इन नृत्यों से कोई फल स्वत: ही मिले तो मिले, ये उस फल को सिद्ध करने के लिए ही नहीं नाचे जाते।

कुछ नृत्य किसी फल की साधना के रूप में भी नाचे जाते हैं। ऐसे नृत्यों का आनुष्ठानिक मूल्य होता है, जिससे टोना-टोटका, रोगदोष दूर हो जाते हैं। सभ्यता के विकास में इन्हीं नृत्यों में से ऐसे नृत्य खड़े हुए हैं जो आज केवल सामाजिक आनन्द के लिए रह गये हैं। इनका आनुष्ठानिक औपचारिक और लोकमानसिक भाव-सूत्र लुप्त हो गया है। नृत्य के साथ गीत भी रहता है, पर गीत मूलत: मात्र गीत-ध्वनि था और तभी मूल गीत में स्वर थे शब्द नहीं थे। आज भी श्रमगीतों में उसी मूल के अवशेष विद्यमान हैं।

नृत्य मनुष्य की संपूर्ण और समग्र अभिव्यक्ति है। नख से शिख तक के अवयव इसमें थिरकते हैं, ऐसी सकलावयवी, कला-ग्राह्य, उत्तेजना में मुख से सहजात ध्वनि भी निकलेगी ही। इसी से नृत्य के साथ गीत सहजात माना जाना चाहिये। यह सहजात ध्वनि गीत–ध्वनि कही जा सकती है क्योंकि नृत्य की गतियों और मुद्राओं की भांति इसमें भी ताल और गति की सुछन्दता मिलती है। गीत-ध्वनि के स्वर में तब शब्द भी आ जाते हैं। नृत्य की गति और तत्सहजात ध्वनि की लहर स्वाभाविक रूप से अलग-अलग नहीं हुए, ये कला विलास में विभेदक प्रवृत्ति से आगे चलकर पृथक् किये गये। नृत्य का नृत्य के रूप में अभ्यास किया जाने लगा और गीत का गीत के रूप में। फिर भी हमें लोकक्षेत्र और आभिजात्य क्षेत्र दोनों स्तरों में ऐसे नृत्यगीत मिलते हैं जो गठजोड़ा किये हुए हैं। नृत्य की अपनी गतियां अपना निजी अर्थ रखती हैं। वह अर्थ मनुष्य की मनीषिता द्वारा आरोपित नहीं होता। मेघ को देखकर मयूर का नृत्य मयूर के लिए एक विशेष अर्थ रखता है और उसी में उसे अपने अस्तित्व की उस क्षण पूर्ण सार्थकता और सफलता प्रतीत होती है। प्रत्येक नृत्य में और गीत में आरम्भ में यही मयूरी और कोकिलीय

वृत्ति कार्य करती होती है। बाद में उसमें मानव-मनीषिता अर्थ आरोपित करती है। प्रत्येक स्वाभाविक अभिव्यक्ति किसी एक उत्प्रेरणा की प्रतिक्रिया होती है, अतः उस उत्प्रेरणा की भिन्नता से यह अभिव्यक्ति भी भिन्न रूप धारण करेगी। यदि सुई चुभायी जायगी तो 'सी', फोड़ा दुखाया जायगा तो 'अरे रे', मानसिक धक्का दिया जायगा तो —'ओह, उफ।'

प्रत्येक पृथक उत्प्रेरणा से पृथक ध्वनि निर्गत होती है। अतः यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक नृत्य की गति अलग–अलग और उसकी स्वर-लहरी पृथक्-पृथक् ही होगी; और यह भी कि प्रत्येक नृत्य की अपनी स्वर लहरी होगी क्योंकि नृत्य और स्वर समग्र मानवीय अभिव्यक्ति में अविभक्त और सहजात हैं। यह बात आज भी देखने को मिलती है। जैसा नृत्य वैसा गीत, या जैसा गीत वैसा नृत्य। गीत के लिए नृत्य होता है या नृत्य के लिए गीत होता है। आदिम अथवा मूल स्थिति में दोनों एक दूसरे के लिए होते हैं। दोनों मिलकर ही कला की पूर्ण इकाई बनती है। फलतः घूमर गीत और घूमर नृत्य आज भी हमें एक मिलते हैं। घूमर नृत्य के विना घूमर गीत के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती और घूमर गीत के विना घूमर नृत्य की भी कल्पना नहीं हो सकती।

घूमर नृत्य स्त्रियों का नृत्य है और सामूहिक नृत्य है। फलतः घूमर गीत भी स्त्रियों का गीत है और सामूहिक गीत है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रत्येक सामूहिक नृत्य सामान्य नृत्य नहीं होता। वह वैशिष्ट्य युक्त होता है। वह वैशिष्ट्य उसमें टोने के तत्व का होता है। समूह देखे और एक दल नाचे, यह तो नृत्य के विकास की सामाजिक स्थिति का परिणाम हो सकता है किन्तु केवल मनोरंजनार्थ समस्त समूह ही नृत्य में प्रवृत्त हो जाय तो उसमें कोई और अभिप्राय अवश्य होगा। अतः घूमर गीत केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं हो सकता।

इसका सामान्य प्रचार होली के दिनों में विशेष होता है। होली का त्यौहार देवताओं और देव की कृपा-याचनार्थ, उन्हें संतुष्ट करने के लिए होता है। दीवाली की भांति ही होली भी एक जटिल-सूत्रों वाला त्यौहार है, यद्यपि उतना जटिल नहीं है। होली के त्यौहार में जो सूत्र हैं उन्हें विश्लेषण पूर्वक देखा जाय तो विदित होगा उसमें एक सूत्र तो ऋतु परिवर्तन का है। जाड़ा समाप्त होकर वसंत का आगमन होता है। दूसरा यह बलिदान का त्यौहार है, पूजा का नहीं। बसंत पंचमी से इस बलिदान की तैयारी होती है। बलिदान की वेदी उस तिथि को तैयार की जाती है जिसको घग्गुली घरों में खोदी जाती है। 'होलिका दहन'

वास्तविक बलिदान का अवसर है।[1]

प्रतिपदा या धुलैंडी से पुनरुज्जीवन के आनन्द में उत्सव होता है और प्रायः चैत्र में भी इस उत्सव की लहरें लहराती रहती हैं। यही वह समय था जब प्राचीनकाल में मदन महोत्सव मनाया जाता था। मदन महोत्सव की यह सांस्कृतिक परम्परा राधा-कृष्ण के गीतों से जुड़ गयी और होलिका-दहन की लोकधारा 'अरर कबीर' जैसे गीतों से। फलतः विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में मदन और दहन की हिलोरों वाले गीत फागुन और चैत्र भर छाये रहते हैं। प्रत्येक गीत उन्मादी स्वरों से जटित रहता है और स्वर-संभार तीव्रतम और उच्च-तम सीमा तक पहुंच जाता है जैसे उन्मादक गीतों का तूफान आ गया हो। चाहे व्रज की होली हो, चाहे रसिया, चाहे राजस्थान की घूमर सभी में यही विशेषता है और सभी नृत्यगीत हैं।

घूमर में सबसे प्रथम गीत 'कठड़ो' होता है। सदा घूमर इसी गीत से आरम्भ होती है यह परम्परा है। परम्परा के दो कारण होते हैं। एक तो शुद्ध लोकमानसिकता और दूसरा परंपरित मानसिकता। शुद्ध लोकमानसिकता लोकमानस का सीधा परिणाम होती है, और मानव-मानस में सहजात बद्धमूल होने के कारण अपनी आदिम परंपरा को प्रसरित करती है। दूसरे में परंपरा लोकमानसिकता के कारण नहीं होती, वरन् किसी 'काव्य-रूढ़ि' की भाँति उसकी परंपरा चल पड़ती है, और वह एक दृढ़ लोकमानसिकता से भी आबद्ध हो जाती है। अतः सदा ही प्रत्येक परंपरा मूलतः लोकमानसिक नहीं होती। 'कठड़ो' की वस्तु है कि एक सुन्दर पुरुष ने किसी स्थान पर तंबू लगाये। वहाँ की एक सुन्दरी 'भँवरदे' उससे एक रात उसके साथ ठहरने का निमंत्रण देने आयी। पुरुष ने अपनी गोरी के

---

1 होलिका दहन विषयक लोककथा में भी स्पष्टतः प्रह्लाद के बलिदान के लिए ही समस्त उपक्रम हैं। उपक्रम होता है 'प्रह्लाद' को जलाने का पर जल जाती है स्वयं होलिका। इस कथा से अग्नि में प्रह्लाद के बलिदान की बात किसी मानवबलि की घटना का लोकवार्त्ता प्रचलित रूप है। अग्नि में से प्रह्लाद का जीवित निकलना पुनरुज्जीवन (Resurrection) का ही पूर्व रूप है। होली की अग्नि पर भून कर होले, गेहूं की बालें, जौ की बालें घर ले जायी जाती हैं और परस्पर बाँट कर खायी जाती हैं। यह माना जाता है कि इससे स्वास्थ्य और समृद्धि मिलते हैं। यह सब कुछ आदिमकालीन मनुष्य-बलि का ही अवशेष है। आदिमकाल में ऐसी बलि के अवशेषों को घरों में या खेतों में लेजाकर गाड़ दिया जाता था।

सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए उस सुन्दरी का निमंत्रण ठुकरा दिया। 'बिछियो' में एक नवविवाहित अपनी पत्नी के लिए 'बिछुग्रा' बनवा के लाया है। ऐसी चाव की वस्तु पत्नी पहनकर पानी भरने गयी तो वह ताल में ही गिर पड़ी। वह इस सौभाग्य चिह्न को पुन: प्राप्त करने के लिए क्या-क्या प्रयत्न नहीं करती। 'गेंद गजरो' में नायिका फूलों का गजरा पति को पहना कर उसे अनुकूल करके अपने लिए विविध आभूषण मँगवाती है। 'घूमर' में एक अविवाहिता लड़की माँ से पहले तो कुछ स्थानों और जातियों का उल्लेख कर कहती है कि उन जातियों में मुझे मत देना, इस बहाने विविध क्षेत्रों की कमियां सामने आती हैं। दूसरी ओर फिर वह मां से कहती है कि तुम चाहो तो उन्हीं में मेरा व्याह कर देना। इस बार वह प्रत्येक के कुछ गुण बतलाती है। 'करियो' में उस कच्छी ऊँट या करहे की कहानी है जो मालवण के बहकावे में नहीं आया और ढोला को मालवण के पास पूंगल ले गया। वह ऊँट समझता था कि ऐसे पराक्रम के कार्य के लिए उसका आदर होगा पर पानी पिलाते समय मारवण ने उसके छड़ी मारी, फिर उसे ठूंठ से बांध दिया। 'सूरजड़ी' में व्यस्क होने पर सूरजड़ी बालिका का पिता से आग्रह है कि वह उसका विवाह करदे। पिता एक योग्य वर ढूंढता है और विवाह कर देता है। 'आंबो' में एक आसन्न-वियोगदग्धा बाला का पति से आग्रह है कि वह अपनी फूलीफली पत्नी को छोड़ कर परस्त्री के पास न जाये। पति कहता है वह उसे कृतार्थ करके ही उसे वियोग भी देगा। 'इगन गिगन भँवरा फिरै' गीत में स्वकीया अपने पति से अनुरोध करती है कि वह घर लौट आये। अनुरोध दासी के द्वारा भेजा जाता है, पर पति हर बार उसे टाल देता है—दाँतुन के लिए आइये, दाँतुन कर चुका आदि पर अंत में जब प्रेयसी से झगड़ा हो जाता है तो पति महोदय तुरंत लौट आते हैं। ओड़णी—जसमादे ओढ़णी को महाराज ने महलों में बुलवाया। ओड महाराज (सिद्धराज) के तालाब को खोदने आये थे, उन्हीं में जसमादे थी। उसने राजा के सभी निमंत्रण ठुकरा दिये और अन्त में सभी ओड़ जसमा सहित काम छोड़कर चल दिये। 'आठीडो' गीत एक पत्नी के भ्रम पर निर्भर है। पत्नी अन्य पुरुष को भ्रम से पति समझ कर उसके ऊंट पर उसके साथ चल दी। जब उसे अपना भ्रम विदित हुआ तो उसने अपने प्राण त्याग दिये। 'चांदा रे ताजै चांनणै' गीत सुन्दर पत्नी और चतुर पुरुष की प्रशंसा करता है। विविध सूक्तियां इसमें स्त्री-पुरुष के लक्षणों के सम्बन्ध में दी गयी हैं। 'इथ गोकुल उथ' में होली का वर्णन है। इधर गोकुल उधर मथुरा में होली की धूम है इसमें से मार्ग कैसे पाया जाय।

'व' इसमें नायिका कुछ जातियों का उल्लेख कर कहती है उनमें मेरा विवाह मत करना, वह राठौड़ों में विवाह चाहती है, वहां राज करेगी। 'जँवाई' में सास

अपनी लड़की जँवाई के साथ नहीं भेजना चाहती। विविध बहाने बताती है, पर जँवाई जिद्द पर है। वह भला कहाँ मानने वाला है। 'होली आई' में होली आने पर सहेलियों के सजने की उमंग का वर्णन है। ओजी ओ' में पुनः नायिका रसी की माटी आदि का निषेध करके राठौड़ों में विवाह करने की सम्मति देती है। 'चूनड़' में लहर का खेल खेलने जाने के लिए नायिका विविध वस्तुएँ मँगवाने के लिए माँ से आग्रह करती है।

घूमरों के इस सक्षिप्त विवरण से विदित होता है कि इसमें विषयानुसार गीतों[1] की यह सांख्यिकी है:—

(१) होली वर्णन—१२,१५ =२

(२) कथात्मक-ऐतिहासिक—५,६=२

सामान्य—१, २, ३, ६, ७, ८, १०=७/६

इनमें से एक में पुरुष ने परस्त्री का निमंत्रण ठुकरा दिया है।

एक में पतिप्रदत्त सौभाग्य चिह्न के खो जाने पर विकलता है। एक में पत्नी एक युक्ति से पति को वश में कर अपने लिए विविध वस्तुएँ मँगवाती है। एक में क्वांरी कन्या पिता से विवाह कर देने का आग्रह करती है। पिता योग्य वर ढूंढकर विवाह कर देता है। एक में पत्नी पति को विविध प्रलोभन देकर परस्त्री के पास जाने से रोकना चाहती है। पति उसकी सभी बातें मान कर भी परस्त्री के पास जाता है। एक में पत्नी दासी के द्वारा बहानों से पति को प्रेयसी के यहां से बुलाने का प्रयत्न करती है पर वह असफल रहती है, अन्त में प्रेयसी से झगड़ा होता है और वह स्वयं ही लौट आता है। एक में एक स्त्री भ्रम से परपुरुष को पति समझकर उसके साथ चल पड़ती है, भ्रम खुलने पर प्राण त्याग देती है। इनका वर्गीकरण यों हो सकता है—

- पति-पत्नी विषयक
  - संयोग विषयक
  - वियोग विषयक
- विवाहोत्सुका कन्या विषयक

1 यह सांख्यिकी श्री मोहनलाल पुरोहित के संग्रह 'राजस्थान की घूमरें' के क्रम से प्रस्तुत की गयी है। यह संग्रह राजस्थान साहित्य अकादमी से घूमरें नाम से प्रकाशित हो चुका है।

(३) स्त्री-पुरुष-लक्षण विषयक—११ = १

(४) कुछ जातियों के गुण-दोष विषयक ४,१३,१६ = ३

(५) लड़की को जँवाई के साथ न भेजने विषयक—१४ = १

(६ विविध पदार्थ माँ से मंगवाने के लिए, लूहर खेलने विषयक—१७ = १

इस विश्लेषण से हमें विदित होता है कि होलिकोत्सव के अवसर पर होने वाले घूमर गीतों में होली संबंधी केवल दो गीत हैं। अतः होली के अवसर के प्रभाव का कुछ पुट तो इनमें अवश्य है पर मूलतः घूमर होली गीत नहीं। उक्त छः वर्गों में समाने वाले गीतों में सबसे बड़ा वर्ग कथात्मक गीतों का है और ये सभी गीत पति-पत्नी के विविध संबंधों को लेकर रचे गये हैं। कथा वस्तुतः आधार-मात्र एक सूक्ष्मतन्तु के रूप में है। कथ्य वस्तु तो स्त्री की भावनाएं हैं। ऐतिहासिक वर्ग की दोनों कहानियों में अवश्य ही कथा-तत्व विद्यमान है। अधिकांश उन गीतों में जिन्हें वियोग के गीत माना जासकता है। वस्तुतः वियोग दुःख व्याप्त नहीं। उनमें नायिका के उन प्रयत्नों का उल्लेख है जिनका वह पति को अपनी प्रेयसी के यहां से लौटने के संबंध में उपयोग करती है। फलतः सभी गीत प्रकृत परिस्थितियों में उपयोगी व्यापार-व्यवहारों का प्रस्ताव करते हैं। सबके अन्तरंग में एक ही भावना व्याप्त है कि पुरुष को किस प्रकार वश में रखा जाय। तब क्या इसी वर्ग को घूमरों की मूल धुरी माना जाय ?

नृत्यगीत के निर्माण-तत्वों का विश्लेषण करें तो मिलेगा कि उसमें—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
नटन + नर्तन + भावाभिनय + वादन + स्वर-साधन + शब्दनियोजन + अर्थ-ज्ञापन
I II III

८
+ भावाभिव्यक्ति
IV

इनमें से १,२ तथा ५ नृत्यगीत के मूलाधार हैं। —प्रथम अवस्था।

६ इसके उपरांत आता है। इसमें शब्द तो आते हैं पर अर्थ-ज्ञापन का महत्व नहीं होता। —द्वितीय अवस्था

(४) नटन + नर्तन में पग-कर संचालन से एक ताल स्वयं पैदा होती है। इसी में वादन आरंभ हो उठता है। जो नृत्य में भाग नहीं ले रहे होते हैं उनमें भी ताल से ठेका लगाने की गति स्वयमेव उभर उठती है और वादन का जन्म हो जाता है। —तृतीय अवस्था

(६) भावाभिनय इस स्थिति पर उग उठता है। नृत्य और स्वर-शब्द जब ताल

पर जमने लगते हैं तो दो तालों के मध्य एक तरंग, लहर या गति-प्रवाह थिरकता है। इसी में एक रस और रस-पोषक भाव की गमक मिल उठती है। यह अर्थ-पूर्वी भावाभिनय होता है। —चतुर्थ अवस्था

(७) अब 'शब्द' प्रधान हो उठते हैं। स्वर-तरंग शब्दों को पचा नहीं पाती है, उनके ऊपर होकर प्रवाहित होती है, उन्हें अपने में व्याप्त नहीं कर लेती, उनमें व्याप्त होती चलती है। फलतः ये शब्द सार्थक हो उठते हैं। अर्थ-ज्ञापन भी इनमें आ जाता है। —पंचम अवस्था

(८) अर्थ-ज्ञापन से अर्थानुप्राणित भावाभिव्यक्ति गीत में हो उठती है। उसी के साथ अर्थानुप्राणित भावाभिनय में मुख और हस्तमुद्राएं साभिप्राय और प्रतीकवती हो उठती हैं। —षष्ठ अवस्था

यह कहना अपेक्षित नहीं कि षष्ठ अवस्था उच्च कला-भूमि पर पहुँचाती है और शनः शनैः शास्त्रीय रूप ग्रहण कर लेती है।

नृत्य गीतों के विकास की यही रूपरेखा मानी जा सकती है। यह सच है कि पंचम-षष्ठ अवस्था के मिश्रण में कई प्रकार प्राप्त हो सकते हैं। एक ही शब्दावली एक टेक की तरह आये और शब्द की प्रधानता प्रकट करे पर अर्थ को किंचित भी महत्व न देकर उन शब्दों के हेर-फेर, गौरव-अगौरव, हलके-भारीपन से शब्द–साधना को प्रधान बना दे।

आजु विरज में होली रे रसिया
होली रे रसिया, होली रे रसिया
आजु विरज में हो, आजु विरज में
विरज में, विरज में हो
होली रे रसिया वरजोरी रे रसिया
रसिया रे रसिया होरी रे रसिया।

निश्चय है कि इस गीत में अर्थ का महत्व नहीं, स्वर-साधना का और शब्द-नियोजन का ही महत्व है। किन्तु सभ्यता के विकास में 'शब्दार्थ' भी महत्व रखने लगता है, पर वह अर्थ बाद में आता है और कहीं से भी लिया जा सकता है। इन घूमर गीतों में नृत्य-गीत होने के कारण स्वर-शब्द का तो महत्व है ही, अर्थ का भी है। श्रम सहजात गीत की भाँति ही नृत्यगीत होते हैं—नृत्य श्रम तो है पर मूलतः यह नृत्य टोने का होता है। इसके स्वर भी उसी भाव वाले होते हैं। यह मूल भूमि सभ्यता के विकास में भी नहीं छूटती। यही कारण है कि घूमरों में आज मनोरंजन का तत्व प्रबल हो उठा है। इसी कारण उसके गीतों में वैविध्य भी पर्याप्त है पर टोने का भाव कुछ-न-कुछ विद्यमान ही मिलता है। समस्त गीतों की भावना वशीकरण

की भावना से युक्त है। शिक्षा के तत्व भी हैं पर जैसे समस्त नृत्य और गीत की आत्मा यही वशीकरण है।

प्रथम गीत 'कठड़ो' का है। उसमें शिक्षा तो स्पष्ट है। एक ओर तो परदेशी पति की चारित्रिक निष्ठा पुरुषों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करती है। राजस्थान के लोग परदेश बहुत जाते हैं. वहाँ वे इस गीत की स्मृति से प्रेरणा ग्रहण करते हुए सद्मार्ग पर ही चलें, यह उपदेश है किन्तु पुरुष को ही संयम की शिक्षा देना इस गीत का उद्देश्य नहीं, स्त्री को भी संयम की शिक्षा इसमें दी गयी है। लज्जा और शील त्याग कर पुरुष को निमंत्रण देने वाली स्त्री को अपमान ही सहना होगा। माँ के लाख शाप देने पर वह अपमान अपमान ही रहेगा। अपमान का भय कम प्रबल नहीं होता। इस गीत का ध्यान आते ही विकारग्रस्त स्त्री को भी मार्ग मिलेगा। इस प्रकार यह गीत पुरुष और स्त्री दोनों के लिए ही प्रतिबंधक है। दोनों के लिए कवच है। घूमर इसी कवच-यंत्र से आरम्भ होते हैं। देश से दूर ही नहीं, कहीं भी, जहां भी स्त्री-पुरुष मिलेंगे, भले ही घूमरों के नृत्य में ही क्यों न हो, यह गीत पुरुष-स्त्री दोनों को कील देगा। इस प्रकार कीलने से पुरुष का मन तो पट पड़ जायगा पर स्त्री प्रबल हो उठेगी। कठड़ों में भी स्त्री पूर्णतः प्रबल है इसमें सन्देह नहीं। अपनी पत्नी की आन में पत्नी की सीख की आन और उसके सौन्दर्य की आन में ही बंधा पति 'भंवरादे' के निमंत्रण को ठुकरा सका—और पति का यही वशीकरण घूमर का प्राण है। इसी से घूमरों को यह महत्व मिला है। ये गीत प्रबल तो हैं पर उन्मादक नहीं। इसकी ताल-लय मधुर जीवन्त और सशक्त तो है पर विभ्रामक नहीं।

अतः हम कह सकते हैं कि घूमर नृत्य प्रकृति की गति से संगति वाले नृत्यों का विकास है, तदनुरूप ही नृत्य-स्वर उसमें फूटे हैं और सांस्कृतिक विकास ने उन नृत्यों को जो सार्थक शब्दावली प्रदान की है उनमें भी प्रच्छन्न टोने का भाव दिखायी पड़ता है। समस्त स्थूल वर्जनाएं भी इस प्रच्छन्न टोने के भाव को पुष्ट करती हैं। भारत में सात की संख्या अत्यत प्रभावशाली मानी गयी है। इसके साथ टोने का भाव 'सप्तपदी' का महत्व ही सिद्ध करता है।[1] 'सात, आठ और नौ,' न सात से कम, न नौ से अधिक, फलतः तीन संख्याएं रहीं। लोकवार्त्ता की दृष्टि से सात से जीवन पर्यन्त वशवर्ती बंधन मिलता है, आठ से अष्ट सिद्धि और नौ से नव निधि। भारतीय भावनाओं का समस्त जीवनगत मंगल और समृद्धि इन्हीं तीन

---

1 सप्तर्षि, सात महारथी, सप्ततीर्थ, सप्तपुरी ये प्रसिद्ध हैं। जापानी धर्मगाथा में भाग्य देवता सात ही माने गये हैं।

संस्थाओं से प्राप्त है। सभी जानते हैं कि लोकवार्त्ता में ७ और ६ संख्या का वहुत महत्व है, और उनके साथ टोना लगा हुआ है।

यह समस्त विवेचन इन घूमरों का लोकवार्त्तापरक स्वरूप स्पष्ट कर देता है। घूमरों में काम में आने वाला वाद्य 'नगाड़ा' भी लोकतत्व से युक्त है—The most wide spread, sacred and ritually significant of all musical instruments....Drums date from neolithic time and have served all over the world for accompaniment to religious ceremonies,dancing, singing,marching and communal work, for exorcism of evil spirits and expulsion of capegoats and evil doers, for divination, for the induction of a state of possession suitable for communication with Gods and supernatural forces, as a means of signalling and specially as a fertility charm. नगाड़ा और ढोल या ढोलक दोनों आदिम नृत्यगीतों से सम्वन्धित हैं। नगाड़ा तो टोना तत्व से युक्त आज तक माना जाता है। आदिम मनोवृत्ति में नगाड़े को स्त्रीत्व का द्योतक माना जाता है और नगाड़ा वजाने का डंडा या डंडे पुरुषत्व के। फलतः नगाड़े वादन में भी उर्वरत्व का टोना स्वयं विद्यमान है। इसके चारों ओर होने वाले नृत्य और सहगामी गीतों में तदनुकूल तत्व व्याप्त हैं, यह भी हम ऊपर देख चुके हैं। आदिम मूल से विकसित यह नृत्य गीत आज विकसित भारतीय संस्कृति की कला का एक हृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

4

मिथ, पुराख्यान और लोकवार्त्ता

हाल ही में प्रकाशित दक्षिण कोरिया के चार डाक टिकटों पर एक लोककथा (Fable) प्रकाशित की गयी है। उसका सार यह है—

एक लकड़हारा कुमगैंग पर्वत की तलहटी में रहता था। एक दिन जब वह पहाड़ी पर लकड़ी काटने गया था, उसने अनायस ही एक रक्तस्नात मृग देखा जो अहेरी से भयभीत होकर भागा जा रहा था। लकड़हारे ने उस पर दया कर उसे छिपा कर उसकी रक्षा की। मृग ने इस उपकार का बदला चुकाने के लिए लकड़हारे को बताया कि कुमगैंग पर्वत में एक सरोवर है। वहां स्वर्ग की अप्सराएँ आती हैं। उनमें से एक के वस्त्र लेकर तुम छिपा देना। उसे अपनी पत्नी बना लेना। पर स्मरण रहे, उसके वस्त्र तब तक मत लौटाना जब तक तीन बच्चे न हो जायँ।

लकड़हारे ने तदनुसार वस्त्र चुराकर एक अप्सरा को अपनी पत्नी बना लिया और आनन्दपूर्वक रहने लगा। उनके दो बच्चे हो गये। लकड़हारा मृग की बात भूल गया और एक दिन उसने उसके चुराये हुए वस्त्र भी लौटा दिये। उन्हें पहन कर अप्सरा अपने दोनों पुत्रों को लेकर उड़ गयी। पत्नी और पुत्रों के वियोग में वह मरणासन्न हो चला। वही मृग फिर उसके पास आया। उसे सांत्वना देते हुए उसने बताया कि तुम फिर उसी सरोवर पर जाओ। अब अप्सराएँ सरोवर पर नहीं आतीं। अब वे स्वर्ग से बाल्टियाँ डालकर उस सरोवर से पानी खींच लेती हैं। तुम वहाँ जाकर एक बाल्टी में बैठकर स्वर्ग में चले जाना। उसने ऐसा ही किया। सरोवर पर जाकर एक बाल्टी में बैठकर ऊपर चला गया और अपनी पत्नी तथा बच्चों से मिला।[1]

सिद्ध है कि दक्षिण कोरिया में यह लोककथा अत्यन्त लोकप्रिय और लोक-प्रतिष्ठित है। तभी उसे चौथी कथा माला (Fable Series) में डाक टिकटों पर छापा गया है।

हिन्दी में कुतुबन की मृगावती में सं० १५६० विक्रमी में हमें यही कथा मिलती है। इस कहानी में लकड़हारा नहीं एक राजकुमार है। इसमें अप्सरा ही स्वयं मृगी है। इस कथा का ही आधार लेकर सं० १७२३ में मेघराज प्रधान ने भी मृगावती लिखी। इस कृति से विदित होता है कि मृगावती की कथा अत्यन्त लोकप्रिय थी। प्रधान ने लोक प्रचलित कथा का ही उपयोग किया।

इसमें संदेह नहीं कि कुतुबन के समय में भी यह कथा लोकप्रचलित थी। और कब यह कथा लोक-प्रचलित नहीं थी? डा० मनोहर शर्मा ने राजस्थान में पाबूजी के जन्म की कथा तथा हरस-जीण के जन्म की कथाएँ दी हैं, वे इसी कथा के रूपान्तर हैं और डॉ० मनोहर शर्मा ने बताया है कि "अप्सरा और मनुष्य के प्रणय की ये राजस्थानी लोककथाएँ" पुरुरवा एवं उर्वशी की प्रेम-कथा के रूपान्तर हैं जो हमारे देश में अति प्राचीन काल से लोक-प्रचलित हैं। ऋग्वेद (१०-९५) में इस प्रणय-कथा की चर्चा है। इसी प्रकार यह प्रसंग शतपथ—ब्राह्मण (९.१) में भी उपस्थित है। परन्तु विष्णुपुराण में यह प्रेमकथा विकसित रूप में दी गयी है।

---

1 द इलस्ट्रेटेड वीकली आव इन्डिया vol. XCII.26 Sunday. June 27, 1971 पृ० 59.

कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' में यही कथानक लिया है। उधर दक्षिण कोरिया में आज भी यह लोकप्रचलित है। और स्कैंडिनेविया में भी हंसबालाओं की कहानी के रूप में यह मिलती है।[1]

पुरुरवा उर्वशी की कहानी को विद्वानों ने 'स्वान मेडन' (Swan-maiden) मानक रूप के अन्तर्गत रखा है। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स[2] के अनुसार "यह सुन्दर और व्याख्यात्मक पुराख्यान (Myth) प्राचीन मूल का आख्यान है। यह विविध रूपान्तरों में विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ है। इस मिथ का केन्द्र-विन्दु यह है कि कुछ प्राणी, अर्द्ध मानव, अर्द्ध पराप्राकृतिक, पक्षी रूप में परिणत हो जाने की शक्ति से सम्पन्न हैं। इसके साथ दो गौण वातें भी रहती हैं:— (१) यह योनि—परिवर्तन (पक्षीयोनि में) किसी जादुई वस्तु पर निर्भर करता है— वह परों का कोट, लवादा या परदा हो सकता है जिससे शरीर ढकने पर पक्षी-रूप प्राप्त हो जाता है। यह अँगूठी या माला भी हो सकती है। (२) या तो यह प्राणी जब मनुष्य रूप में होता है तव, या उसको अपने वश में रखने वाला व्यक्ति, किसी न किसी वर्जन से वँधा होता है।"

जैसे उर्वशी अप्सरा है, यों भी उसमें उड़ने की शक्ति है पर 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लेख है कि उर्वशी के वताये वर्जन के उल्लघन के उपरान्त उर्वशी के उड़ जाने पर पुरुरवा उसके वियोग में तड़पता उसकी खोज करते-करते कुरुक्षेत्र के सरोवर पर पहुँचता है तो वह हंसिनी के रूप में उर्वशी को अन्य हंसिनियो के वीच क्रीडा-मग्न पाता है। स्पष्ट है कि उर्वशी में हंस-वाला के रूप में परिणत होने की शक्ति थी। इसी उल्लेख से उर्वशी की कथा हंस-वल (स्वान मेडन) की कोटि की हो जाती है

पेंजर ने भी वताया है कि यह कथा संभवतः विश्व की प्राचीनतम प्रेमकथा है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त 'शतपथब्राह्मण,' 'विष्णुपुराण' आदि के वाद कालिदास के विक्रमोर्वशी में तो यह है ही। सहस्र रजनी चरित (अलिफ लैला) में वसरा के हसन की कहानी भी इसी का एक रूपान्तर है।

स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर आदि में उल्लेख है कि—

"The motif (D.361 : 1) typifying a world-wide cycle of Folk Stories characterized by the metamorphosis of a

---

1 Scandinavian Legends and Folk Tales P. 174.

2 पृ० 125, vol. 12.

beautiful half-mortal, half-super natural Maiden from Swan to maiden-form. The Swan-form depends upon the possession of a magic feather robe (or pair of wings), or a ring, crown, or a golden chain Uaually the Swan Maiden is under some enchantment or tabu that effects also her human lover. That the Swan Maiden marries the youth who finds and steals her swan garb on the shore is common to almost all Asiatic and European versions. Either the lover hides the enchanted feather dress (ring, chain, crown) and thus keeps the wonderful swan maiden with him in human form until she finds it, or the breaks the tabu and she vanishes and returns to her swan shape and super natural life."[1]

यह अभिप्राय एशिया और यूरोप में सर्वत्र पाया जाता है। स्लैवों की लोकवार्त्ता में, आइसलैंड, फिनलैंड की कहानियों में तथा कैल्टों और ट्यूटनों की कहानियों में यह अभिप्राय मिलता है। फारस, लंका, जापान, आस्ट्रेलिया, पोलीनेसिया, मेलैनेसिया, इण्डोनेसिया में भी और अफ्रीका में भी।

अमरीकी इण्डियनों की एक कहानी में एक अहेरी एक झील में कुछ हंसिनियों को स्त्री रूप में क्रीड़ा करते देखता है। उनके परों के आच्छादन तट पर रखे हुए थे। वह उन सभी के आच्छादनों को अपने अधिकार में कर लेता है, फिर एक को छोड़ शेष सबके आच्छादन लौटा देता है। सभी उड़ जाती हैं। वह एक उसके साथ विवाह करके रहने लग जाती है। उसके दो बच्चे होते हैं। एक दिन उसे अपना हंसिनी-आच्छादन मिल जाता है, उसे धारण कर अपने दोनों बच्चों के साथ वह उड़ जाती है। अहेरी पीछा करके उन्हें पुनः प्राप्त कर लेता है। अन्त में वह अपनी पत्नी को मार डालता है, पर बच्चे बच कर भाग निकलते हैं।[2]

इन विवरणों का अभिप्राय यह है कि उर्वशी अप्सरा की कहानी विश्व भर में मिलती है, विविध रूपान्तरों में। डॉ० मनोहर शर्मा के अनुसार राजस्थान में कुछ व्यक्तियों की दिव्य-उत्पत्ति बताने के लिए दो रूपों में यही कथा मिलती है।

इस कथा को एक रूपान्तर राजस्थान में जान कवि रचित 'क्याम खाँ रासा

---

[1] पृ० १०६१।

[2] स्टैंडर्ड डिक्शनरी के आधार पर।

में ी दिव्य उत्पत्ति के सवंध में मिलती है। कथा घंघरान चौहान राना की है। एक मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाया, बहुत दूर वन में हिरण छिप गया, राजा परेशान। वहीं तालाब अप्सराएँ चार स्नान करती थीं। राजा ने उनके कपड़े किनारे से उठा लिये और उनमें से एक उनसे विवाह करने को तैयार हो गयी। तब उनके वस्त्र दिये। सबसे छोटी से विवाह-घंघरान के अप्सरा से तीन पुत्र-कन्ह, चंद और इंद।[1]

पेंजर ने कथा सरित्सागर (viii) में निर्णय दिया है कि हंस-बाला की कहानी की मूल धुरी संस्कृत में है—अर्थात् वेद-पुराणों के पुरुरवा-उर्वशी आख्यान में। इतिहास की दृष्टि से यह कहानी ऋग्वेद के उल्लेख से भी पूर्व की होनी चाहिए। ऋग्वेद में तो पुरुरवा-उर्वशी का संवाद भर है, आख्यान नहीं। आख्यान शतपथ-ब्राह्मण में है। ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी के संवाद की आधार कथा क्या शतपथ-ब्राह्मण के कवि ने अपनी कल्पना से रची होगी या उसने उस परम्परागत आख्यान को दिया है जिसमें से संवाद का अंश ऋग्वेद में सम्मिलित किया गया। स्वाभाविक निष्कर्ष यही हो सकता है कि पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान परंपरा में ऋग्वेद से भी पूर्व से चला आरहा होगा। वेदों से आख्यान नहीं लिया गया, आख्यान पूर्व-प्रचलित था, उसमें संवाद ऋग्वेद ने ले लिये हैं।

जो भी हो, अप्सरा मानव के प्रणय की यह कथा लोक-कथा भी है, पुराख्यान (Myth) भी है और साहित्यिक लोकगाथा भी है।

'मिथ' के संबंध में इधर पाश्चात्य नवालोचन (New criticism) में बहुत चर्चा हुई है और फलतः हमारे यहाँ भी मिथ और मिथक की चर्चा चल पड़ी है।

रेने वालेक और ऑस्टिन वारेन ने 'थ्योरी आव लिटरेचर' में बताया है कि 'मिथ' जो कि आधुनिक आलोचना का एक प्रिय शब्द है, अर्थ के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र की ओर संकेत करता है और उसी पर छायारहता है। अर्थ का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र धर्म (Religion), लोकवार्ता, नृतत्व, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाओं (Favourite) द्वारा समानरूपेण उपयोग में आता है।[2]

प्रतीकवाद की एक परिभाषा देने का प्रयास करते हुए Literary Criticism : A Short History में William K. WimSatt, JR. Cleantn Brooks लिखते हैं :

---

[1] क्याम खां रासा-संपादक डॉ॰ दशरथ शर्मा, अगरचंद नाहटा, प्रकाशक राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुर। पृ॰ ७ से ६, खण्ड ७३-१०३।

[2] Myth'a Favourite पृ॰ १६०.

Whether a real school of symbolism ever existed, remains a problem of speculation Each poet developed and represented a single aspect of an aesthetic doctrine that was perhaps too vast for one historical group to incorporate ..But more than on any other article of belief, the symbolist, united with Mallarme in his statements about poetic language The theory of the suggestiveness of words comes from a belief that a primitive language, half–forgotten, half-living, exists in each man. It is a language possessing extraordinary affinities with music and dreams. (Mallarme p. 26).

इसमें आये 'Primitive language, half forgotten, half living exists in each man' पर विशेष चर्चा करते हुए कहते हैं कि मल्लार्मे ने जब ये शब्द लिखे थे तब से अब तक, आधुनिक अर्थात हमारे समय तक 'prelogical and primitive mind या आदिम मानस में जो रुचि नृतत्व अथवा गूढ़ मनोविज्ञान Depth psychology में संवद्धित हुई है उसने ही मिथ को विशेष महत्त्व प्रदान कर दिया है, आज के युग में। क्योंकि मिथ को ही 'a primitive language, half forgotten, half living' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अरस्तू में मिथ का अर्थ है कथा या कहानी (A Narration, Story, a fable) किन्तु 'मिथ' को जो महत्त्व धर्मों और भाषाओं में मिला हुआ है उससे इसमें अर्थ-वैविध्य और महान अर्थ क्षमता की संभावनाएँ सिद्ध होती हैं। फलतः मिथ कहानी के रूप में तो है, पर उसमें प्रतीकात्मकता भी है और उसका संबन्ध एक छोर पर लोकमानस के आदिमस्तर से भी जुड़ा हुआ है। अतः मिथ या कहानी स्वयं आदिम भाषा का एक रूप है, जिसमें कितने ही विम्ब-प्रतीकों के रूप के शब्द हैं।–"(उर्वशी) अप्सरा-हंसवाला-सरोवर जल-आच्छादन : वस्त्र-वशीकरण के उपकरण — (पुरुरवा): मानव-नारी + नर प्रेम–शर्त-वर्जन-प्राप्ति-संतान-वर्जन उल्लंघन-लोप-प्रयत्न-पुनः प्राप्ति" — इस कहानी के ये कुछ शब्द प्रतीक हैं। विश्व भर में कथा-विम्ब ही मूलभाषा का काम देते हैं। इन्हीं को लेकर कवि महाकाव्य रचता है, धर्म अपना पुराण रचता है। और नृतत्वविद् तथा अन्य विद्वान अपने-अपने अर्थ लगाते हैं।

पुराण-शास्त्रियों (mythologists) के एक प्राचीन सम्प्रदाय ने इन्हें प्रकृति-पुराख्यान (nature myths) माना—वारिदवाला जहां धवल वाविं हैं और वशकर्त्ता है झंझावात की आत्मा (storm spirit)। कुछ ने इन्हें मृतकों के लोक

के निवासी की कल्पना माना। कुछ ने इन्हें तत्वम (totem) बताया। कुछ ने इसके वर्जन के पक्ष को लेकर ही, इसे आदिमकालीन वैवाहिक वर्जनों का उल्लेख माना। उधर पुरुरवा-उर्वशी ऋग्वेद में आये हैं। और वेदों के अर्थों के सम्बन्ध में 'उरुज्योति' की भूमिका में यह लिखा है : "वेदों के पश्चिमी विद्वानों ने सायण के प्रदर्शित मार्ग से वेदों का अनुशीलन किया, किन्तु उन्होंने भाषाशास्त्र और तुलनात्मक धर्मविज्ञान इन दो नये अस्त्रों से वैदिक अर्थों की जिज्ञासा को आगे बढ़ाया। जो विद्वान उनके प्रयत्नों से परिचित हैं, उन्हें जैसा श्री ई० जे० टामस ने डॉ० रीले की पुस्तक "वैदिक गाड्स एज फिगर्स आव बाओलोजी" नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है— "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वैदिक अर्थों के प्रज्ञान की समस्या का समाधान अभी नहीं हुआ। वैदिक मंत्रों के अर्थ अभी तक 'संप्रश्न' के रूप में हमारे सामने हैं। उनसे सम्बन्धित अनेकानेक प्रश्नों का मुख अभी तक खुला हुआ है।" उरुज्योति के लेखक महान वैदिक विज्ञान स्व० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल भूमिका में आगे बताते हैं : "समस्त वेदों का पर्यवसान अध्यात्म विद्या में है। यह दृष्टिकोण स्वामी दयानन्द ने अपनी विशाल प्रज्ञानमयी प्रतिभा से जिस दृढ़ता से रखा, उससे वैदिक अर्थों की शैली सचमुच बहुत लाभान्वित हुई है।" अत: वेदार्थ में अध्यात्मक विद्या के खोजकों ने वैदिक शब्दों का विशेपार्थ प्रस्तुत किया। स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल स्वयं भी इस नयी वैज्ञानिक प्रणाली से वेदार्थ और व्याख्या में प्रवृत्त हुए। इस विधि से पुरुरवा-उर्वशी का अर्थ ही कुछ और हो जायगा। जो भी हो उर्वशी और पुरुरवा पर इतनी चर्चा यह प्रकट करती है कि इस मिथ को, जो मिथ होने से पूर्व लोक-कहानी ही थी, समझने के आज तक जितने भी प्रयत्न हुए हैं वे पर्याप्त नहीं हैं। लोक भूमि पर लोक-मानस की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण इसमें नयी रुचि व नये रूप रंग देकर नये बोध के योग्य बनाती रहती है। और नये-नये अर्थों की संभावना बनती जाती है। इसीलिए लोकसाहित्य भी नया महत्व ग्रहण करता जाता है। उसका अध्ययन भी नयी अर्थवत्ता को जन्म देता है।

5

देवीगीत लांगुरा

०

देवी के गीतों में 'लांगुर' या 'लांगुरा' एक पात्र के रूप में आता है। लांगुरा से संबंधित 'लांगुरिया' नामक गीतों का एक अलग वर्ग बन गया है। ये लांगुरिया गीत देवी-गीतों के साथ अवश्य गाये जाते हैं।

हमने कई वर्ष पूर्व 'ब्रजभारती' (आषाढ़-भाद्रपद सं० २००६) के अंक में 'लांगुर कौन ?' शीर्षक से एक टिप्पणी लिखी थी वह यों थी—

देवी के गीतों के समय लांगुरिया अवश्य गाये जाते हैं। ये गीत देवी के लांगुर से सम्बन्ध रखते हैं। देवी का यह लांगुर या लांगुरिया विचित्र प्राणी है। उससे जाति पूछी जाती है—"भैया लांगुरा रे अपनी जाति बताऊ" तो वह उत्तर देता है—"बम्मन के हम बालका, उपजे तुलसी पेड़।" उसकी

माँ समझती है कि लांगुर कुछ नहीं खाता, पर वह 'बारा बाटी मदुपियै सौ रे वुकश खाइये।' लांगुर की माँ कहती है कि छै माह की रात्रि है, पर लांगुर सोता ही नहीं। यह लांगुर माता का वड़ा प्रिय है। उसका सहायक है। उसका आज्ञाकारी है। देवी आज्ञा दे तो असुर के नौ कीलें ठोक दें, आज्ञा दे तो उन्हें निकालने में कोई कसर नहीं छोड़ता। वह भी देवी की ढूंढ-खोज में व्यस्त रहता है। यदि कहीं भी माता चली जाती है तो वह उसे ढूंढता फिरता है। भक्ति से उसका क्या सम्बन्ध है, देवी माँ का कृपा पात्र होने के कारण वह भक्तों की सेवा का अधिकारी तो है ही। एक भक्त तो दिन भर उसे गांजे की चिलम भर-भर कर पिलाता है—

'मेरो चिलम भरत दिनु जाइ, लंगुरिया बड़ो पिवैय्या गांजे को।'

उसके लिए दस वीघा गांजा वोया गया है, नौ वीघा भांग। गांजा लांगुरिया पीता है, भांग महादेवजी पीते हैं। भक्त स्त्रियां उसे किस रूप में ग्रहण करती हैं और किस भाव से देखती हैं, यह कुछ गीतों की निम्न आरम्भिक पंक्तियों से प्रकट होता है:—

१. कारी चूंदरिया में दागु न लगइयो लांगुरिया।
२. ए लांगुरिया तेरी धन खाइलई कारे नाग नें।
३. अरे कछु खाई, कछु डसि लई और कछु मारी फुसकारो, ए लांगुरिया।
४. दहिय विलोवै दारी गुजरिया विलवावै लांगुरिया।
५. बसन्ती रंग रंगवाय दुंगी, जा लांगुरिया की टोपी।
६. मति खेंचै रे लांगुरिया तलवारि तेरोइ घर जाइ, मैं हंसती कब देखी।
७. तेरो करूंगी भमन में न्याव, लांगुरिया मति हंसै।
८. काऊ देश चोरी जइयो लांगुरिया,
   काऊ जाटिनी के झमका वारीलइयो लांगुरिया।
९. दरद को मारो लांगुरिया मरि मरि जाय।
   लांगुर तुम लोय हम डोर सरकि आओ जाई वन में।
१०. करौली वारी नदिया वहाए लिए जाय।
   जब नदिया मेरे पांयन आई,
   सम्हारि वारे लांगुरिया, मेरे विछुआ भीजे जांय।
११. केला मैया नें वुलाई तव आई लांगुरिया।
१२. ए लांगुरिया हंसि मति अइयों काऊ और ते,
   मैं मरूंगी जहर विष खाइ।
१३. करि लीजै दूसरो ब्याहु लांगुरिया मेरे भरोसे मति रहिए।
   मोय लीपि न आवै लीपनों और गाढ़ि न आवै खूंट।

मोय पीसि न आवै पीसनौं और डारि न आवै कौर।
मोइ रांधि न आवै रांधनौं और मोइ परसि न आवै थारू।

लांगुरिया का एक गीत और यहां उद्धृत करना होगा—

अनोखी मालिनी मैना करै तो डर पै काए कू ।
तेरे हाथ कौ मूंदरा, लांगुर दियौ गढ़ाइ । अनोखी मालिनी०
तेरे सिर की चूंदरी, मैना लांगुर दई रंगाइ । अनोखी०
तेरे गोद का लालुआ, गांगुर की उनहारि । अनोखी मालिनी०
ना काऊ के घर गई, तो मैंने लियौ बुलाइ । अनोखी०
रस को बींधौ लांगुरा, आइगयो मेरी सेज । अनोखी०

लांगुरिया को बहुधा बारा या छोटा बताया गया है। उसी के अनुकूल कहीं-कहीं वात्सल्य भाव से भी देखा गया है। रंगीली टोपी रंगवाने में वही अर्थ है, किन्तु यह बालापन भी पतित्व लिए हुए दीखता है, जैसे बहुधा गीतों में, बारे नाह का उल्लेख होता है। यह पति के प्रति अत्यन्त लाड़ का द्योतक है। भारतीय घरों में स्त्री पति का ऐसे ही पोषण करती है जैसे किसी बालक का। यह भी हो सकता है कि देवी की जाति के लिये जाने वाले पुत्र और पति दोनों में ही देवी के लांगुर भाव का आरोपण कर दिया जाता हो फिर भी यह यथार्थ ही प्रतीत होता है कि लांगुर में रति भाव विशेष है। अन्त में जो गीत दिया गया है, उसमें पर पुरुष के रूप में भी दिखाई पड़ता है। मालिन ने स्वीकार भी कर लिया है। लांगुरिया के गीतों में व्यंग्य, विनोद, हास्य सभी भरा हुआ है। देवी के गीतों के साथ देवी सम्बन्धी कुछ अन्य विषयों पर भी गीत होना अनिवार्य माना जाता है। ये विषय हैं—लांगुरिया, सुरही, काजर, मेंहदी, भोग, पौढ़ना (शयन)। लांगुरिया और सुरही ऊपर दिए जा चुके हैं, शेष गीतों में पहले तो यह वर्णन रहता है कि कहां से आया है वह पदार्थ, फिर देवी के प्रसिद्ध थान का नाम लिया जाता है, फिर जिस घर में गीत गाये जाते हैं, उसके समस्त स्त्री पुरुषों का नाम लिया जाता है।

लांगुर क्या शिव है ?

इस विवेचन से और 'लांगुर' का सम्बन्ध सदा कन्या से होने के कारण यह तो आभास मिलता है कि यह शब्द 'शिव' का द्योतक है। आप्टे महोदय ने अपने कोश में कन्या का अर्थ दुर्गा दिया है। व्रज में नवरात्रि पूजन अथवा देवी पूजन के उपरान्त 'कन्या लांगुर' को भोजन कराया जाता है। कन्या दुर्गा है तो लांगुर शिव ही हैं।

किन्तु 'लांगुर' शब्द क्या है ? उसका अर्थ शिव कैसे होता है ? ब्रजभाषा में एक शब्द है 'लंगर'। पराई स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखने वाला रसिक पुरुष 'लंगर' कहलाता है। यह लंगर सम्भवत: 'लंग:' से बना हुआ है। लंग: का अर्थ प्रेमी अथवा उपपति होता है। लंगक: का भी यही अर्थ है। अत: लंग: अथवा लंगक: से लंगर बन सकता है, किन्तु क्या लंगर से लांगुर संभव है ? ऊपर दिये हुए गीतों में लांगर की लंगराई का तो कुछ रूप स्पष्ट होता है; किन्तु इस लंगर या लांगुर का पार्वती अथवा दुर्गा से सम्बन्ध कैसे बैठ सकता है ?

लकुलीश तो नहीं ?

इसकी एक व्युत्पत्ति लकुट-लगुड़-लाठी से हो सकती है। लकुट धारण करने वाला लाकुट या लागुड़ या लांगुह्य या लांगुर। लकुट धारण करने वाले ये लांगुड़ या लांगुर शिव हैं, यह सिद्ध किया जा सकता है। शिलालेखों, विष्णुपुराण तथा लिंगपुराण से एक 'लकुलीश' सम्प्रदाय का पता चलता है। यह पाशुपत सम्प्रदाय था। लकुलीश वास्तव में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उन्हीं के नाम से सम्प्रदाय प्रचलित हो गया। पं० बलदेव उपाध्याय लकुलीश सम्प्रदाय का जन्म अवान्तर उपनिषद् काल में मानते हैं। इनका जन्मस्थान बड़ौदा में कारवण (कायावरोहण) नामक स्थान माना जाता है। इन लकुलीश की मूर्तियों में माथे पर घने केश होते हैं। एक हाथ में बीजपूरक फूल और दूसरे में लांगुड़ (लाठी)। इनका नाम ही लकुलीश-लकुल अथवा लगुड़ धारण करने के कारण पड़ा।

रावल शब्द भी लाकुल का ही रूपान्तर है। वाप्पा रावल ने रावल उपाधि रावल सम्प्रदाय में अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए ही धारण की।

सन् ९४३ से १२८५ तक प्रशस्तियों में तो प्रत्येक शिव ही लकुलीश कहलाता था। डा० डी. आर. भांडारकर ने राजपूताने के अनेक मन्दिरों में ऐसी मूर्तियां देखीं जो लकुट धारण किये द्विभुजी शिव की थीं। उनका अनुमान था कि ये मूर्तियां किसी ऐसे सिद्ध की स्मारिका हैं जो बाद में 'शिव' का अवतार मान लिए गये। ऐसे सिद्ध लकुलीश ही थे। ये लकुलीश ही शिव माने गये।

सन् १२८७ वि० के सोमनाथ के शिलालेख में गोरखनाथ और लकुलीश का नाम साथ-साथ आया है। नाथ सम्प्रदाय के धर्मनाथ के सम्बन्ध में यह प्रचलित है कि ये पेशावर से द्विनोधा आए थे और चारण देवी नामक विधवा के हाथ में से मनवीर उत्पन्न हुए। इस पुनरुद्भूत सिद्ध का नाम 'रावल पीर' पड़ा था। रावल पीर के अर्थ 'लाकुल गुरु' होते हैं।[1]

---

[1] नाथ संप्रदाय—रावल शाखा, पृ० १६१—१६७।

यह लाकुल ही लागुर हैं जो ब्रज के उच्चारण में लांगुर हो गये हैं और लांगुरिया बन गए हैं। द्विवेदीजी ने लिखा है कि—"लकुलि, लगुलि (लाठी ?) आदि शब्दों का एक रूप ही सूचित करता है कि ये देशी शब्दों के संस्कृत रूप हैं।" (पृ० १६४)। लकुलि से लकुलीश हुआ और 'लकुलि' या लगुलि युक्त हुआ वह लागुल या 'लांगुरि' या 'लांगुर'।

द्विवेदीजी ने पृष्ठ १६५ पर बताया है कि 'रावल पीर' शब्द ही लाकुल गुरु की याद दिलाता है। और 'लाकुलगुरु' में 'कुलगु' के 'गु' में समीकरण से यह केवल 'लागुरु' रह गया। क्या यही 'लागुरु' 'लांगुर' नहीं है ? किन्तु हमारे मत से डा० शालिग्राम गुप्त सहमत नहीं। वे यह मानते हैं कि "लंगड़ होने के कारण ही लंगुरा की 'लांगुरता' है।" उन्होंने रासमाला की उस कथा का आधार लिया है जिसमें सिद्धराज जयसिंह की एक रानी पर आने वाले भैरव को जगदेव पवार ने पछाड़ कर लंगड़ा कर दिया था और उससे यह वचन ले लिया था कि अब रानी की ओर नहीं आयेगा।

डा० गुप्त के इस लेख का अंतिम अंश उद्धृत किया जाता है—

अब वह कहने लगा—'मुझे छोड़ दो। आज से मैं कभी इस शरीर में नहीं आऊंगा।' इसके बाद उसका आवेश उतारने के लिए रानी जाड़ेजी को एक तहखाने में उतारा गया और काला भैरव को कैद करके रानी को बाहर निकाल लिया।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, काला भैरव और गोरा खेतरपाल ये दोनों चामुण्डा माता के अखाड़े के वीर थे। एकबार खेतरपाल को अकेला देखकर माता ने उससे पूछा- 'काला कहाँ है ?' खेतरपाल ने उत्तर दिया—'मां ! आपसे क्या छुपा है ?' माता चामुण्डा ने ज्ञानदृष्टि से देखा तो सब बात मालूम हो गई। वह बोली-मैंने काला को पहले ही मना कर दिया था कि जहां जयदेव परमार हो वहां मत जाना परन्तु वह नहीं माना। ऐसा कह कर उसको छुड़ाने के लिए उन्होंने कंकाली भाटणी का रूप धारण किया। हाथ में त्रिशूल लेकर वह पाटण नरेश सिद्धराज के दरबार में आई और जगदेव से दानस्वरूप काला भैरव को छोड़ देने की प्रार्थना की। जगदेव ने काला भैरव को जिसका एक पैर उसने पहले ही खण्डित कर दिया था, तहखाने से मुक्त कर दिया। एक पैर से खण्डित होने के कारण ही देवी चामुण्डा के अखाड़े का वीर काला भैरव लगड़ा कहा जाने लगा। यही लंगड़ा लंगरा, लगुरा अथवा लंगरवा, लंगुरवा कहलाया।

'रासमाला' की उपर्युक्त कथा में लगुरा का जो रूप दिखायी पड़ता है

उसका वही रूप प्रायः व्रज और बुन्देली के देवी के गीतों में भी देखा जाता है। अतः स्पष्ट है कि देवी के अखाड़े का लगड़ा वीर काला भैरव ही लोकगीतों में लंगरा, लंगुरा के नाम से याद किया जाने लगा न कि भगवान शंकर के अवतार एवं लगुलीश पाशुपति सम्प्रदाय के प्रवर्तक लगुल गुरु लोकगीतों में लगुरा बन गए।[1]

'लांगुर' पर एक चर्चा सम्मेलन पत्रिका (भाग ५१, संख्या १-२) में श्रीमती मालती शर्मा ने की है।

श्रीमती मालती शर्मा ने प्रो० इन्दुप्रकाश पांडेय के उस मत को अस्वीकार कर दिया है, जो उन्होंने 'अवधी लोकगीत और परम्परा' नामक अपने ग्रंथ में दिया है। प्रो० इन्दुप्रकाश लांगुर को हनुमान मानते हैं। श्रीमती मालती शर्मा इस मत से सहमत नहीं। श्रीमती शर्मा ने लोकगीतों में हमारे शोध-प्रबंध से संकेत लेकर लांगुर के दो रूप माने हैं :—

१. विशिष्ट लांगुर
२. आरोपित लांगुर

विशिष्ट लांगुर ही अनुसंधान का विषय है। इस विशिष्ट लांगुर के सम्बन्ध में श्रीमती शर्मा की स्थापना है कि इस लांगुर में एक तो चंडी का वटुक रूप समाया हुआ है, दूसरे एक दैत्यपुत्र का रूप भी है। इन दोनों से मिलकर लांगुरा बना है। चंडी के वटुक की कथा के सम्बन्ध में श्रीमती शर्मा लिखती हैं :—

"वटुकोत्पत्ति तथा शिव परिकर में प्रतिष्ठा की कथा शिवमहापुराण की कोटि रुद्रसंहिता में आती है। दधीच ब्राह्मण के भ्रष्ट पुत्र सुदर्शन की तपस्या से प्रसन्न हो, पार्वती सुदर्शन को अपना पुत्र बनाकर शिव की गोद में समर्पण करती है। शिव सुदर्शन को यज्ञोपवीत दे सदैव गोलतिलक लगाने का निर्देश कर देवीकार्य और ब्रह्मभोज में चंडी के वटुक की मुख्यता का वरदान देते हैं। पार्वती सुदर्शन पुत्र को अपने निकट स्थापित करती है और अपने तथा अपने भक्तों के मध्य वटुक पूजा को अपनी ही पूजा मानती है।" (पृ० १६८)

दैत्य-पुत्र की कथा श्रीमती शर्मा को मथुरा जिले के राया नगर के राष्ट्रीय इण्टर कालेज के चपरासी मदन से सुनने को मिली थी। उसका सार रूप यों है :—

"भगवान एक कला से दैत्य-स्त्री का सतीत्व भ्रष्ट करते हैं। दूसरी से दैत्य-वध करते हैं। पति की कटी भुजा और कटे शिर को आया देखकर दैत्य-पत्नी का गर्भपात हो जाता है। बड़े-बड़े दांतों वाला बालक देख कर दैत्य-पत्नी

---

1. देखिए 'साहित्य सन्देश' मई, १९६८, वर्ष २९, अंक ११।

भयभीत होती है। भगवान उसके बड़े-बड़े दांत तोड़ देते हैं। बालक तब भगवान से पूछता है—"अब मैं खाऊंगो काए ते।" भगवान कहते हैं—"अरे लांगुर! तू मां देवी के पास जा और उनकी सेवा करि। मां पूजन हारी ताइ नामी ही लपसी खवामेंगी।"

इस कथा के बालक को लांगुर बताकर वे दैत्य को जरासंध और दैत्य-पत्नी को वृन्धा मानकर दैत्य-पत्नी के पुत्र का वृन्दा अर्थात् तुलसी का पुत्र सिद्ध करती है।

इस प्रकार वटुक + दैत्य-पुत्र से वे लांगुर के इस कथन को सिद्ध करतीं हैं जो एक व्रजगीत में मिलता है :—

लांगुर बताता है कि —

"बम्मन के हम बालका, उपजे तुलसी पेड़।"

संभवतः श्रीमती मालती शर्मा को हमारा वह लेख देखने को नहीं मिला, जिसमें लकुलीश को लांगुर सिद्ध किया गया था अन्यथा वे उसकी भी चर्चा करतीं और उस पर भी अपने विचार देतीं।

अब हम देवी-देवताओं के क्षेत्र में 'लांगुर' की स्थिति से अवगत होना चाहते हैं। यह क्षेत्र है–'हिमाचल प्रदेश'। हमारे एक अनुसंधानकर्ता डॉ० वंशीराम शर्मा ने हमारे निवेदन पर हिमाचल में 'लांगुरा वीर' की स्थिति का अनुसंधान किया और अपना विवरण भेजा। यह रोचक विवरण हम ज्यों का त्यों यहां देते हैं :—

लांगुरा वीर

'लांगुरा' अथवा 'लांगूरा वीर' को पहाड़ी बोली में 'लौंकड़ा', 'लौंकड़' तथा लांकड़ वीर' भी कहते हैं। इस देवता का हिमाचल प्रदेश के सामान्य जनजीवन पर प्रभाव तो है, परन्तु इसके मन्दिर संख्या में नहीं के बराबर हैं। यह विश्वास किया जाता है कि लांकड़ वीर अन्य वीरों की भांति अदृश्य है और उसकी मूर्ति आदि बनाना कठिन कार्य है। इस वीर का प्रभाव-क्षेत्र हिमाचल प्रदेश का महासू जिला है, जहां इसके तीन मन्दिर हैं। देलठ का मंदिर अधिक प्रसिद्ध नहीं है और न ही यहाँ इस देवता से सम्बन्धित कोई विशेष सामग्री मिलती है। यहां लांगूरा वीर की स्थापना अन्य स्थानों की भांति भीमाकाली के साथ हुई है और इसे रामपुर बुशहर के राजाओं ने किया था।

लांगूरा अथवा लौंकड़ा वीर का बहुत प्रसिद्ध मन्दिर उपरि महासू के सराहन नामक स्थान पर है। यहां भीमाकाली का प्रसिद्ध मन्दिर है, जहां देवी की दो

मूर्तियां हैं। एक मूर्ति के अनुसार देवी अविवाहित है और दूसरी मूर्ति विवाह के पश्चात् की है। मूर्तियाँ सोने की बनी हुई हैं।

भीमाकाली के मन्दिर के साथ ही लौंकड़ वीर का अलग मन्दिर है। इस मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है। एक कुआ मन्दिर के बीच है, जिसे अब लकड़ी के एक बड़े ढकने से बन्द कर दिया गया है। इस ढकने में ताला लगा है ताकि इसे कोई खोल न सके। कुआ काफी चौड़ा तथा न जाने कितना गहरा है। मन्दिर के बाहर से इसमें लगभग दस फुट तक उतरने के लिए पौड़ियां लगाई गई हैं। पौड़ियों से उतरने पर कुए में पहुँचा जा सकता है, परन्तु यह पता लगाना फिर भी कठिन है कि जहां पौड़ियां कुए से मिलती हैं, वहां से इसकी गहराई नीचे को कितने गज़ रह जाती है। इस प्रकार देखने से यह कुआ बहुत बड़ा तथा भयावना लगता है और लोगों का विश्वास है कि पौड़ियों से नीचे उतर कर कुए के बीच देखने वाले व्यक्ति को लौंकड़ा वीर का कोप-भाजन बनना पड़ता है जिससे उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

लौंकड़ा वीर को अब भी बकरे की बलि दी जाती है। यह बलि महीने में कम से कम एक बार आवश्यक मानी जाती है। पुराने समय में मन्दिर के अन्दर के इस कुएं में नर-बलि की प्रथा रही है। दूरस्थ स्थान के मनुष्य को फुठला कर मन्दिर में लौंकड़ा के दर्शन के बहाने ले जाया जाता था, फिर विशेष दिन पर उसे धक्का देकर कुए के बीच गिरा दिया जाता था। कुआ पत्थरों का बना है और इसके नीचे गिर जाने पर कहीं भी निकल पाना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि बलि चढ़ाया गया मनुष्य शीघ्र ही अन्दर मर जाता होगा।

लौंकड़ा और भीमाकाली :

भीमाकाली का प्राचीन मन्दिर अब देवी की वस्तुओं के भंडार का काम देता है। मूर्ति अब नए मन्दिर में रखी गई है। भीमाकाली रामपुर बुशहर के राजाओं की राजदेवी रही है। इसका वर्णन बाणासुर की राजधानी सराहन (शोणितपुर) होने के समय से मिलता है। बाणासुर की पुत्री उषा इस देवी की पूजा करती थी। लौंकड़ा वीर को देवी का पुत्र माना जाता है। पढ़ेलिखे पण्डित इसे भैरव मानते हैं। नर-बलि की प्रथा से प्रतीत होता है कि यह प्रथा देवी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से प्रचलित नहीं थी बल्कि लौंकड़ा को एक स्वतन्त्र देवता के रूप में पूजा जाता रहा है। यह भी आश्चर्य नहीं कि इस देवता का अस्तित्व देवी की स्थापना यहां होने से पहले रहा हो और बाद में इसे देवी के साथ सम्बन्धित मान लिया गया हो।

कहा जाता है कि लौंकड़ा वीर सराहन से दूर नीचे लगभग ४ मील के

अन्तर से सतलुज नदी के किनारे से सीधे सराहन को अपने वाहन पर सवार होकर रात को घूमता है। लगभग १५–२० वर्ष पहले तक वह कई व्यक्तियों को मिलता रहा है पर अब लोगों ने इस ओर ध्यान देना बन्द कर दिया है। घोड़े के टापों की आवाज अब भी कभी-कभी लोगों को सुनाई देती है। कुछ ही वर्ष पहले ज्योरी गांव में रहने वाले एक साधु को रात को लौंकड़ा वीर मिला था। यह देवता किसी को मिल जाने पर हानि नहीं पहुंचाता परन्तु इसका साईस जो इसके वाहन के पीछे चलता है, बड़ा क्रूर है और जो भी व्यक्ति उसे दिखाई दे जाता है, वह जीवित नहीं रह सकता। ज्योरी के उस साधु को, जिसे लौंकड़ा वीर मिला था, इस देवता ने पकड़ कर रास्ते के एक ओर कर दिया था और इस प्रकार वह साईस की दृष्टि से बच गया। लौंकड़ा वीर का पहरावा सफेद कपड़े हैं और उसके घोड़े का रंग काला बताया जाता है।

नर-बलि :

विश्वास किया जाता है कि लौंकड़ा वीर के मन्दिर में जो कुआ है उसके तले के पास से एक सुरंग अन्दर ही अन्दर लगभग ३ फर्लांग नीचे बसे गांव रावीं में निकलती है। यह सुरंग उस व्यक्ति की बनाई हुई है जिसे लौंकड़ा वीर की बलि के रूप में कुए में फैंक दिया गया था। बाद में किसी प्रकार यह व्यक्ति जीवित रह गया और प्रयत्न करता हुआ इस सुरंग को बनाने में सफल हो गया। रावीं गांव तक खोद देने के पश्चात् उसकी सुरंग एक बड़ी ओखली के नीचे निकली। वहां बाहर न निकल सकने के कारण उसने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना तथा ओखली को हिलाना आरम्भ कर दिया। उस ओखली में कोई वस्तु कूटरहे लोगों ने जब यह विचित्र आवाज़ सुनी तो ओखली को हटाया। बाद में उस व्यक्ति को जीवित निकाल लिया गया।

यदि यह किंवदन्ती सत्य हो तो यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि सराहन में लौंकड़ा वीर के मन्दिर के अन्दर का कुआ बहुत अधिक गहरा है, क्योंकि सराहन की समुद्र तल से ऊँचाई लगभग आठ हजार फुट है और रावीं गांव उससे लगभग १००० फुट नीचा है। इतनी दूरी तक भूखे रह कर सुरंग बनाना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है, परन्तु लोग इस आपत्ति को मानने के लिए तैयार नहीं होते। इस मन्दिर के बाहर एक हवन-कुण्ड भी है, जिससे लौंकड़ा वीर की प्रसन्नता के लिए किए जाने वाले हवनों की प्रथा का भी पता चलता है। अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि लौंकड़ा एक बहुत बड़ा स्वतन्त्र देवता माना जाता रहा है, नहीं तो उसकी स्थापना भीमाकाली के ही मन्दिर के एक कमरे में हो सकती थी।

लांगुरा वीर को बालक की शक्ल का माना जाता है। विलासपुर व मण्डी जिलों की स्थानीय बोली के अनुसार 'लौंकड़ा' छोटे बच्चों को कहते हैं। यह नाम तब दिया जाता है जब कन्या तथा लौंकड़ों को विशेष अवसर पर भोजन कराया जाना वांछित हो। भोजन पर बुलाए गए सारे छोटे बालक 'लौंकड़े' कहे जाते हैं और छोटी लड़कियां 'कन्याएं' अथवा 'कनकाएं'।

समरकोट का मन्दिर :

नारकण्डा से लगभग ४० किलोमीटर पूर्व-दक्षिण की ओर समरकोट के स्थान पर एक बहुत बड़ा दुर्ग है। इसकी ६ मंज़िलें हैं। समरकोट सामरा वंश के लोगों की राजधानी रहा है। पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में ये लोग यहां के 'ठाकुर' थे। अब भी खनोला गांव में सामरा वंश है जिसके लोग अपने आपको इस राजवंश के साथ सम्बन्धित बताते हैं।

इस दुर्ग को अब लौंकड़ा वीर का मन्दिर कहा जाता है। इसकी सबसे निचली मंजिल में कटाथर देवता का निवास माना जाता है। कटाथर देवता कोई स्थानीय शक्ति है जिसकी पत्थर की मूर्ति बनी हुई है। इसके साथ के कमरे में हवन-कुण्ड है। इस देवता की पूजा महीने में एक बार हलवा आदि से की जाती है। लांकड़ा वीर की पूजा बकरे की बलि से की जाती है।

दूसरी मंजिल खाली है। तीसरी मंजिल में लकड़ी की भगवती की मूर्ति है। यह ३ फुट लम्बी तथा २ फुट चौड़ी है। मूर्ति लकड़ी के एक बहुत बड़े फट्टे पर बनाई गई है। यह लकड़ी इतनी चौड़ी है कि इतना अधिक बड़ा वृक्ष आजकल मिलना सम्भव नहीं है। यहां एक शिवलिंग भी है जो काले रंग का है और मूर्ति के आगे रखा रहता है। मूर्ति में ८ भुजाएं हैं। यह मूर्ति भीमाकाली की मानी जाती है। बहुत सम्भव है कि यहां भीमाकाली और लांकड़ा वीर की स्थापना रामपुर बुशहर के राजाओं ने सामरा वंश को जीतने के पश्चात् की हो।

मन्दिर की चौथी मंजिल में कुछ नहीं है। पांचवीं मंजिल में लांकुड़ा वीर है। यह सवा फुट के लगभग लम्बा लोहे का डण्डा है। डण्डे पर लाल रंग का कपड़ा लपेटा हुआ है। यह डण्डा कपड़े से ढका होने के कारण दिखाई नहीं देता है। इसे दीवार के साथ एक कोने में खड़ा किया गया है और पुजारी इसे धूप आदि वहीं देता है। पुजारी भमरोली गांव के पण्डित हैं और मन्त्रोच्चारण करके पूजा करते हैं। मन्दिर के नीचे यहां भी एक कुआ बताया जाता है, जिसमें प्राचीन समय में नरबलि दी जाती थी।

यहां भी एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि एक व्यक्ति जिसे बलि के रूप में कुएं में फैंक दिया गया था, किसी प्रकार बच कर सुरंग बना कर एक पास के खेत में

निकला था, जहां हल जोते हुए किसान ने उसे बाहर निकाला था।

कहा जाता है कि किसी सामरा राजपूत का विवाह था। उसकी अपनी कोठी (भवन) बहुत सुन्दर नहीं थी। जब विवाह के पश्चात् वधू को सामने के पहाड़ की चोटी पर से उतारा जा रहा था तो उसने सामने के सुन्दर भवनों को देखकर वज़ीर से पूछा कि क्या ये ही राजा के महल हैं? वज़ीर ने बड़ी घिनौनी हंसी हंस कर कहा—ये महल राजा के नहीं बल्कि मंत्री के हैं, राजा के भाग्य में ऐसे कहां? रानी इसी बात के अपमान के कारण जलकर भस्म हो गई। राजा को जब मन्त्री की शरारत का पता चला तो उसने इस मंदिर (जो उस समय महल रहा था) का निर्माण किया। बाद में इस स्टेट को बुशहर के राजाओं ने जीत लिया और इस दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया।

लौंकड़ा से सम्बन्धित विश्वास :

इस देवता को वरदाता नहीं माना जाता पर विश्वास है कि जो व्यक्ति सच्चे दिल से इसका ध्यान करता है उसे अपने कार्य में सफलता मिलती है। ऐसा माना जाता है कि जिस ओर को भी दिन भर में किसी भी समय इस मन्दिर की छाया पड़ती है, उस ओर रहने वाले सब मनुष्य हानि उठाते हैं। व्यापार के लिए यह छाया विशेष रूप से हानिकर है। साधारणतया कोई भी व्यक्ति मन्दिर की छाया के डर से मन्दिर के समीप दुकान आदि नहीं बनाना चाहता। यह भी विश्वास किया जाता है कि रात को कई बार मन्दिर का दरवाजा चरमराहट के साथ खुलता है और जब कभी ऐसा हो तो कोई न कोई अनिष्ट सुनने में आ जाता है।

लांकड़ा वीर को इधर भी बालक के रूप में पूजा जाता है। मन्दिर के बाहर पहले कोट-कुपड़ी मेला वर्ष में दो बार ६ वैशाख तथा १२ भादों को होता था पर अब बन्द कर दिया गया है। इसमें नाचने व गाने का ही कार्यक्रम रहता था। यहां भी यह विश्वास है कि वीर घोड़े पर सवार होकर सफेद कपड़े पहने रात को आसपास के इलाके में घूमता है लेकिन किसी को नुकसान नही पहुँचाता।

महासू जिले में हाटकोटी की देवी तथा शिरई की देवी भी प्रसिद्ध देवियाँ हैं परन्तु उनके मन्दिरों के साथ लौंकड़ा वीर के मन्दिर नहीं हैं। शेष कई स्थानों पर छोटे व बड़े देवियों के मन्दिर हैं परन्तु लौंकड़ा वीर के मन्दिर वहां न होना, इस बात की ओर संकेत करता है कि या तो देवी के किसी विशेष रूप से लांगुरा वीर का सम्बन्ध है या लाँगुरा वीर एक स्वतन्त्र देवता है।

बिलासपुर, मण्डी तथा कांगड़ा में 'लाँकुडा' :

तांत्रिकों के विश्वास के अनुसार लांकुड़ा वीर ५२ वीरों में से एक है। इन

सभी वीरों का सरदार नाहरसिंह वीर है। यहां यह उल्लेखनीय है की यह नाहर-सिंह किसी भी प्रकार से नरसिंह अवतार नहीं है। नाहरसिंह वीर पीपल के वृक्षों पर रहने वाला देवता है। इस देवता का आह्वान करने पर सभी वीर उपस्थित हो सकते हैं और भूत-प्रेतों को किसी बीमार व्यक्ति से हटाने का कार्य करते हैं। इन तांत्रिकों को पहाड़ी बोली में 'चेला' कहा जाता है। ये लोग वीरों को बुलाने के मन्त्र जानते हैं तथा किसी भूत-प्रेत को ग्रसित व्यक्ति से हटाने के लिए किसी बर्तन तथा घड़े आदि पर थाली रखकर ज़ोर-ज़ोर से बजाते हैं तथा ग्रसित व्यक्ति की आंखें बन्द कराकर उसे लौंग आदि की धूनी देते तथा बहुत ज़ोर से मन्त्र बोलना आरम्भ करते हैं। इस प्रकार ग्रसित व्यक्ति तथा किसी देवता का कृपापात्र ज़ोर-ज़ोर से हिलना आरम्भ कर देते हैं। इस क्रिया को 'खेलना' कहा जाता है। खेलते हुए व्यक्ति से घड़थाल (घड़े पर का थाल) को बजाना बन्द करके समय समय पर प्रश्न पूछे जाते हैं कि उसे क्या दिखाई देता है? यदि वह मन्त्र बोलने वालों के अनुसार नाहरसिंह वीर को आता हुआ कहे तो कहेगा—मुझे हाथ में हुक्का लिए हुए एक सफेद कपड़ों वाला भेड़-बकरियां चलाने वाला गद्दी दिखाई दे रहा है, वह इधर आ रहा है।

इस प्रकार के आह्वान-मन्त्र को बहुत ऊँचे से बोला जाता है ताकि आवाज़ खेलते हुए व्यक्तियों के कानों में पड़ जाए। इस मन्त्र को 'भारनी' कहा जाता है। इसे थाली को हिलाते हुए गाकर कहने की प्रथा है। गाना बन्द करके 'चेला' खेलने वाले से बार-बार पूछता जाता है कि उसे क्या दिखाई दे रहा है। खेलने वाला व्यक्ति आंखें बन्द करके हिल रहा होता है, यदि वह कहे कि अमुक देवता दिखाई देता है तो उस पर नज़र रखने को कहा जाता है कि वह किधर जा रहा है। अन्त में, देवता को उस स्थान तक पहुँचा दिया जाता है जहां खेलने वाला बैठा है। खेलने की इस सारी व्यवस्था को 'अखाड़ा' कहा जाता है। भारनियां सब देवताओं की अलग-अलग होती है परन्तु सब वीरों की एक ही भारनी है। इस भारनी के कुछ बोल इस प्रकार हैं :—

कुल्लूए भंगाल के चलुया मेरे मितरा, हिऊएँ भरियां धारां।	कुल्लू भंगाल से मेरा मित्र (नाहरसिंह) चला, धारें (पर्वत) बर्फ से भरे हैं।
मेरे मितरा ओ हिऊएँ भरियां धारां।	ऐ मेरे मित्र ! बर्फ से पर्वत भरे हैं।
पिट्ठी तां तेरियां किरड़ू बराजदा, लक्का बराजदा डोरा।	पीठ पर तेरी किरड़ू (किल्टा) बिराजता है। कमर में डोरा बिराजता है।
मेरे मितरा ओ लक्का बराजदा डोरा।	ऐ मेरे मित्र ! कमर में डोरा बिराज रहा है।

उपर्युक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि नाहरसिंह पहाड़ों का रहने वाला गद्दी है जो भेड़ें चराता है और बर्फ से भरे पर्वतों पर घूमता है। गद्दी लोग अपने सामान को किल्टों में भरकर पीठ के साथ लटका कर चलते हैं तथा कमर में ऊन के डोरे बांधे रखते हैं। यह वहां का पहरावा है।

तान्त्रिक विद्या क्योंकि गुप्त है इसलिए भारनी आदि सब लोग नहीं जानते। ५२ वीरों से सम्बन्धित एक आह्वान-मन्त्र इस प्रकार है :—

संगलदीप का राजा जियापाल,	सिंहलद्वीप का राजा जियापाल,
जियापाल का लहूपाल,	जियापाल (का बेटा) लहूपाल,
लहूपाल का कुसलपाल,	लहूपाल का कुसलपाल,
कुसलपाल का नमो नाहरसिंह वीर।	कुसलपाल का (नमस्कार) नाहरसिंह वीर।
हाथ में डण्डा, पवण का घोड़ा,	हाथ में डण्डा, पवन का घोड़ा, फिरे
फिरे नभ खण्डा, कौण चले ?	आकाश में, कौन चले ?
नाहरसिंह चले, गद्दी वीर चले,	नाहरसिंह चले, गद्दी वीर चले, पहाड़िया
पहाड़िया वीर चले, वरोधिया वीर	वीर चले, विरोधी वीर चले,
अगनियां वीर चले, तुङनियां वीर चले,	अग्निवीर चले, तुङनियां वीर चले,
हाजरिया वीर चले, हंकारिया वीर चले,	हाजरिया वीर चले, हंकार वाला वीर चले,
क्रोधिया वीर चले, वरोधिया वीर चले,	क्रोधी वीर चले, वीरोधी वीर चले,
लाहोला वीर चले, सिंहडू वीर चले,	लाहूल का वीर चले, सीटी देने वाला वीर चले,
दोदिया (दूधिया) वीर, चले,	दूधवाला वीर चले,
जटाधारिया वीर चले,	जटाधारी वीर चले,
कैलू (भूरे वालों वाला) वीर चले,	कैलू वीर चले,
कंकरा वीर चले, लौंकड़ा वीर चले,	कंकड़ वाला वीर चले, लौंकड़ा वीर चले,
रोणू वीर चले, भौणू वीर चले,	रोणू वीर चले, भौणू वीर चले,
जिहण्डू वीर चले, मिहण्डू वीर चले,	जिहण्डू वीर चले, मिहण्डू वीर चले,
हाजर तो हाज़िर मुहम्मद अली वीर चले।	उपस्थित होकर मुहम्मद अली वीर चले।
वीर वैताल चले,	वीर वैताल चले,
सवाया सेर का तोसा खाए,	सवा सेर का खाना (भेंट) खाए,
लगा लगाया हाके हंकारया,	लगाया तथा हंकारा हुआ,

भेज्या भिजाया जल में रोधे,	भेजा हुआ, जल में आराधना किया हुआ
स्थल में राधे, मन में राधे,	पृथ्वी पर सिद्ध किया हुआ, मन में,
मन में साधे, मन में करे विचार,	आराधित, मन में सोचा हुआ, मन में
जादू हांकने वाली रण्डी पुरुष	विचार को, जादू हांकने वाली स्त्री या
मरे, मन का संसा टले,	पुरुष मर जाए, मन का सन्देह (डर)
चले मन्त्र फुरे वाचा,	समाप्त हो, चले मन्त्र, वचन पूरा हो,
देखो बाबा नाहरसिंह तेरे इल्म	देखो बाबा नाहरसिंह। तेरे इल्म का
का तमाशा।	तमाशा (हो)।

इस मन्त्र के पहले शब्दों का पाठान्तर इस प्रकार से मिलता है—

संगलदीप का राजा जियापाल,	सिंहलद्वीप का राजा जियापाल,
जियापाल का कुसलपाल,	जियापाल का कुसलपाल,
कुसलपाल का लहूपाल,	कुसलपाल का लहूपाल,
लहूपाल का नमों नाहरसिंह वीर।	लहूपाल (का बेटा) नमस्कार! रे नाहर सिंह वीर।

इससे स्पष्ट है कि कहीं सिंहलद्वीप में राजा जियापाल के वंश से नाहरसिंह वीर का सम्बन्ध है। ऊपर वर्णित भरनी आह्वान मन्त्र) के अनुसार नाहरसिंह वीर भेड़–बकरियां चराने वाला गद्दी है और इसका स्थायी निवास कुल्लू भंगाल का क्षेत्र है। यह क्षेत्र पहाड़ में है। एक अन्य मन्त्र के अनुसार नाहरसिंह वीर को बसोहली (जम्मू में एक स्थान जहां की चित्रकला प्रसिद्ध है जिसे 'बसोहली कलम' के नाम से जाना जाता है) का रहने वाला बताया जाता है।

वीरों के जो नाम उपर्युक्त मन्त्र में दिए गए हैं, वे उनके गुणों पर आधारित लगते हैं। यह भी हो सकता है कि उनके नाम गुप्त रखे जाने का विधान हो। जब नाहरसिंह या किसी अन्य वीर को स्मरण किया जाता है तो मीठी धूनी (गरी, दाख, छुहारा, मुश्की, कपूर, चन्दन, केसर, कस्तूरी, अगर तथा तगर आदि धूप डाल कर) दी जाती है। इस प्रकार की धूनी देने से सब प्रकार के भूत-प्रेत तथा जादू भाग जाते हैं।

इन तान्त्रिकों के विश्वास के अनुसार नाहरसिंह भी १२ माने जाते हैं पर ये ५२ वीरों में ही सम्मिलित हैं। ये सभी पीपल के वृक्षों पर रहना पसन्द करते हैं। इनके कपड़े सफेद रंग के बताये जाते हैं और इनकी सहायता से भूत-प्रेत किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं कर सकते। वीर भी एक प्रकार के भूत हैं पर पूजा तथा मन्त्रों से इन्हें प्रसन्न करके सहायता के लिए बुलाया जाता है। ये उन्हीं लोगों का अनिष्ट करते हैं जो इनसे आस्था हटा लेते हैं। जो लोग इनकी पूजा

हलवा आदि से करते हैं, वे पीपल के वृक्ष को जनेऊ लपेटते तथा वहां देवता के लिए खड़ाऊ चढ़ाते हैं। छः मास में एक बार हलवा चढ़ाना आवश्यक होता है। यदि हवला ठीक समय पर न चढ़ाया जाए तो वीर के कुपित होकर 'खोट' करने का भय रहता है। खोट के कारण हुई वीमारियों में दवाई कोई लाभ नहीं पहुंचाती, केवल दोप का पूजा द्वारा निवारण ही इस खोट की दवाई है।

इन ५२ वीरों के अतिरिक्त ५ वीर वैतालों पर भी तान्त्रिक लोग विश्वास करते हैं और वीरों की भांति इन्हें भी देवता मानते हैं। ये वास्तव में गृह-देवता हैं जिनकी पूजा ५ अलग-अलग रंग के कंकड़ रखकर की जाती है। जिस घर में इनकी पूजा होती है उसमें किसी वस्तु की कमी नहीं रहती क्योंकि ये लोगों के घरों से अदृश्य रूप में दूध, मक्खन तथा अनाज आदि लाकर कृपापात्रों के घर में रख देते हैं। इनके सम्वन्ध में यह धारणा है कि ये ठीक समय से पहले ही भैंसें को दूह लेते हैं जिससे मालिकों द्वारा दूहे जाने पर वे दूध नहीं देतीं। ये वैताल पूजा करने वालों के लिए हानिकारक तभी होते हैं जब वे इनकी पूजा करना बन्द कर दें। ऐसा करने पर वह परिवार धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।

इनका एक मन्त्र वीरों के मन्त्र से मिलता है —

जियापाल के वेटे, जमेर के दोहते,	जियापाल के वेटे, जमेर के दोहते,
ससिपाल के पोते, पंज भइए वताल,	ससिपाल के पोते, पाँच भाई वैताल,
गढ़ लका के कोटाल, माता भेखड़ी के	गढ़ लंका के रक्षक, माता भेखड़ी (?) के
जाए, भैणा पुन्या के भाई, इक्की	लड़के, पुन्या बहिन के भाई, एक
वाटे आए, सहस्र वाटे जाणा,	रास्ते से आए, हज़ार रास्तों से जाएं,
कह्या मनणा हमारा,	कहना मानना हमारा,
मेरे वचन से टले, माता भेखली के	मेरे वचन से टले, (तो) माता भेखली
दूध की दुहाई,	के दूध की दुहाई,
भैणा पुन्या की सेज में पांव धरे,	बहिन पुन्या की सेज़ में पांव धरे,
मेरे वचन से टले, कुम्भी नरक में पड़े,	मेरे वचन से टले, कुम्भी नरक में पड़े,
लूणा चमारी के मट में गले,	लूणा चमारी के मटके में गलना,
मेरी सकत गुरु की भक्त,	मेरी शक्ति तथा गुरु की भक्ति
ईसर महादेव का वाचा पुरे।	(के कारण) ईश्वर महादेव का वचन
	पूरा हो।

इन वैतालों को भी नाहरसिंह के साथी माना जाता है, परन्तु यह निश्चित नहीं कि ये ५२ वीरों में गिने जाते हैं अथवा उनसे अलग। वंशावली के अनुसार भी ये नाहरसिंह के वंश से सम्बन्धित हैं।

लौंकड़ा वीर का स्वतंत्र अस्तित्व इस क्षेत्र में नहीं माना जाता। वह केवल ५२ वीरों मे से एक देवता है। बहुत सम्भव है ये ५२ वीर कभी किसी स्थान पर अथवा अनेक स्थानों पर सशरीर रहने वाले मनुष्य हों जो अपनी अलौकिक शक्तियों के कारण देवता माने जाने लगे हों।

हिमाचल प्रदेश और उसके किन्नौर के इस विवरण से एक बात तो यह विदित होती है कि लांगुर का नाम लौंकड़ा भी है।

दूसरी बात यह है कि इसके मन्दिर होते हैं, जो देवी के मन्दिर के पास होते हुए भी अलग होते हैं।

तीसरी बात है कि इसकी मूर्ति नहीं होती। एक मन्दिर में एक लौहदंड कपड़े में लिपटा हुआ रखा है, उसे ही लौंकड़ा वीर माना जाता है।

चौथी–इसके मन्दिर के आगे एक यज्ञ-कुंड होता है।

पांचवीं–इसके मन्दिर में एक कुआ होता था, जिसमें नर-बलि दी जाती थी।

छठवीं बात यह है कि यहाँ भी छोटी लड़की को कन्या या कनिका और छोटे लड़के को लौंकड़ा कहा जाता है और कनिकाएं तथा लौंकड़ाएं कन्या-लांगुरा की भांति जिमाये जाते हैं।

सातवीं–यह सिर आने वाला वीर है, और

आठवीं–सिर बुलाने के लिए वैसा ही अनुष्ठान जैसा ब्रज-राजस्थान में सांप के लिए किया जाता है। घड़े पर थाल रखकर बजाते हैं, भरनियां मायी जाती हैं आदि।

नवीं–कुछ लोग इसे भैरव ही मानते हैं।

दसवीं–यह वीर कुछ दिन पहले तक जब-तब लोगों को दीख जाता था।

विमर्श

अब इन समस्त चर्चाओं पर विचार करने से दो समस्याएं ही रहती हैं–

एक—नाम लांगुर या लांगुरा – इसकी क्या व्युत्पत्ति हो सकती है, और मूल अर्थ क्या हो सकता है?

दूसरी–'लांगुर' का यथार्थ व्यक्तित्व कैसा है?

लांगुर की व्युत्पत्ति– १. लांगूल से
२. लकुलि-लगुर से
३. लंगड़ से (लंगड़ा भैरव)।

१. लांगूल से यदि 'लंगूर' का अर्थग्रहण किया जाय या वही पूंछ वाला माना जाय तो 'लांगुर' में पूंछ का अभाव है—कहीं उसकी चर्चा नहीं, और हनुमानजी देवी के वीर नहीं।

२. लकुल-लगुर से लंगुर असम्भव नहीं। हिमाचल प्रदेश के मंदिर में लोहदंड या लकुट ही 'लांगुर' की भांति पुजा जाता है—यह प्रमाण लांगुर और लगुड=लकुट या दंड मानने के लिए और प्रेरणा देता है।

३. लांगुर को लगड़ा भैरव मानने का कोई आधार इसलिए नहीं कि लांगुर को लंगड़ा कहीं किसी गीत मे नहीं माना गया है। और कंकाली देवी के काले भैरव की रासमाला की कहानी आगे की उस कहानी की भूमिका है, जिसमें कंकाली जगदेव का सिर मांग के लाती है और अंत में जगदेव की भक्ति के कारण उसे अपने प्रिय काले भैरव से भी अधिक महत्व देती है। अतः लंगड़े भैरव वाली बात भी ठीक नहीं बैठती। 'लांगुर' को किसी स्त्री मे कुविचार से प्रवेश करते नहीं बताया गया है।

४. हिमाचल प्रदेश में 'लांगुर' को 'लोंकड़ा' भी कहते है, और डॉ० वंशीराम शर्मा ने बताया है कि वहां की भाषा में 'लोकड़ा' का अर्थ होता है छोटा बालक। नेपाली भाषा में 'लोक्रा' शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'बच्चे'।

ब्रज में 'कन्या-लांगुरा' नवदुर्गाओं में न्यौते जाते हैं—जैसे कन्या छोटी लड़की होती है, वैसे ही 'लांगुरा' भी छोटा बालक ही होता है। अतः 'लांगुर' का एक अर्थ बालक भी होना चाहिये, जैसा इसका हिमाचल-नेपाल का पर्यायवाची 'लोकड़ा या 'लोक्रा' से सिद्ध होता है।

'कन्या' गौरी या गवरी या देवी का ही नाम है। तव कन्या के साथ 'लांगुर' का क्या अर्थ होगा ? इसका अर्थ 'शिव' ही हो सकता है। तांत्रिक आवरण में कन्या=योनि और लांगुर=शिश्न या लिंग। इसका समर्थन संस्कृत कोश भी करते हैं। इनमें 'लांगूल' का अर्थ पूंछ या लंगूर ही नहीं दिया, 'शिश्न' भी दिया है।[1] लकुट या लकुलधारी लकुलीश भी शिव ही माने गये हैं; जैसा ऊपर बताया गया है।[2]

---

[1] यह बात भी द्रष्टव्य है कि देवीपूजन में अठियावरी में आटे के लाठी और छल्ले बनाकर कढ़ाई में तल कर चढ़ाये जाते हैं। ये योनि और लिंग के ही प्रतीक हैं और तांत्रिक प्रतीक हैं।

[2] डा० रांगेय राघव के शोध-प्रबंध 'गोरखनाथ और उनका युग' से यह

फुटनोट शेष आगे पृष्ठ पर।

अतः शब्दार्थ की दृष्टि से भी 'लांगुर' शिव ही है।

कन्या–लांगुर में से कन्या 'देवी' है ही–'देवी' के भक्त और पुजारी या देवी–रूप को लेकर उसके पर्याय 'कन्या' नाम को गीतों में छोड़ गये, पर 'देवी' रूप भी तो 'कन्या का ही है, इसीलिए गीत 'लांगुर' को नहीं छोड़ सके–उसके लिए लांगुरिया गाये जाने लगे।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने संतों की शब्दावली में जो चमत्कार देखा था कि योग के विशिष्टार्थक शब्द लोकवाणी के साथ तादात्म्यपूर्वक योग और लोक दोनों के संयोग का प्रतिफलित अर्थ देते हैं; वही बात यहां लांगुरिया में भी है–लांगुर छोटा बालक है, तब तो वात्सल्य उमड़ता है, और लांगुर शिव है तब पुण्य भाव से शिव उभरता दीखता है। लकुट या लाठी भी साथ है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि लांगुर और शिव में आंतरिक अभिन्नता होते हुए भी लांगुर लांगुर है और शिव शिव है। लांगुर देवी का वशवर्ती, अतः तांत्रिक भावना में देवी का अत्यन्त प्रिय होते हुए भी देवी की तुलना में हेटा। इसलिए 'लांगुर' मद पीता है –'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा' आदि। शिव इससे भिन्न अपना निजी व्यक्तित्व रखते हैं, जो तंत्र से तेजहीन नहीं हुआ।

फुटनोट पीछे पृष्ठ का—

उद्धरण इस प्रसंग में पठनीय प्रतीत होता है :

"ऊपर दिव्यौघ पंक्ति में भैरव का नाम आ चुका है। यहां भैरव और वैताल की उत्पत्ति के विषय में जान लेना उचित है। शिव के गौरी द्वारा दो पुत्र हुए। जब गौरी राजा चन्द्रशेखर की स्त्री रानी सारामती के शरीर में घुस गई। इन दो पुत्रों में एक का नाम भैरव हुआ। दूसरे का वैताल। वैताल का मुख बन्दर जैसा था। शिव का भयानक स्वरूप भैरव जब कुत्तों को वाहन बनाकर चलता है तब वह बटुक कहलाता है। दत्तात्रेय के साथ भी कुत्ते रहने की दंतकथा पुराण में मिलती है। इसके अतिरिक्त भी भैरव के अनेक अन्य स्वरूप हैं, जैसे काला भैरव, नकुलेश्वर भैरव। नकुल शब्द शिव के नकुलीश संप्रदाय से मिलता है।" (पृ० ८)—तो लकुलीश भैरव भी मान लिये गये।

6

लोकवार्ता की पगडंडियां

॰

राजस्थान एक विशाल प्रदेश है। आज केवल इतना ही सत्य नहीं माना जा सकता कि अर्बुदांचल पर यज्ञ से चार महापुरुषों का जन्म हुआ और उनसे राजपूतों के चार वर्ग खड़े हुए। उन्हीं से राजस्थान की भूमि पर प्रागैतिहासिक काल के मोहन्जोदाड़ो, हड़प्पा के काल के अवशेष प्राप्त हो चुके हैं जिनसे यहां पर प्रागैतिहासिक संस्कृति की सत्ता वैदिककाल से पूर्व से विद्यमान थी, यह सिद्ध होता है। 'चित्तौड़ से उत्तर पूर्व लगभग ८ मील दूर बड़ेच नदी पर स्थित नगरी (मध्यमिका) में एक लाख वर्ष पूर्व पत्थर के हथियारों का कारखाना था।' (श्री विजयकुमार, शोधपत्रिका, १६-१-६५)। तब से आज तक राजस्थान में मानव अपनी संस्कृति के विकास के लिए निरंतर संघर्षरत रहा है।

इसकी भौगोलिक स्थिति पर दृष्टि डालें तो विशेष भावों की सृष्टि होती है। कर्नल टाड ने एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान नामक ग्रंथ में एक स्थान पर लिखा था— इस स्थान पर सभी कुछ महान सुन्दर और प्राकृतिक था— मानो प्रकृति ने इसको अपनी प्रिय सन्तान के नित्य-विहार के निमित्त ही बनाया हो ···· ।'

ऐसे एक नहीं अनेक आकर्षक विवरण राजस्थान के विविध क्षेत्रों के सम्बन्ध में मिलते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि राजस्थान की भूमि में वे तत्व विद्यमान हैं जिनके दर्शन से मानव में आदिम मानव अथवा लोकमानस से स्फूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं। वे स्फूर्तियाँ अवचेतन के स्तरों को वेध कर चेतन में क्रीड़ा करने लगती हैं। अतः आज भी पूर्णतः सजग चेतन लोकमानस स्फूर्ति के साथ यहाँ प्रचलित मिल सकता है।

वास्तव में राजस्थान सदा इसी प्रकार की क्रान्तियों का गढ़ रहा है। हमें वैदिक युग में एक अदम्य क्रान्तिकारी ऋषि विश्वामित्र का वर्णन मिलता है। वे नयी सृष्टि रचने के लिए चल पड़े थे। कुछ नये लोक बनाये भी थे किन्तु उनकी वह सृष्टि इस भू-लोक से बहुत दूर हुई और हमारे भू-लोक पर उसका कोई प्रभाव पड़ा या नहीं हमें ज्ञात नहीं, पर राजस्थान में भी एक नई सृष्टि कर डाली। आबू अथवा अर्बुदांचल पर यज्ञ से चार पुरुष उत्पन्न किये जिन्होंने पूर्णतः नयी सृष्टि खड़ी कर दी। सूर्य और चन्द्र की संतानों के स्थान पर अब अग्नि की संतान इतिहास-निर्माण के लिए उतरी।

इस प्रक्रिया ने एक अद्भुत प्रवृत्ति को जन्म दिया। देवताओं की सृष्टि में भी एक नया अध्याय जुड़ा। भारतीय देवताओं के क्रम-विकास पर दृष्टि डालिये। पहले हमें दिव्य प्राकृतिक तत्व देवता रूप में मिलते हैं—सूर्य, चन्द्र, वरुण, इन्द्र आदि। दूसरे विकास में मिलते हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव। तीसरे में—लक्ष्मी, सती, पार्वती व सरस्वती। चौथे में—राम कृष्ण तथा पांचवें में—बुद्ध महावीर मिलते हैं। और तब छठे विकास में उस क्रान्ति के परिणाम उपलब्ध होते हैं जो राजस्थान में उद्भूत हुई अर्थात मानव ही देवता। हम यहां उन अन्तर्धाराओं का उल्लेख नहीं करना चाहते जिनके कारण यह सम्भव हुई, पर यहां स्पष्टतः अन्तिम चौथे पांचवें विकास से भी अधिक अद्भुत क्रांति दिखाई पड़ती है। चौथी क्रांति में देवत्व मानव में प्रतिष्ठित तो हुआ है पर अवतार रूप में राम-कृष्ण मानव होते हुए भी विष्णु अथवा ब्रह्मा के अवतार है स्वयं विष्णु हैं। मानव रूप में—

भगति भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल
करत चरित धरि मनुज तन।

पांचवीं स्थिति में बुद्ध और महावीर मानव से महानता की ओर अग्रसर हुए और उन्होंने देवत्व प्राप्त किया पर उच्च धार्मिक भूमि पर। किन्तु देवता का अर्थ बदल दिया राजस्थान ने— गूगाजी, पाबूजी, रामदेवजी, करनी माता, आई माता, जीण माता, बगड़ावत, सूर्यनाराणदेव, तेजाजी आदि; ये सभी लोकदेवता हमारे सामने आते हैं। इनमें से अधिकांश के पड़ (वस्त्र पट) होते हैं तथा उनके विशद महागीत होते हैं। इनके लिए जागरण किये जाते है। ये लोक-कल्याण करते हैं अतः इनके मेलों में लोग विविध कामनाओं को लेकर जाते हैं और उनके वृत्त कंठों पर ही नहीं चढ़े, लेखनी से भी प्रस्रवित हुए हैं। अन्य कलाओ ने उन्हें वरण किया है, वह चाहे चित्रकला हो या मूर्तिकला।

यद्यपि इनमें से किसी का सम्बन्ध गुरु गोरखनाथ अथवा मत्स्येन्द्रनाथ से भी बताया गया है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नाथ-सम्प्रदाय अथवा सिद्ध-परम्परा में इन्हें स्थान दिया जा सकता है पर ये गूगाजी आदि सिद्ध नहीं; वे अपनी सिद्धि के चमत्कार नहीं दिखाते। उनमें तो जन्मजात सिद्धि के दर्शन मिलते हैं। उनमें तो वस्तुतः देवत्व ही प्रतिष्ठित मिलता है। वे स्वयं देव हैं। किसी के अवतार होने के कारण नहीं। किसी तपस्या आदि से सिद्धि प्राप्त कर सिद्धि निमित्त सिद्ध रूप में देवता नहीं।

और यह देवता उनमें इस भूमि के दिव्य लोकमानस ने ही वस्तुतः प्रतिष्ठित किया है। इसी का परिणाम यह है कि राजस्थान की समस्त भूमि ही पौराणिक भूमि लगती है। यही कारण है कि कर्नल टाड को राजस्थान में पद-पद पर पाश्चात्य तथा यूनानी रोमानी पुराण की स्मृतियों को जाग्रत करने वाले स्थल तथा पुरुष[1] यहां मिले हैं। फलतः लोकमानसिकता ने यहां लोक-साहित्य ही उद्भावित नहीं किया उसे उस स्तर पर भी पाया जिस पर वह पौराणिक हो सके।

---

[1] यथा—जून छठी, वीर गांव.... जहां से मैंने इस नदी को पार किया उसके पास ही मैं एक छोटे से मन्दिर में गया जो बालपुर अर्थात बालनगर के शिव का है। पौराणिक देव प्रतिमा (लिंग) के सामने ही वाहन अथवा पीतल के बैल की प्रतिमा है, जो ऐसा प्रतीत होता है कि कभी इस सौर प्रायद्वीप में पूजन का प्रधान पात्र रहा था। निःसन्देह, इतिहास के आरम्भकाल में, जब हिरम (Hiram) और टायर के मल्लाह जरुसलम के बादशाह के जलयान वाहक थे उससे भी बहुत पहले, इस देश का लाल-समुद्र के तट, मिश्र और फिलस्तीन के देशों से यातायात संबंध रहा होगा। बाल (Boal) और पीतल का बछड़ा जिनका महीने की

इस वैशिष्य के साथ इस विशाल भूमि में वैविध्य भी अनन्त है। प्राकृतिक वैविध्य से पुष्ट मानवीय वैविध्य ने इसे लोकमानस की उर्वरता के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र बना दिया है। यही कारण है कि यहां लोकसाहित्य और लोकवार्ता का एक अखण्ड भण्डार मिलता है जो भौगोलिक विस्तार तथा ऐतिहासिक काल-क्रम में दीर्घ विगत को समेटे हुए है। इस बिखरे हुए लोकवैभव को आश्चर्य और महत्ता-पूर्वक भरपूर देखने का पहला प्रयत्न किया कर्नल टाड ने। कर्नल टाड में ऐतिहासिक दृष्टि तो है और वह चाहता है इतिहास ही लिखना, पर उसका प्रयत्न ऐसा ही है जैसे कोई पौराणिक गाथाओं को किसी काल-क्रम में बांधने का प्रयत्न कर रहा हो। फलतः उसका पूरा वृहद इतिहास 'ऐनाल्स एन्ड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान' जैसे लोकवार्ता-वृत्त का ऐतिहासिक संस्करण ही हो। सम्भवतः उसने अपने ग्रंथ को इतिहास नाम नहीं दिया। "एनाल्स" तथा "ऐण्टीक्विटीज" ठीक-ठीक इतिहास नहीं। इतिहास के साथ उसने अपनी यात्राओं का वर्णन भी लिखा। उसके समस्त कृतित्व में उसकी तीक्ष्ण दृष्टि का तो पता चलता ही है, साथ ही उसके विशद अध्ययन और अच्छी स्मरण शक्ति की भी पूरी-पूरी साक्षी मिलती है। यहां के लोकजीवन में जो कुछ भी उसे पाश्चात्य से समान सा लगा, उसका उल्लेख करने का लोभ वह संवरण नहीं कर सका और उसका उपयोग उसने बड़ी उपयोगितापूर्वक किया है। यही नहीं जगह-जगह उसने अपनी टिप्पणी भी दी है और वह प्रत्येक तत्व के सन्दर्भ को समझने के लिए भी व्यग्र रहा है। इसका एक प्रमाण लें। भीलों का वर्णन करते हुए टाड ने लिखा है:—

"जन्म तथा मौत के अवसर पर रस्म मे भाग लेने के लिए एक और महत्वपूर्ण व्यक्ति बुलाया जाता है जो कामड़ा या गायक कहलाता है। वह जोगी या वैरागी के वेश में रहता है और कबरा (कबीर) पंथ के गूढ़ सिद्धांतों में दीक्षित होना उसके लिए आवश्यक है इसीलिए वह कामड़ा जोगी या कबीर पन्थी भी कहलाता है। जन्म के अवसर पर वह अपनी स्त्री के साथ आता है और पहली देहली के पास एक घोड़े की मूर्ति रखकर तम्बूरा लिये दरवाजे पर आसन ग्रहण

पन्द्रहवीं तारीख को विशेष पूजन होता है वे भारत के बालेश्वर और नंदी, मिश्र के ऑसिरिस (Osiris) और मुविज (Muvis) के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं, जिनकी पूजा-तिथि काली अमावस है जो महीने का पन्द्रहवां दिन भी है और उस दिन सूर्य की किरणें चन्द्रमा के मुख को प्रकाशित भी नहीं करती हैं। अतः बालपुर अथवा बाल का नगर वैसा ही है जैसे सीरिया का बलबक (Balbec) अथवा हैलियापोली (Hellopolis)। पृष्ठ ५५।

करता है। फिर वह बच्चों की रक्षिका शीतला माता का, जिससे सभी वनवासी भयभीत रहते हैं, स्तुतिपरक भजन प्रारम्भ करता है और उसकी पत्नी उसके स्वर में स्वर मिलाती है तथा मजीरे से ताल देती रहती है। प्रत्येक गांव में एक बड़ा ढोल रखा रहता है जिसको ऐसे अवसरों पर विशेष रीति से बजाकर पड़ोसियों को सूचना दी जाती है और वे नवागन्तुक के माता-पिता को यथा शक्ति उपहार भेंट करते हैं। मृत्यु के अवसर पर एक ही प्रकार के शोक सूचक मायूस आघातों से ढोल पीटकर पड़ोसियों को बुलाया जाता है और उनमें से हर एक अपने हाथ में एक सेर अनाज लेकर आता है। मृतक के दरवाजे के पास ही जोगी बैठता है। घोड़े की मूर्ति और पानी से भरा मिट्टी का घड़ा उसके पास रक्खे होते हैं। प्रत्येक सम्बन्धी अथवा आगन्तुक वहां पहुंच कर चुल्लू में थोड़ा सा पानी लेता है और मृतक का नाम लेकर उस मूर्ति पर छिड़क देता है और अनाज की मात्रा जोगी को भेंट कर देता है। घोड़े की उस मूर्ति का इतना आदर क्यों होता है, यह मेरी समझ में नहीं आया। शायद वह सूर्य का चिन्ह है, जिसको सभी जातियां पूजती हैं परन्तु इससे अधिक और कुछ नहीं माना जा सकता।"

इस अवतरण में टाड की पेनी दृष्टि स्पष्ट है, साथ ही घोड़े के आदर की बात ने उसे व्यग्र किया है। यह समस्या है पर आगे वह एक संभावित समाधान यों देता है—

भीलों के ही विशाल परिवार में सैरिया (Sairees) जाति के लोगों को मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। .... राजपूतो की राज करने वाली छत्तीस जातियों मे एक सरीअस्प (Sariaspa) भी है जिसका संक्षिप्त सैरिया (Saria) है। इन लोगों के बहुत पुरानी तिथि के शिलालेख मिले हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि वे भारतवर्ष की बहुत पुरानी जातियों में से हैं। इस बात की छानबीन करना अनावश्यक है कि वह पतित जाति (सैरिया) उन्हीं लोगो की अवैध सन्तान है या क्या? अस्प अथवा अस्व जाति निश्चित रूप से इण्डो-सीथिक (Indo-Saythian) मूल की है; क्योंकि अस्प शब्द फारसी में और अश्व शब्द संस्कृत में घोड़े के लिये प्रयुक्त होता है और यदि सैरिया लोग इन्हीं की अवैध सन्तान हों तो उनके रीति-रिवाजों में घोड़े के प्रयोग का यही कारण हो सकता है।

इस अनुमान में उसके विस्तृत नाम का पता चलता है। इस प्रकार टाड ने लोकवार्ताविद की भांति राजस्थान के लोकजीवन के विवरण दिये हैं। उनके साथ उसने विश्व की पौराणिक गाथाओं से तुलना करते हुए लोकवार्ताविद् के यथार्थ का भी निर्वाह किया है। भले वह इतिहासकार का कार्य कर रहा था। यह सत्य है कि इतिहासकार के लिए लोकवार्ता उसका महत्वपूर्ण आधार तो है ही।

विश्व के सभी इतिहास प्रायः लोकवार्ता अथवा धर्मगाथाओं पर खड़े हुए हैं।

जहां तक मैं समझता हूं 'राजस्थान' नाम का प्रथम प्रकल्पक ही टाड नहीं था, वही सम्भवतः सबसे प्रथम विदेशी था जिसने राजस्थान के लोकजीवन और सामंती जीवन का लेखाजोखा लिया। फलतः टाड की राजनीतिक सेवाओं से भी अधिक महत्व का कृतित्व था उसका इतिहास और इतिहास से भी महत्वपूर्ण थी उसकी वह दृष्टि और श्रद्धा जिससे उसने राजस्थान के लोकजीवन को देखा और उसे अपनी शक्ति भर उचित परिप्रेक्ष्य में उपस्थित किया।

राजस्थान में खापरा चोर विषयक कथाएं प्रचलित हैं। यह संस्कृत का 'घट कर्पर' ही है। टाड महोदय अपनी यात्रा में खापरा चोर की गुफा तक भी पहुंचे थे। वे उसका वर्णन यों करते हैं:—

'एक कक्षावली तो पाण्डवों के नाम से है दूसरी खापरा चोर की है जो प्राचीनकाल में इस क्षेत्र का 'राबिन हुड' था परन्तु उसका पराक्रम हमारे नायक से बढ़कर था क्योंकि यही वह व्यक्ति था जो कलश में रखे हुये स्वर्ण की चोरी करने के लिये बाड़ोली मन्दिर के शिखर पर चढ़ गया था। खापरा की गुफा कितने ही भागों में विभक्त है। एक उसका (बैठने-उठने का) बड़ा कक्ष, दूसरी रसोई और तीसरी अश्वशाला इत्यादि। यह साठ फीट लम्बा और साठ फीट चौड़ा वर्गाकार है जो भारी, वर्गाकार और लगभग नौ फीट ऊंचे सोलह खम्भों पर टिका हुआ है।'

खापरा चोर की कहानी एक प्रसिद्ध विश्व-कहानी है। टाड साहब की खापरा चोर में जो रुचि थी उसको उन्होंने प्रकट कर दिया है। पांडवों की कक्षावली का वर्णन नहीं किया पर खापरा चोर की गुफा का रेखाचित्र सहित वर्णन कर दिया है और 'राबिन हुड्स' से उसे बढ़कर बताया है। इसी प्रकार 'सदयवत्स सावलिंगा' विषयक लोककथा से सम्बन्धित एक स्थान का पता लगाया। 'पालीताना' के प्रसंग में लिखते हुए वे कहते हैं:—

शहर के अन्दर की ओर एक प्राचीन स्मारक अवश्य है। यह एक सार्वजनिक बावड़ी या जलाशय है जो परंपरागत कथाओं के अनुसार सुप्रसिद्ध सदयवत्स और सावलिंगा के प्रेमीयुग्म के नाम से विख्यात है। इनकी प्रेमगाथा हिन्दुओं की अनेक प्रेमकथाओं में से एक है। इसकी सम्पुष्टी में यदि कोई शिलालेख मिल जाता तो हम इस बावड़ी के निर्माण को कम से कम अठारह शताब्दी पूर्व का अवश्य मान लेते। सदयवत्स तक्षक शालिवाहन का पुत्र था जिसने हिन्दुस्तान के सर्वोच्च सम्राट (विक्रम) को पराजित किया था और जिसका संवत्, जो ईसवीय सन् से छप्पन वर्ष पूर्व का है, अब भी उत्तरी भारत में सुप्रचलित है...... परन्तु अब हम बावड़ी की प्राचीन गाथा पर आते हैं—

"कहानी की नायिका सार्वलिगा उस समय अपने और गुणों के कारण सर्वत्र प्रशंसा की पात्र बनी हुई थी। वह जैन धर्म का पालन करती थी और उसके पिता पद्म को उस पर बहुत गर्व एवं सन्तोष था। पद्म उस समय का बहुत धनवान व्यापारी था। वह गोदावरी के तट पर शालिवाहन की राजधानी पैठान नामक नगर में रहता था। भारत के महान् जंगल मरुस्थली के सुदूर दक्षिणी भाग में स्थित पारकर (Parkur) नामक नगर के निवासी एक समानधर्मी और धनी महाजन के सार्वलिगा ने माता-पिता से उसकी मांग की थी और उसी के साथ उसकी सगाई हुई थी। उसका भावी पति अपनी मांग को लेने के लिए पैठान आया था परन्तु हन्त! सार्वलिगा का हृदय अपने वश में नहीं था। उसने शालिवाहन के पुत्र को देख लिया था। वह उसकी प्रेमिका थी और वह उसका प्रेमी। उस युवक के वियोग की अपेक्षा वह मृत्यु श्रेयस्कर समझती थी और पारकर के नखलिस्तान की अपेक्षा वनवास अच्छा मानती थी। अभी उनका प्रेम पवित्र था। जगन्माता कालिका देवी के मन्दिर में एक ही आचार्य के पास विद्याध्ययन करने वाले इन दोनों शिष्यों के हृदयों में प्रेम का पौधा अनजाने ही पनप गया था। वियोग का प्राणघातक दिन आया उससे पहले उन्हें यह भी ज्ञात नहीं हुआ था कि अदृश्य रूप में कामदेव उनकी शिक्षा का अधिष्ठाता बन चुका था जिसने एक ऐसा पाठ पढ़ा दिया था कि जिसे पढ़ लेना सुकर था परन्तु आचार्य द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण ज्ञान के बल पर भी भुला देना कठिन था। अन्त में, वह घातक सत्य सामने आ ही गया और सदयवत्स को उसके भविष्य का निर्णय कालिका माता की वेदी के सामने ही सुना दिया गया जो उन दोनों की पारस्परिक शपथों की साक्षी थी कि वे एक दूसरे के लिये ही जीवित रहेंगे।

यह निश्चय हुआ कि विवाह के दूसरे दिन प्रातःकाल ही में पारकर का महाजन अपनी नववधू को लेकर विदा होगा और मरुस्थल के मार्ग में पड़ने वाले सभी सौरदेशस्थ धार्मिक मन्दिरों के दर्शन करता हुआ जायगा। सार्वलिगा ने किसी प्रकार इस कार्यक्रम की सूचना अपने प्रेमी को पहुँचा दी और अन्तिम मिलन के लिए देवी के मन्दिर का स्थान निश्चित किया जहां उन्होंने प्रेम-प्रतिज्ञा की थी। सदयवत्स देवी के मन्दिर में जा छिपा और प्रेमपगी प्रेमिका भी वहीं जा पहुंची परन्तु देवी को एक स्त्री की यह कर्त्तव्यच्युति सहन नहीं हुई क्योंकि वह अन्य पुरुष की परिणीता हो चुकी थी, अतः उसने राजकुमार को गहरी निद्रा में मग्न करके उस योजना को विफल कर दिया, ऐसी गहरी निद्रा में कि सार्वलिगा की सभी प्रणय चेष्टाएं उसे जगाने में असफल रहीं। समय के पर लग गये थे और यह डर सर पर चढ़ा था कि लोग उसे ढूंढ लेंगे, साथ ही इस बात का भी दुःख था कि वह अपने प्रेमी को वचन-पूर्ति की सूचना दिये बिना सदा के लिए छोड़ दे। अन्त में,

उसे एक ही तरकीब सूझ पड़ी · पान के निचुड़े हुए रस (पीक) से उसने अपने प्रेमी की हथेली पर कुछ लिखा और विदा हो गयी। स्पष्ट है कि जब राजकुमार की मोह-निद्रा भंग हुई तो वह बहुत निराश हुआ। उसने भिक्षुक का वेश बनाया। हाथ में दण्ड लिया। कन्धे पर मृगछाला डाली और प्रेमिका की खोज में पठान का राजमहल छोड़ दिया। पालीताना पहुंच कर वह शहर की पुरानी बावड़ी में मुंह हाथ धोने लगा। जब वह स्नान करने लगा तो उसे एक पुर्जा दिखाई दिया जिस पर लिखा था—'कालिका के मन्दिर में ली हुई शपथ याद रखना।' इन अक्षरों का अर्थ समझाने के लिये किसी व्याख्याकार की आवश्यकता न थी। इन्हें प्रेम की आंखें ही पढ़ सकती थीं, और कोई नहीं। शालिवाहन के युवराज का हृदय खुशी से भर गया। उसने तुरन्त ही प्रसन्नता से अपना डण्डा उठाया और आशा और उत्साह के साथ मरुस्थल की ओर पुनः प्रस्थान कर दिया।"

टाड इतनी कहानी कह कर ही रुक गया, किन्तु इतने से उसने यह तो प्रकट कर ही दिया कि वह लोककथा तथा लोकवार्ता को भी प्रेम करता है। सदयवत्स सावलिंगा सदावृक्ष सोरगा या सोरंगा सदावृक्ष या सोरंगा भी एक अत्यन्त प्रचलित लोककथा है। यह राजस्थान में भी बहुत अधिक प्रचलित है। ग्रन्थ रूप में भी इस कथा को लिखा गया है और इस कथा पर लिखे एक नहीं दर्जनों ग्रन्थ इसकी लोकप्रियता सिद्ध करते हैं। अगरचन्द नाहटा ने एक लम्बी सूची ऐसे ग्रन्थों की प्रकाशित भी कराई थी।

ऊपर के उदाहरण तो टाड के यात्रा विवरणों से लिये गये हैं पर उनका इतिहास तो आदि से अन्त तक लोकवार्ता की सामग्री से परिपूर्ण है। राजस्थान की लोकवार्ता को पाश्चात्य क्षेत्र के लिए सुलभ बताने का कार्य संभवतः सर्वप्रथम टाड के ग्रन्थों से ही हुआ। इसका प्रमाण यह है कि विश्वविख्यात ग्रन्थ "गोल्डन बाउ" में जेम्स फ्रेजर ने केवल एक बार राजपूताने का उल्लेख किया है और उसका आधार है टाड का इतिहास। फ्रेजर ने बताया है कि "एडोनिस के बाग" राजपूताने में भी हैं। इसमें फ्रेजर ने बताया है कि—

"Garden of Adonis are cultivated also by the Hindus with the intention apparantly of ensuring the fertility both of earth and of mankind. Thus at Udaipur in Rajputana a festival is held in honour of Gauri and Isani, the godess of abundance. The Isis of Egypt, the Ceres of Greece, like the Rajputana Saturnalia, which it follows, it belongs to the vernal equinox, when nature in these regions proximates to the Tropic, is in the full expanse

of her charms, and the matronly Gauri casts her golden mantle over the verdant Vassanti personification of Spring. Then the fruits exhibit their promise to the eye; the Kohil fills the ear with melody. The air is impregnated with aroma and the Crimson poppy contrasts with the spikes of golden grain to form a wreath for the beneficient Gauri Gauri is one of the names of Isa or Parvati, wife of the greatest God Mahadeva or Ishwara, who is conjoined with her in these rites which almost exclusively appertain to the woman. The meaning of Gauri is Yellow, emblamatic of the ripened harvest, when the votaries of the Goddess adore her effigies, which are those of a matron the colour of ripe corn The rites begin when the Sun enters the Sign of the Ram, the opening of the Hindu year. An image of the Goddess Gauri is made of earth and the smaller one of her husband Ishwara, and the two are placed together. A small trench is next dug, barley is sown in it and the ground watered and heated artificially till the grain sprouts. When the woman dance round it hand, invoking the blessing of Gauri on their husbands. After that young corn is taken up and distributed by woman to the man, who wear it in their turbans. Every wealthy family or atleast every sub-divis on of the city, has its own image. These and other rites known only to the initiated occupy several days, and are performed within doors. Then the images of the goddess and husband are decorated and borne in procession to a beautiful lake whose deep blue waters mirrors the cloudless Indian sky. marble palaces and orange groves. Here the women, their hair decked with roses and jassamine, carry the image of Gauri down a marble stair case to the water's edge, and dance round it singing hymns and love songs. No men take part in the ceremony even the image of Ishwara, the husband God, attracts little attention.

London 1829, pp. 570—572.

जैम्स फ्रेजर का गोल्डेन वाउ लोकवार्ता को एक व्यवस्थित सूत्र में बांधता है। विश्वभर की लोकवार्ता विषयक सामग्री एकत्र करके उन्होंने टोने और धर्म के

पारस्परिक सम्बन्ध को ही नहीं बताया, वरन् उन्होंने टोने को धर्म से पूर्वगामी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। फ्रेजर ने भारत सम्बन्धी कितने ही ग्रन्थों का उपयोग अपने इस लोकवार्त्ता सागर में किया है पर राजस्थान विषयक एक ही लोकवार्त्ता का उल्लेख है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। स्पष्ट है कि राजस्थानी लोकवार्त्ता का संग्रह किसी अन्य ऐसे ग्रन्थ में नहीं था जिसका उपयोग फ्रेजर Golden Bough में कर सकते।

टाड का इतिहास सन् १८२९ ई० में प्रकाशित हो चुका था। उनके बाद हमें क्षेत्रीय पद्धति पर लोकवार्त्ता के संग्रह का प्रयत्न गजेटियरों के रूप में मिलता है। टाड के समय से ही भारतीय विद्या (Indology) में देश-विदेशों के विद्वानों की रुचि बढ़ती जा रही थी। इसी निमित्त एशियाटिक सोसायटियों की स्थापना हुई। इण्डियन एन्टीक्वेरी का प्रकाशन हो उठा था। उन्नीसवीं सदी के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ चरण में स्थान-स्थान पर जो अंग्रेज अधिकारी थे उनमें से बहुत से उदार दृष्टिवादी थे। उन्होंने विविध क्षेत्रों में शासन के साथ वहां से बहुत सी ज्ञानवर्द्धक सामग्री उठायी और गंभीर पुरातात्विक अध्ययन के साथ उसे प्रकाशित कराया। इस सामग्री में जब-जब राजस्थानी क्षेत्रों की सामग्री भी उभर कर आती थी। उदाहरणार्थ १८७३ की 'इण्डियन ऐन्टीक्वेरी' में जनवरी के अंक में "पृथ्वीराज रासउ" के "कान्हपहो" प्रस्ताव का अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। जुलाई के अंक में कर्नल टाड के राजस्थान के इतिहास के दूसरे संस्करण (१८७५) का परिचय दिया गया है। सितम्बर के अंक मे 'जोह्न रोलेंड' ने माउंट आबू पर ज्ञानवर्द्धक लेख लिखा है। अक्टूबर के अंक में ग्राउज ने चंदवरदाई के पृथ्वीराज रासउ में हर्ष तथा कालिदास के उल्लेख से उनके काल निर्णय के सम्बन्ध में चर्चा की है। 'जरनल ऑफ द ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' तथा 'ऐशियाटिक स्टडीज' में भी ऐसे ही उल्लेख मिलते हैं।

इन सब स्फुट उल्लेखों से आगे है गजेटियरों का कार्य। इन गजेटियरों में राजस्थान के विविध राज्यों का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। ये सभी अंग्रेजी में लिखे गये और किसी न किसी बड़े अंग्रेज अधिकारी द्वारा संपादित किये गये।

सन् १८७५ में जे. डी. लाटूश (J. D. Latouche) द्वारा अजमेर मेरवाड़ा का गजेटियर प्रस्तुत किया गया। ये बंगाल सिविल सर्विस के थे। इन्होंने लोकवार्ताओं का भरपूर उपयोग किया। उन पर अपने विचार भी जहां तहां दिये। अजमेर के सम्बन्ध में पहले तो उन्होंने 'अज' की पुराण गाथा ही दे दी है। स्थानीय वीर या पीर तेजाजी का वर्णन इस गजेटियर में दिया गया है।

इसमें लिखा है कि इस प्रदेश में माता तथा महादेव की पूजा होती है पर मेरवाड़ा, अजमेर तथा किशनगढ़ के जाटों में मुख्य पूजा तेजाजी की होती है।

तेजाजी नागौर के निकट करनाल के थे और ८६० वर्ष पूर्व हुए थे। तेजाजी गाय चराने जाया करते थे। उनकी गायों में से एक गाय अलग होकर कहीं चली जाती थी और फिर लौट आया करती थी। तेजाजी एक दिन उसके पीछे हो लिये। देखा कि गाय एक बिल के पास गयी। बिल में से सांप निकला और उसने गाय का दूध पी लिया। तब तेजाजी ने सांप से वायदा किया कि वह उसे प्रतिदिन दूध पहुंचा दिया करेगा। किन्तु एक दिन ससुराल जाने के कारण सांप को दूध देना तेजाजी भूल गये तब सांप ने कहा कि मैं तुझे काटूंगा। उसे ससुराल में गायों की रक्षा के लिए जाना था। तेजाजी ने कहा कि ऐसा ही है तो आप अवश्य काट लीजियेगा किन्तु मैं ससुराल से होकर लौट जाऊँ। सांप ने स्वीकार कर लिया। ससुराल में गायों की रक्षा करते हुए उनका समस्त शरीर घायल हो गया। जब वे सांप के पास आये तो शरीर में घाव होने के कारण सांप के डसने योग्य कोई स्थान ही नहीं था तब तेजाजी ने अपनी जीभ बाहर निकाल दी और सांप ने उसे जीभ में डस लिया।

किशनगढ़ के पास सरसर (Sarsar) में तेजाजी का मन्दिर है। तेजाजी की मूर्ति घोड़े पर सवार है। हाथ में सुंती तलवार है और सांप जीभ में डस रहा है। इसकी पूजा करने के लिए जुलाई में मेला भरता है। जाटों का विश्वास है कि तेजाजी का नाम लेकर सीधे पैर में डोरा बांध देने से सर्प-विष का प्रभाव नहीं रहता है।

इस गजेटियर के इस वर्णन से यह बात स्पष्ट होती है कि माता (पार्वती) तथा महादेव जी से भी अधिक पूजा तेजाजी की होती है। इसमें दो प्रधान अभिप्राय: स्पष्ट हैं। एक गाय-रक्षा का तथा दूसरा गाय का सर्प-बिल के पास दूध छोड़ना या सर्प का दूध पीना।

१८७८ में मेजर पी. डब्लू पोलेट द्वारा संपादित अलवर का गजेटियर प्रकाशित हुआ। इसमें अलवर की निकुम्पा जाति का विवरण है। इस जाति का निकास आभानेर नगर से माना जाता है। यह नगर अलवर के उत्तर में ६ मील दूर देहरा घाटी में स्थित है। वे लोग यहां से डाडीकर (Dadikar) में जा बसे। वहीं चंदराई निकुम्पा ने राजा की पदवी धारण की। इस आभानेर के राजा चन्द का वर्णन ही 'राजा चन्द की बात' में मिलता है। राजा चन्द की बात की कहानी इतनी अधिक प्रचलित थी कि इसे हम पंजाब, उत्तरप्रदेश (ब्रज), बंगाल, राजस्थान तथा गुजरात तक में पाते हैं। बंगाल में इसे एक लोकधर्म ने अपनी धर्मगाथा बना लिया है (एक सामान्य संशोधन करके)। जैन लेखकों के लिए भी यह कहानी अत्यन्त प्रिय रही। कितनी ही रचनाएँ इस कहानी के आधार पर

हैं पर स्थान आभानेरी न होकर अन्य है। आभानेरी का इतिहास बताता है कि उसका एक राजा चन्द था।

इसी गजेटियर में लालदास, चरनदास तथा चूहड़सिंघ की चमत्कारिक कथाओं का भी उल्लेख है। इन कथाओं का साम्य चमत्कारी सिद्धों तथा भक्तों की कथाओं से है ही। इसमें तहला Tabla) परगना के एक तालाब (तलाओं) के संबंध में यह लोकवार्ता दी गई है।

इस तालाब का स्वामी बड़ गूजर था। एक समय इस तालाब का पानी खून-सा लाल हो गया था तब पंडितों ने बताया कि वह जब अपने पुत्र और पुत्र-वधू को इस तालाब में दफना देगा तभी इसका जल हरा हो सकेगा। बड़ गूजर ने अपने पुत्र तथा बहू को उसमें दफना दिया और उनकी एक समाधि वहां खड़ी कर दी।

वास्तव में यह वरुणदेव के लिए मानव बलि का ही एक दृष्टान्त है। ऐसे एक नहीं जहां तहां अनेकों तालाब हैं वहां-वहां सामान्य रूप में इस बलि का उपयोग तालाब में पानी लाने के लिए किया जाता रहा है। खुदाई पूरी हो जाने पर भी तालाब में पानी नहीं भरता तो बलि दी जाती है। बलि के तीन रूप मिलते हैं– (१ प्रथम उत्पन्न शिशु या बालक का। तालाब-निर्माता के जितने पुत्र हैं उनमें सबसे बड़ा अर्थात् सबसे प्रथम उत्पन्न हुए का। (२) तालाब निर्माता के सबसे बड़े पुत्र तथा उसकी बहू दोनों का (३) किसी भी व्यक्ति का। जैसे जयसिंह सिद्धराज की माँ मीनलदेवी के खुदवाये तालाब में एक चमार ने बलि दी तब जल से वह पूर्ण हुआ। यहाँ यह अन्तर है कि बलि रक्तवर्ण जल को शुद्ध करने के लिये दी गयी है। इसी प्रकार राजस्थान के विविध क्षेत्रों के गजेटियरों में १९वीं शती के प्रायः अन्तिम चरण में राजस्थानी जनजीवन के चित्र प्रस्तुत किये गये जिनमें लोकवार्ता और लोकसाहित्य विषयक पर्याप्त सूचनाएं दी गयीं।

उनसे अलग हमें इसी काल में ऐसे ग्रंथ मिलते हैं जैसे ममोयर्स ऑन दी हिस्ट्री, फोकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑव द रेसेज ऑव द नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज ऑव इण्डिया। इसे संपादित किया था सर हैनरी एम. ईलियट के सी. बी. ने तथा संशोधित किया जोह्न बीम्स ने। यह १८६९ में पूरा हो चुका था, क्योंकि संपादकीय भूमिका में इसका उल्लेख है। इसमें यद्यपि वर्तमान उत्तरप्रदेश की लोकवार्ता आदि का संग्रह है फिर भी राजस्थान से संबंधित उन बातों का उल्लेख हुआ है जो उत्तरप्रदेश में भी व्याप्त हो गई थीं। जैसे एक उल्लेख है 'गोगा पीर' का।

यह निर्विवाद है कि गोगाजी राजस्थान के थे। टाड ने जिन ४५ पुत्रों वाले गोगा का उल्लेख किया है, संभवतः वह घोघा बापा है जिन्हें क. मा. मुन्शी

ने जय सोमनाथ में स्थान दिया है। सूर्यमल्ल के 'वंश भास्कर' में गोगाजी का जो वर्णन है वह सबसे निराला है। जो भी हो; राजस्थान के गुरु गोगा की वार्ता पर बहुत चर्चा हुई है।

१८५३ में कनिंघम ने अपने एक ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑफ द सिख्स' में पृष्ठ ११ की एक टिप्पणी में बताया है कि पंजाब के निचले हिमालयों में गूगा अथवा गोगा के बहुत से मन्दिर हैं और मैदानों का दरिद्रवर्ग भी ऐसे ही प्राचीन वीर की स्मृति के प्रति श्रद्धा रखता है। उसके जन्म अथवा उद्भव के कितने ही विवरण दिये गये हैं। एक में उसे गजनी का प्रमुख बताया गया है और अपने भाई अर्जुन और सुरजन से लड़ाई करने वाला कहा गया है। दोनों भाइयों ने उसे मार डाला पर अचानक एक चट्टान फटी और उसमें से गूगा शस्त्रास्त्र सज्जित घोड़े पर सवार प्रकट हुआ। एक अन्य विवरण में उसे रजवाड़ा (Rajwara) जंगल के दर्द दरेहरा का स्वामी कहा गया है। कर्नल टाड ने भी अपने इतिहास के प्रथम भाग में अपने निजी विवरण में मंदोर की मूर्तियों का वर्णन देते हुए पाबूजी, रामदेव राठौर, हरबा साँखला का उल्लेख करने के बाद गोगा चौहान का परिचय दिया है जो इस प्रकार है—

Goga, the Chohan, who with his forty seven sons fell deffending passage of the Satledge on Mahmud's invasion. Mewoh Mangulia brings up the rear a favour chieftain of the Gahlots race. (Page 574).

१९०९ में प्रकाशित राजपूताना गजेटीयर खंड ३ अ (Vol. III a) "The Western Rajputana State Residency and Bikaner Agency Text"— में मेजर के. डी. आर्सकाइन आई. ए. सी आई. ई. ने इसी स्थल का विवरण यों दिया है :-"स्वयं मंदोर में मोतीसिंह के बाग के पास कुछ चैत्य हैं जो मारवाड़ के अतीत गौरव की गाथा कहते हैं। इसके समीप ही एक और महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसे तेतीस करोड़ देवताओं का स्थान कहा जाता है। इसमें १६ विशाल प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओं में गुसांईजी, मल्लिनाथजी, पाबूजी, रामदेवजी, (तोमर थे), हरबूजी, जाम्भाजी, मेहाजी—ये सात, तब गोगाजी। गोगाजी के संबंध में कहा गया है कि ये चौहान राजपूत थे, मुसलमान हो गये। हाँसी से सतलज तक इनका राज्य था। फीरोजशाह द्वितीय के साथ ये युद्ध करते हुए मारे गये, १३वीं शती के अन्त में।"

क्रोगल ने "इंडियन सर्पेंट लोर" (Indian Serpent lore) में बताया है कि गूगा पर बहुत लिखा जा चुका है। इस संबंध में उन्होंने एक ग्रंथ सूची दी

है, जिसमें गूगा का उल्लेख है। वह सूची यह है—

1. A. Cunnigham : A. S. R Vols. XIV P. 79 ft.
2. " " " XVII P. 159.
3. Ind Ant Vols. XI-P. 53 f.
4. " " XXIV pp. 51. ft.
5. D Ibbetson : Karnal Settlement Report, P. 379.
6. W. Crooke, Popular Religion Vol. I pp., 211 ft.
7. Kangara Distt-Gazetteer P. 102 f.
8. H. A. Rose : Punjabi Glossary Vol. I pp. 171 ft.
9. Mandi State Gazetteer pp. 144 ft.
10. Chamba State Gazetteer pp. 183 f.

इस सूची से एक बात तो स्पष्ट है कि गोगाजी का पंजाब में प्रचलित रूप ही विशेष प्रकट हुआ है। गोगाजी के ये सभी उल्लेख ऐतिहासिक शोध के संदर्भ में रहे। मैं समझता हूं गोगाजी की लोकगाथा का प्रथम संकलन *Capt. R. C. Temple* ने *'The Legends of the Panjab'* में दिया। यह संकलन मई १८८४ में प्रकाशित हुआ था। इसमें एक लोकगाथा प्रथम खंड में छठी संख्या पर दी है। वास्तव में यह एक स्वांग है जो जालंधर में खेला जाता था। वहीं से कै. टेम्पल ने इसे लिया है। यह पंजाब क्षेत्र से लिया गया स्वांग है इसीलिए उन्होंने इसे पंजाबी आख्यानों (*Legends)* में स्थान दिया, पर है यह हिन्दी में। एक दूसरे खंड में संख्या– ५२ *(LII)* पर उन्होंने गुरु गोगा का गीत नाम से एक और गीत दिया है। यह भी राजस्थान से नहीं लिया गया।

कनिंघम ने 'आर्क्यालाजिकल सर्वे आव इंडिया' खंड १७ पृष्ठ १३९ पर *Demon Worship in Northern India* शीर्षक निबंध में वीर पूजा अथवा प्रेत पूजा पर विस्तार से विचार करते हुए बताया है कि वीर पूजा स्थानीय प्रेतों की ही होती है और आसपास एक दो गांवों तक सीमित रहती है पर सभी प्रांतों में तीन प्रेतों की पूजा स्थानीय सीमाओं को लांघ गयी है और काफी विस्तृत प्रदेश में ये वीर पूजे जाते हैं। ये वीर हैं : गूगा चौहान, हरशू बाबा तथा हरदौर लाला। इनमें से हरदौर लाला ओड़छा के हैं। शेष दोनों राजस्थान के।

टेम्पल ने राजस्थान के विषयों से संबंधित कुछ अन्य गाथाओं को भी पंजाब से लेकर अपने इसी ग्रंथ में स्थान दिया था। ये हैं:—

1. Ballad of Chuhar Singh
2. The Story of Raja Jagdeva

3. The legend of Raja Dhol
4. Raja Rattan Sain of Chittour
5. Amarsingh of Garh Merta
6. Raja Pirthi Singh of Jodhpur

स्पष्ट है कि राजस्थान के ये सभी विषय पंजाब में प्रचलित थे और उन्हें टेम्पल ने उन्नीसवीं शती के चतुर्थ चरण में एकत्र कर अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित कराया था। इससे यह सिद्ध होता है कि राजस्थानी वीरगाथाएं राजस्थान से बाहर भी अत्यन्त लोकप्रिय थीं।

जान ग्रीअरसन तथा सर ओरील स्टीन ने 'Hatim's Songs and Stories' नामक पुस्तक में कश्मीर की कुछ कहानियां तथा गीतों का संग्रह दिया है। इसी में कहानियों पर लोकवार्ता की टिप्पणियां डब्ल्यू क्रुक ने दी है। इसमें छठी कहानी है 'यूसुफ तथा जुलेखा' की। इसमे अन्त में उल्लेख आता है कि एक राजा के बुभुक्षा से मर जाने पर उसके स्थान पर यूसुफ को राज्य मिला, क्योंकि उसका निर्वाचन अपेक्षित दो विधियों से हुआ।

एक विधि थी कि हाथी उसके सामने नत मस्तक हो तथा दूसरी में बाज उसके अंगूठे की अंगूठी पर उडकर बैठे।

इस कहानी के इसी तत्व पर समानान्तर बातों का उल्लेख करते हुए डा. हार्टलेण्ड की साक्षी है कि 'मैंने उदाहरण देकर भी दिखाया है कि कितने ही स्थानों पर राजाओं का निर्वाचन पशुओं के द्वारा दिये गये शकुनों से होता है। यथा—बाप्पा, मेवाड़ के गुहिलोतों का नायक, सिंहासन का उत्तराधिकारी एक हाथी द्वारा चुना गया था जिसने उसके गले में विजय माल डाली थी। एक बार नहीं वरन् तीन बार।

'वह बालक, जिसकी रक्षा जंगल में सोते समय धूप मे कोई सांप करते हुए मिले तो इस शकुन से उससे सिंहासन का उत्तराधिकारी चुनने का रिवाज राजस्थान में ··· मिलता है।'

इन विद्वानों के बाद हमारा ध्यान टैसीटरी की ओर जाता है। टाड को जिस प्रकार राजस्थान ने विमोहित किया था, उसी प्रकार टैसीटरी को भी राजस्थान ने मोह लिया था। टाड के गुरु भी जैन थे और टैसीटरी के भी गुरु जैन थे। टैसीटरी की दृष्टि भी पुरातात्विक थी। वे भी प्राचीन इतिहास तथा प्राचीन साहित्य के उद्धार में संलग्न हुए। मैं समझता हूं, टैसीटरी ही वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने उस लेख को खोज निकाला था जिससे ददरेवा में गोमा के वंश का राज्य था, यह सिद्ध होता है। कर्नल टाड ने समस्त राजस्थान की लोकवार्ता

विषयक वृहद सामग्री जिस रूप में दी, उस रूप में टैसीटरी नहीं दे सके। टैसीटरी के बाद छुटपुट प्रयत्न जब तब किसी विदेशी द्वारा राजस्थानी लोकवार्ता की चर्चा के हुए।

किन्तु उनके बाद हमारा ध्यान कुमारी वोदवील आकर्षित करती हैं। यह फ्रेंच महिला है।[1] उन्होंने लिखा है कि ढोला मारू एक आख्यान (लीजेंड) है जो प्राचीन पवाड़े (Ballad) के रूप में मिलता है। इसके उत्तरी भारत में कितने ही पाठ मिलते हैं। प्राचीनतम रूप में, यह ढोला मारू रा दूहा के रूप में दोहों का संग्रह भर है।

यह ढोला मारू रा दूहा उस प्राचीन मारवाड़ी भाषा में है जो समस्त उत्तरी भारत की भाषाओं में साहित्यिक स्तर पाने में सबसे पहली भाषा थी। इन दूहों से, एक प्रकार से, उत्तर की देश भाषाओं का प्रभात आरम्भ होता है। सम्भवतः प्राचीन राजस्थानी के ये प्राचीनतम प्रमाण हैं। ये उस प्राचीनतम राजस्थानी के उदाहरण हैं, उत्तर भारत के साहित्यिक इतिहास के लिए जिसके महत्व को टैसीटरी तथा ग्रिअर्सन बता चुके हैं। इन दोनों ने इसे उस उपेक्षा से बचाने के प्रयत्न किये जिसकी यह भाषा १६ वीं शती के बाद शिकार हो गई थी।

आधुनिक भाषा में दूहा ढोला मारू का जिसे हजारीप्रसाद द्विवेदी 'सबसे प्रथम काव्य' कहते हैं, मूलतः रूप और आत्मा में लोकरचना है। इस आख्यान में शौर्य (heroic) तत्व नहीं, यह तो शुद्ध प्रेमगाथा है जिसमें गीति तत्व (lyric) अधिक प्रमुख है। इस कृति का अपना एक अनोखा स्थान मध्ययुगीन भारत के साहित्यिक इतिहास में है, क्योंकि यह उस प्राचीन लोक-प्रचलित साहित्य का एक महान नमूना है जिसके सम्बन्ध में हमें बहुत कम ज्ञान है। ढोला मारू से जिसकी कुछ भी तुलना की जा सके, ऐसा कोई काव्य नहीं मिलता, सिवाय अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासउ' के या बीसलदेव रास के जो १२ वीं १३ वीं शती की कृति मानी गयी है। लेखिका ने आगे कुछ पाठ-संस्करणों (प्रति c) की चर्चा करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि इसका मूल रूप दोहों के आधार पर कही जाने वाली बात के जैसा ही होगा।

---

[1] भारतीय विद्या के देशी भाषा विषयक पक्ष में इनकी बहुत रुचि है। तुलसी का इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है। अन्य हिन्दी के कवियों पर भी इन्होंने लेखनी चलाई है, किन्तु 'ढोला मारू रा दूहा' पर इन्होंने विशेष अध्ययन तथा पाठ-संशोधन पूर्वक उसके अर्थों पर भी विचार किया है। उनका यह अध्ययन फ्रेंच (फ्रांसीसी भाषा) में है।

यह भी प्रति बीकानेर से मिली। इसका नाम है 'ढोला मारू री बात'। इसमें बात के बाद दोहा मिलता है। दोहों मे बहुत से प्राचीन हैं और ये अन्य प्रतियों में भी मिलते हैं किन्तु गद्य या बात का अंश अपेक्षाकृत आधुनिक है। यद्यपि प्रति नयीसी लगती है पर इसमें जो रूप सुरक्षित है वह सम्भवतः बहुत पुराना है। यथार्थ में संभवतः ढोला मारू, राजकवि कुशल लाभ के द्वारा साहित्यिक रूप में ढाला गया। उससे पूर्व शतशः वर्ष कंठस्थ ही रहा और गाया तथा पढ़ा जाता रहा। इस उपक्रम में गद्य आख्यान गेय भावों को परस्पर बांधने तथा व्याख्या करने के काम ने आता था और यही लोकाभिव्यक्ति की प्रणाली होती है। केवल दोहे कठस्थ रखे जाते थे। आख्यान को बीच-बीच में जोड़ने की विधि अथवा शैली गायक की रुचि पर छोड़ दी जाती थी।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ढोला मारू पहले कभी क्रमबद्ध तथा सुसम्बद्ध कहानी के रूप में नहीं रहा तथा १५ वीं शती में कुशललाभ ने ढोला मारू के आख्यान को लिखने में चौपई से टूटी की पूर्ति कर इस आख्यान को एक व्यवस्थित रूप दिया।

डा वोदवील ने ढोला मारू रा दूहा के पाठ का सपादन भी साथ में दिया है और उनका अर्थ भी। साथ ही दो मुख्य सस्करण की कथाओं के पारस्परिक साम्य-वैषम्यों पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने ढोला मारू को लोकगीत ही स्वीकार किया है और उसे संपादित करने में साहित्यिक रूपों का ही उपयोग किया है। फलतः उनका यह प्रयत्न न तो टेम्पल के जैसा है न किसी अन्य जैसा। अपने रूप का अनोखा है। पाठ तो देवनागरी में भी दिया है पर शेष सब फ्रेंच भाषा में है।

राजस्थान की एक कहानी है मटकाचर। मटकाचर की व्युत्पत्ति मटकका घर से मानी गई है। पर यह व्युत्पत्ति 'मटकाघर' भी हो सकता है। मटका— घड़ा। चर–दूत, सेवक, चलने वाला मटका। मटकाचर का अर्थ है बड़ा काचर। एक जाट के कोई सन्तान नहीं थी। वह खेत पर गया तो जाटनी को चिन्ता हुई कि छाक कौन ले जायगा। तभी एक बड़ा काचर अर्थात मटकाचर लुढ़कता हुआ जाटिनी के पास आया और कहा कि मैं ले जाऊंगा। वह खाना ले गया और बैलों को पानी पिलाने ले गया। वह चिड़ियां, कौवों आदि की सेना को अपने कान में रख लेता है और राजा के यहां जाकर चींटियों आदि की सेनाओं से राजा को परास्त कर अपने उन बैलों को छुड़ा लाता है जो उसके नौकरों ने लाकर वन्दी कर दिये थे।

व्रज की इस कथा में काचर न होकर कद्दू है अथवा घड़ा बेटा है। किन्तु ऐसे ही घड़े बेटे की एक कहानी टेवा (Tewa) कहानियों में मिलती है। पुएब्लो

युवती अपनी मां की सहायता करने के लिए मिट्टी गोड़ रही थी, बर्तन बनाने थे। इसी बीच गारे का एक थपका उसके पैर में लगा। पर वह उसके बाद उसे भूल गयी। कुछ दिन बाद उसे प्रतीत हुआ कि उसके पेट में कोई डोल रहा है। तब भी उसे ध्यान नहीं था कि उसके बच्चा होने वाला है अतः मां को भी कुछ नहीं बताया। उसके बच्चा हुआ। देखा तो वह एक घड़ा था। वह कुछ बड़ा हुआ तो चाचा से कहा कि मैं घूमने चला करूंगा। चाचा के साथ वह घूमने जाने लगा। लड़कों को उससे प्रेम हो गया फिर वह खरगोशों की शिकार के लिए जाने लगा। एक खरगोश का पीछा करते-करते वह एक चट्टान से जा टकराया, घड़ा फट गया और लड़का बाहर निकल आया।

कहां राजस्थान-ब्रज और कहां अमेरिका की टेवा कहानियां। राजस्थान का मटकाचर यहां विद्यमान है। भारत में तो पुराण-गाथा में भी अगस्त्य ऋषि कुम्भज थे। मटकाचर की कहानी का सम्बन्ध उनसे भी है जिनके नायक अर्द्ध विकसित या अविकसित होते हुए भी अनोखे कार्य कर डालते हैं। मेरिया लीच ने स्टैंडर्ड डिक्शनरी आव फोकटेल्स में हाफ चिक शीर्षक से ऐसी ही कहानियों की चर्चा की है। उनके अनुसार यह हाफचिक एक यूरोपीय लोककहानी (type715; K 481) का मुख्य नायक है। यह कहानी कई रूपान्तरों में मिलती है। यह हाफचिक फ्रांसीसी लोक कहानी में डेमी कोक तथा स्पेन की लोक कहानी में मेडियो पोल्मो है। यह कहानी भारत, रूस, फिनलैंड, एस्टोनिया तथा पश्चिमी यूरोप में मिलती है। जर्मनी, ब्रिटिश द्वीप तथा चैकोस्लोवेकिया अपवाद हैं। आर. एस. बोग्ग ने इन कहानियों के अध्ययन के बाद उनके मूलरूप की स्थापना की है।

हाफचिक को कुछ धन मिल जाता है। वह राजा के यहां से अनाज लेने पहुंचता है पर रास्ते में उसे नदी मिली। नदी भी उसके साथ चलने को तैयार हुई। उसे उसने अपनी गुदा में रख लिया। फिर भेड़िया मिलता है। उसे भी वह रख लेता है। लोमड़ी मिलती है। उसे भी ले लेता है। वह राजा के यहां पहुंचता है। राजा उसके धन को तो हड़प जाना चाहता है पर अनाज नहीं देना चाहता। अतः राजा उससे एक रात ठहरने के लिए कहता है और उसे चूजों के बाड़े में ठहरा देता है, यह मन में सोच कर कि चूजे इस अपंग को रात में मार डालेंगे, फिर हाफचिक ने रात को लोमड़ी को निकाला। वह सब चूजों को खा गयी। दूसरे दिन राजा ने घुड़साल में ठहराया। हाफचिक ने भेड़िया निकाल दिया। वह सब घोड़ों को खा गया। तीसरे दिन उसने नदी निकाल दी जिससे नगर डूबने लगा। तब राजा ने उससे हार मानी और अनाज भी दिया और धन भी दे दिया।

ये कहानियां उसी परम्परा की हैं जिसमें 'क्वारी कन्या के पुत्र-जन्म' एक अभिप्राय है। कभी यह चिड़िया के रूप में (जैसे जातक में), कभी न्याले के रूप में

(जैसे व्रज की कहानी में), कभी रक्त के टुकड़े के उबलने पर। राजस्थान की 'झिडिया' की कहानी भी इसी कोटि में रखी जा सकती है। उसे नानी के यहाँ से टामकी में बन्द कर लुढ़का दिया। वह लुढ़कता-लुढ़कता सारे खाने वाले जन्तुओं से बचता घर जा पहुंचा। कौओं ने बीच मे टामकी फोड़ दी। झिडिया बाहर निकल आया।

राजस्थान की एक कहानी में जादू की मारों की ऐसी कहानी आती है जिसमें लड़ने वाले दो व्यक्ति कभी कोई रूप धारण कर लेते हैं, कभी कोई। एक बिल्ली बनता है तो दूसरा कुत्ता और इस प्रकार रूप बदल-बदल कर वे अपनी रक्षा भी करते रहते हैं और दूसरे को मारने का रूप भी भरते रहते हैं। ऐसी ही एक कहानी हमें वेल्स की एक पुरानी पोथी Talisien में मिलती है। ग्विअान बाच बल के पाताल में पहुँचा। यह वेल्स के उत्तर में मोरयो-नेथशायर में है। वहाँ बहुत प्राचीन दैत्य दंपत्ति टेगिड द बाल्ड तथा पत्नी करिड्वेन, दोनों रहते थे। करिड्वेन अनेक विद्याओं की ज्ञाता थी। वह ज्ञान की पुस्तकों से एक रसायन तैयार कर रही थी। उसने पहले एक काला जोशांदा तैयार किया। फिर उसे एक साल तक लगातार उबालने के लिए एक कढ़ाव में रख कर भट्टी पर चढ़ा दिया। उसने ग्विअान बाच को कढ़ाव की औषध को लगातार चलाते रहने का काम सौंप दिया और मोरडा नाम के एक अन्धे आदमी को आग जलाते रहने के लिए नियुक्त कर दिया। वह प्रतिदिन बाहर जाकर प्रत्येक टोने युक्त वनस्पति को मन्त्रों से अभिषिक्त करके तोड़ लाती थी। एक दिन जब वह इसी काम के लिये बाहर गयी हुई थी तो बाच के हाथ के अंगूठे पर कढ़ाई से तीन टोने से युक्त बूंदे आ गिरीं। उनसे उसके अंगूठे में जलन मची तो उसने अंगूठा ठडक पहुंचाने के लिये मुँह में डाल लिया। इस प्रकार वे तीनों जादुई बूंदे वह चूस गया। उसके प्रभाव से उसे दिव्य दृष्टि मिल गयी। उसने जान लिया कि केरिड्वेन के इरादे उसकी ओर से बुरे हैं अत वह वहां से भाग पड़ा। उधर वह कढ़ाव फट गया क्योंकि तीनों जादुई बूंदों के उसमें से निकल जाने से कढ़ाव में विष ही रह गया था। केरिड्वेन ने आकर देखा कि साल भर का परिश्रम व्यर्थ चला गया तो वह बाच का पीछा करने दौड़ी। बाच ने उसे आते देखा तो वह खरगोश बन गया। वह दानवी भयानक कुत्ता बनी और उसके पीछे दौड़ी। बाच दौड़ कर नदी में कूदा और मछली बन गया। दानवी (Ottur Bitch) बन गयी, तब बाच चिड़िया बन गया। वह बाज बनी, तब वह एक खलिहान में अनाज के ढेर में अनाज का दाना बन कर गिर पड़ा। दानवी ऊँची शिखर वाली काली मुर्गी बन गयी और ढूंढ कर उस दाने को खा गयी। बाच उसके पेट में नौ महीने रहा और जब उसने बालक के रूप में उसके पेट में जन्म लिया तो उसकी सुन्दरता पर

मुग्ध हो उसने उसे मारा तो नहीं बल्कि एक चमड़े के थैले में बन्द कर उसे समुद्र मे फेंक दिया ।[1]

डा० मनोहर शर्मा ने "यारी का घर दूर है" नामक कहानी पर विचार किया है। उसमें चौथी कहानी वही है जो व्रज की "यारु होइ तो ऐसी होई" शीर्षक कहानी है और जो वही है जिसे रैवरेण्ड सर जी० डब्ल्यू कावस ने "फेथफुल जोह्न" नाम दिया है। इसी का लिखित जैन रूपान्तर राजवल्लभ कृत "पद्मावती" मे मिलता है।

इस कहानी का मौखिक रूप ग्रिम के द्वारा संग्रहीत जर्मन कहानियों में सबसे पहले प्रस्तुत किया गया। पेण्टामेरोन में "द क्रो" नाम से यही कहानी है। बर्नार्ड स्किन्दित के ग्रिस्कस्वे मार्खे में तीसरी कहानी का भी रूप ऐसा ही है। इस कहानी में तीन मोइरइ (moirei) हैं, उनसे भावी संकटों की सूचना मिलती है। राजकुमार की बहिन, राजकुमार को बचपन में जलने से तथा गिरने से बचाती है तथा विवाह के दिन सर्प से रक्षा करती है। यह रूप भैया दोज की कहानियों में मिल जाता है। पड्रोमो के "पोर्चुगीज फोक टेल्स" में ऐसी कहानी है। भारत में व्रज तथा राजस्थानी कहानियों के अतिरिक्त कुमारी फ्रेरे ने "ओल्ड डेकन डेज" में, नरेश शास्त्री ने "द्रावीडियन नाइट्स' में, लालविहारी दे ने 'फोक टेल्स आव बंगाल में, कुंजविहारी दास ने 'स्टडी आव ओरिस्सन फोकलोर' में दिया है। इस प्रकार यह कहानी भारत तथा यूरोप में व्यापक रूप से मिलती है। कावस का मत था कि यह प्रागैतिहासिक काल मे निर्मित हुई होगी जब कि सभी आर्य एक साथ रहते थे। स्टिथ थामसन का मत है कि "समस्त लोक कहानियों में सबसे अधिक रोचक है एक स्वामिभक्त जोह्न (५१६ वीं कोटि की)।

---

[1] Joseph Camphell ने लिखा कि The bardie lore Wales, like that of Scotland and Ireland, Descend from a very old abundant pagan-celtic fund of myth. This was transformed and revivified by the Christian missionaries and Chroniclers (fifth Century and following) who recorded the old stories and sought, Painstaking to coordinate them with the Bible.

इस टिप्पणी से विदित होता है कि यह 'जादुई' रूपान्तरों की लोक कहानियां पांचवी शती से भी कहीं अधिक प्राचीन हैं। यह तो यूरोप के लिखित प्रमाण से सिद्ध है। पर भारत और वेल्स में इन अभिप्रायों की समानता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि इसका जन्म प्रागैतिहासिक होना चाहिए।

अब इस कहानी का आदर्श रूप यह है :—

(१) एक राजकुमार और एक नौकर साथ-साथ पलते हैं।

(२) अपने पिता की अनुपस्थिति में कहानी नायक राजकुमार स्वामिभक्त नौकर के मना करने पर भी एक वर्जित कक्ष में प्रवेश करता है।

(३) उस कक्ष मे वह एक सुन्दरी का चित्र देखता है और उस पर विमोहित होकर उसे प्राप्त करने का संकल्प करता है।

(४) अपने सहायक (नौकर, भाई, मित्र आदि) की सहायता से वह उसे प्राप्त कर लेता है – या तो –

(अ) सौदागरी जहाज में धोखे से ले जाकर या (ब) स्त्री का वेष धारण कर उसके पास पहुँचकर या (स) किसी भूमिगर्भ के मार्ग से उसके पास पहुंचकर या (द) नौकर (सहायक) के दूतत्व से।

(५) घर लौटने के मार्ग में दम्पति तीन प्राण-संकटों से बचकर निकलते हैं। ये संकट या तो

(अ) वधू के पिता द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं या (ब नायक के पिता द्वारा या (स) नायक की सौतेली माता द्वारा

(६) तीन संकटों की कल्पना में बहुत भेद है – जैसे –

(अ) विषैला भोजन (ब) विषैलावस्त्र (स) डाकुओं से मुठभेड़ (द) डूबता मनुष्य (य) नदी पार करना (र) किसी द्वार के नीचे से जाने पर द्वार का गिरना

(७) अन्तिम संकट है दम्पति के शयनकक्ष में सांप का प्रवेश।

(८) सहायक को इन संकटों की सूचना साधारणतः पक्षियों के वार्तालाप द्वारा मिलती है। वह इनसे अपने नायक को बचाता है।

(९) अन्तिम सांपवाले संकट से रक्षा करते समय उसे नायक की सोती पत्नी का अंगस्पर्श करना पड़ता है और पकड़ा जाता है।

(१०) वह अपनी सफाई देने में रहस्य का उद्घाटन करता है और पत्थर हो जाता है।

(११) राजकुमार के अपने बच्चों के रक्त-स्पर्श से ही वह स्वामिभक्त पुनः अपना मानव शरीर प्राप्त करता है। उड़ीसा की कहानी में नायक शिलारूप सहायक को बारह वर्ष तक सिर पर रखकर रुदन करता हुआ घूमता है। तब एक विशिष्ट पक्षी स्वर्ग से अमृत लाकर पाषाण मित्र को जीवित कर देता है।

(१२) वे मृत पुत्र भी फिर स्वामिभक्त के प्रयत्न से जीवित हो उठते हैं।

इस आदर्शरूप से तुलना करने पर एक बात तो यह विदित होती है कि प्रेयसी को प्राप्त करने और प्रेयसी के निवास की कल्पनाएं विविध हैं और भिन्न हैं—

ब्रज और बंगाली कहानी में वह स्त्री सांप की वन्दिनी है। सर्प कन्या भी हो सकती है।

वस्तुत: प्रेयसी को प्राप्त करने की कहानी एक स्वतन्त्र कहानी है और उसका विकास अपनी तरह स्वतन्त्र रूप में हुआ है ऐसा विदित होता है।[1] इस कहानी में निम्नलिखित अभिप्राय आते हैं—

यह अभिप्राय (ई० पूर्व) २०००-१००० पूर्व की मिश्र की कहानी में मिलता है। उस कहानी में यह मनुष्येतर प्राणी सर्पेन्ट-नाग है। यह प्राणी नागवेश में रहने वाली दिव्यात्माओं का राजा है। उसके पास कभी एक मर्त्य सुन्दरी भी थी।

उक्त नागराज दूर समुद्र में एक द्वीप में रहता था। उसी द्वीप में उसके साथ वह मर्त्य सुन्दरी थी।

---

[1] इस अनुमान के लिए निम्नलिखित कारण दिये जा सकते हैं।

यह अंश कथा सरित्सागर की कहानी में नहीं। इसकी लोकपरंपरा भी रही है जो बुन्देलखण्ड से प्राप्त हुई है। "मित्रों की प्रीति" नाम की कहानी में इस कथांश का उल्लेख नहीं। बुन्देलखण्ड की कहानी "कथा सरित्सागर" की परंपरा में है। दे० बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां।

इस कथांश के वृत्त का आगे के संकटों वाले वृत्त से कोई अनिवार्य संबंध नहीं।

(अ) किसी मनुष्येतर प्राणी के अधीन एक सुन्दरी (राक्षस, सांप) आदि।

(आ) उसका निवास-स्थान जल से आवृत-यथा द्वीप समुद्र गर्भ या तालाब-कूप गर्भ।

(इ) उस सुन्दरी के किसी चिन्ह से नायक आकर्षित, यथा-एक जूती, एक लट, चित्र, मूर्ति, चौपट की गोट आदि।

(ई) नायक के जल मार्ग में होकर सुन्दरी के पास पहुंचने का साधन किसी सहायक से पाकर।

श्री स्टिथ टामसन द्वारा प्रस्तुत आदर्शरूप में इस वृत्त का उल्लेख, केवल यही सिद्ध करता है कि वह रूप विशेष व्याप्त है। इसका अर्थ केवल यह है कि इसका प्रसार तभी हुआ होगा जब यह वृत्तांश उसमें मिल गया होगा। उसके मूल का संकेत उसमें नहीं है।

नायक एक मनुष्य है जो जहाज टूट जाने पर बच कर बहता उस नाग के द्वीप पर जा पहुँचता है। इस मिश्र की २००० ई० पूर्व की कहानी के सम्बन्ध में स्टिथ टामसन ने यह मन्तव्य दिया है— "यह कहानी ऐसी उलझी हुई है जिससे यह प्रतीत होता है कि जिस मनुष्य ने यह कहानी आज रूपान्तरित की है। वह प्राचीन कहानी की अभिप्राय-व्यवस्था को ठीक-ठीक समझ नहीं सका था। उस विशालकाय नाग के समक्ष इस रूपान्तरकार ने नायक को अत्यन्त भयत्रस्त बताया है, जिसने नायक पर बहुत दया दिखायी तथा उस (मर्त्य) सुन्दरी का समावेश क्यों हुआ है, इसकी कोई न तो व्याख्या ही है, न इस सूत्र का समुचित विकास ही हुआ है। (द फोक टेल्स, पृ० २७३)

(अ) नायक अकेला सुन्दरी के पास पहुँचता है—यथा मणि (जिससे समुद्र का जल फटकर मार्ग देता है) से या जहाज से।

(ब) नायक सुन्दरी को या तो शय्या पर सोते हुए अथवा मृत पाता है और विधि से उसे जगाता है अथवा जीवित करता है।

(स) सुन्दरी उसे अपने पोषक प्राणी के मारने की विधि बताती है, जिससे वह उसे मारकर प्राप्त करता है। कहीं कहीं नायक उसे पहले ही मारकर उसके पास पहुँचता है।

इस कहानी में एक और उप कहानी जुड़ जाती है, जिसमें वह सुन्दरी—

(अ) किसी दूती के बहकावे में आकर
(ब) अपने निवास से बाहर जाने का साधन अपने पति से प्राप्त कर
(स) दूती के साथ बाहर जाकर पर पुरुष के हाथ पड़ जाती है
(द) छः महिने की अवधि मांगती है
(य) कोई व्यवस्था इस आशा से करती है कि उसका पति खिचकर आ सके जैसे प्रतिदिन नई चूडी पहिनना, सदावर्त खोलना, पति विषयक कहानी सुनने वाले को पुरस्कार आदि

(र) नायक का सहायक पहुँचकर उस व्यवस्था से लाभ उठाकर उद्धार करता है और नायक से मिलता है।

इन सभी अभिप्रायों का समावेश मूल कहानी से प्रक्षेप माना जा सकता है।

दूसरी बात यह विदित होती है कि तीन संकट तो सब में हैं। उन संकटों का रूप प्रायः प्रत्येक कहानी में भिन्न-भिन्न है।

तीन संकटों के अभिप्राय का प्राचीनतम उल्लेख भी हमें मिश्र की ई. १६०० से २००० ई. पूर्व तक के काल में प्राप्त एक कहानी में मिलता है जिसे द ऐंचांटेड

प्रिंस का नाम अंग्रेजी में दिया गया है। इस कहानी में राजकुमार के जन्म पर यह भविष्यवाणी की गयी है कि इसकी मृत्यु सांप, कच्छप अथवा कुत्ते के द्वारा होगी। सांप से रक्षा करने के लिए राजकुमार को एक शीशे के महल में रख दिया जाता है। बड़ा होने पर राजकुमार बाहर निकलता है और एक शर्त को पूरी कर एक राजकुमारी से विवाह करता है। यह राजकुमारी सर्प से राजकुमार की रक्षा करती है। कच्छप से राजकुमार स्वयं बच निकलता है। कुत्ते वाली बात को विना कहे ही यह कहानी समाप्त हो जाती है। संकटों में तीन की गिनती ध्यान में रखने की बात है।

तीसरी बात यह भी विदित होती है कि प्रत्येक कहानी में दम्पति के शयन-कक्ष में सहायक के पहुंचने की बात आती है। मृत्यु का अन्तिम विधान शयन-कक्ष में किया गया है। यहाँ सांप का उल्लेख कथासरित्सागर को छोड़ कहानी के अन्य सभी संस्करणों में आया है।

चौथी बात यह है कि प्रत्येक में संकट प्रायः भविष्यवाणी के द्वारा बताये गये हैं। इस भविष्यवाणी को कहने वाले मनुष्य, यक्ष, पक्षी कोई भी हो सकते हैं।

पांचवी बात यह भी विदित होती है कि कहानी का वह अन्तिम भाग जिसमें सहायक समस्त रहस्य का उद्घाटन करके पत्थर हो जाता है, बाद में जोड़ा गया होगा क्योंकि पत्थर होना और रक्त, स्पर्श या रज से पुनः जीवन प्राप्त करना एक अलग ही अभिप्राय है जिसका अलग इतिहास और विकास है।[1]

अतः मूल कहानी में तीन अभिप्राय ही मुख्य विदित होते हैं—

(१) राजकुमार द्वारा वर्जित राजकुमारी की खोज और प्राप्ति[2]

---

[1] कथासरित्सागर में पत्थर होने की घटना का उल्लेख नहीं जिससे यह तो सिद्ध ही है कि एक ऐसी परम्परा भी थी जिसमें पत्थर होने का अभिप्राय समाविष्ट नहीं था। कथासरित्सागर में रहस्योद्घाटन के साथ एक श्राप तो लगा हुआ है पर वह समय सापेक्ष्य है। यदि बचाने के उद्देश्य से कोई रहस्य प्रगट करेगा तो नष्ट हो जाएगा। रक्षा हो जाने के बाद इस शाप का प्रभाव नहीं रहता। फलतः कहानी का सम्पूर्ण अभिप्राय इस युक्ति से प्रकट हो जाता है। कहानी यहीं समाप्त हो जानी चाहिए।

[2] प्राप्ति के लिए जाने भर का अभिप्राय ही मूल प्रतीत होता है। कितनी ही कहानियों में विवाह के लिए जाते समय की घटनाओं का उल्लेख है। जैसे कथासरित्सागर और बुन्देलखण्ड की कहानी में। ढोला और मारू की लोक-कहानी में भी गौने के लिए जाते समय की बाधाओं का उल्लेख है।

(२) तीन संकटों की भविष्यवाणी और सहायक द्वारा उनसे रक्षा तथा

(३) अंतिम सकट शयन-कक्ष में जहां सहायक का निपटारा या रहस्य का उद्घाटन।

(बुन्देलखण्ड की कहानी में शयन-कक्ष में दो संकट प्रस्तुत किये गये हैं। एक तो सामान्य ही है, दूसरा रानी की नाक से रात को सर्प निकलेगा। यह संकट विशेष है। निश्चय ही यह एक दूसरी कहानी का अंश है, जो यहां जोड़ दिया गया है)। इन अभिप्रायों का मूल मर्म भी केवल एक है वर्जित प्रेम के उपभोग में घातक वाधाओं का उदय और निराकरण।

जैसा हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, इस लोककहानी पर 'माईथालोजिकल सम्प्रदाय' के विद्वान फाक्स द्वारा विचार किया गया—वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस कहानी का निर्माण उस प्रागैतिहासिक युग में हुआ होगा, जब समस्त आर्य जातियों के पूर्वज अपने किसी मूलस्थान में साथ-साथ रहते होंगे।

ऊपर यह भी हम देख चुके हैं कि इस कहानी का संकट विषयक मूल अभिप्राय ईस्वी पूर्व २००० वर्ष के मिश्र में प्रचलित था।

किन्तु वाद के विद्वानों में से राश्च (Rosch) तथा कार्ल कोहन ने इस कहानी पर वहुत विस्तार से विचार किया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि ये कहानी-तत्व भारत से आये और पुर्तगाल तक फैले। ये दोनों विद्वान वेन्फी के यात्रा-विश्वासी सम्प्रदाय के हैं, जो यह मानते हैं कि कहानियां भारत से चल कर यूरोप में तथा अन्यत्र फैलीं।

विश्व की लोकवार्ताओं पर ध्यान देने से कुछ ऐसा आभास मिलता है कि स्टिथ टामसन द्वारा प्रस्तुत किया आदर्श रूप स्वीकार किया जाय तो यह समस्त वृत कुमारियों के पुष्पवती होने से कौमार्यभंग तक के आदिम-मानस का प्रत्यक्षीकरण है। पुष्पवती कुमारियो का वर्जन कक्ष-वर्जन या दिशा-वर्जन का कारण है। तीन संकट तीन स्राव-दिवसों के द्योतक हो सकते हैं। चौथा संकट कौमार्य-भंग है। पाषाण होना पौरुष की जड़ता है जो पुत्रोत्पत्ति के उपरान्त जीवित हो उठता है।

यथार्थतः इसकी मूल उद्‌भावना कहां हुई यह विषय तो अभी और अनुसंधान चाहता है किन्तु यहां इस सम्पूर्ण कहानी के विविध अभिप्रायों पर कुछ विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है—

(१) नायक और सहायक दो भाइयों वाला रूप।[1] दो भाइयों वाले रूप का

---

[1] इस सम्बन्ध में श्री कृष्णानन्द गुप्त ने बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां नाम की

विशेष अध्ययन रॉके ने किया है। दो भाइयों की इस कहानी में एक ड्रेगन को मार कर सुन्दरी पाने की बात अधिकांशतः आती है। ऐसी समस्त कहानियाँ जिनमें दो भाई हों और सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए किसी कठिनाई को दूर करना पड़े, इसी कोटि में रखी जायेगी। राम-लक्ष्मण के साथ धनुष तोड़ कर सीता को प्राप्त करने का राम-कथा का अंश इन्हीं दो भाइयों की कहानी का रूपान्तर है। सात मुख वाला सपक्ष अजगर "धनुष" बन गया है। नल की कहानी में मोतिनी को प्राप्त करने के लिए भूमासुर या घूमासुर दाने का संहार नल को करना पड़ा है। अजगर का स्थान दाने ने ले लिया है। पद्मावती चरित्र में यह बाधा तो भयानक है पर उसका स्वरूप बहुत कोमल हो गया है। वह सुन्दरी पुरुष-द्वेषिणी है, क्योंकि उसे अपने पूर्वजन्म में, जब यह हंसिनी थी उसे अपने पति हंस से घृणा हो गयी थी। क्योंकि वह समझती थी कि वह उसे असहाय अवस्था में छोड़ गया था। चित्र से पूर्वजन्म की घटना का स्मरण दिलाकर यह घृणा दूर करायी गई तब राजकुमार उसे पा सका। दो भाइयोंवाली इस कहानी का बहुत अधिक प्रचार मिलता है। इस दो भाइयोंवाले अभिप्राय में भारतीय अश्विनी की वैदिक कहानी को भी रखा जा सकता है। अश्विन दो भाई हैं। ये अनेक साहस के कृत्य करते हैं।

इन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) का वैदिक वृत्त अहिवृत्र को मारने और उसके बंधन में सूर्य अथवा उषा को मुक्त करने का अभिप्राय भी इस कहानी के मूल अभिप्राय से बहुत मिलता है। यह सहायक "भैयादूज" की कहानी में "बहिन" है। वही संकटों से रक्षा करती है।

पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है कि— 'संत-बसंत' कहानी बहुत रोचक है और इस बात का एक उत्तम उदाहरण है कि किस प्रकार एक ही कहानी विभिन्न रूपों में प्रचलित हो जाती है। यह कहानी "दि टू ब्रदर्स" (दो भाई) शीर्षक से "इण्डियन एण्टीक्वेरी" के सन् १८८२—८८ के अङ्कों में दो विभिन्न रूपों में छप चुकी है। एक काश्मीरी और दूसरा मध्यप्रान्तीय पाठ "संत-बसंत" के पाठ से बहुत कुछ मिलता है। ········ पर उल्लेखनीय बात यह है कि यह कहानी "सीत-बसंत" के नाम से बंगाल में भी प्रचलित है ········ और चार विभिन्न रूपों में वहां छपी मिलती है। "इस कहानी पर रौके (Rauke) ने विस्तृत अध्ययन किया है। इस कहानी के ११०० उदाहरण तो उस समय तक यूरोप में मिल चुके थे जब कि स्टिथ टामसन ने अपनी 'दि फोकटेल' नाम की पुस्तक लिखी थी।

(२) नायक वर्जन[1] का उल्लघन करके प्रेम में फँस जाता है। वर्जन का एक रूप है किसी कक्ष का वर्जन। नायक वर्जित कमरे में जाता है और वहां सुन्दरी का चित्र देखकर विमोहित हो जाता है। वर्जित कक्ष का अभिप्राय कितनी ही कहानियों में' मिलता ने। उसमें कहीं-कहीं दक्षिण दिशा के कक्ष का अथवा दक्षिण दिशा में जाने का वर्जन होता है। जो कहानियां हमें हिन्दी क्षेत्र में मिलीं हैं उनमें स्पष्ट वर्जन नहीं, अप्रत्यक्ष वर्जन है। मूर्ति पर मिट्टी थोप दी गयी है तथा पद्मावती चरित्र के रूप में मन्दिर की मूर्तियों के साथ वह मूर्ति है।

वर्जन के उल्लघन[2] से प्रेम में ग्रस्त होने की बात तो प्रस्तुत कहानियों में

---

[1] ऐसे वर्जन का घनिष्ठ सम्बन्ध फ्रेजर की राय में विश्वव्यापी उस मूढ़ग्राह में है जिसमें प्रथम पुष्पवती होते समय किशोरियों को पृथ्वी-स्पर्श अथवा सूर्य-दर्शन का वर्जन किया गया है। भारत में भी असूर्यंपश्या स्त्री को महत्व दिया गया है। यह पृथ्वी न छूने अथवा सूर्य के दर्शन न करने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित है। अनेक जातियों में कुमारियों को अलग कमरे में बन्द कर दिया जाता है। इस प्रथा के विश्वव्यापी रूप का रोचक दर्शन फ्रेजर ने अपनी पुस्तक गोल्डन बाउ में कराया है। वहीं अन्त में उन्होंने लिखा है—

A Superstition so widely diffused as this might be expected to leave traces in legends and folktales and it has done so. The old Greek story of Dance was confiend by her father in a subterranean Chamber or a brozen tower but impregnated by Zeus who reached her in the shape of a shower of God perhaps belongs to this class of Tales. (Golden Bough P. 602)

रेयंड डेलाय जैमसन का मत है कि इस वर्जन का मूल वर्जित फल या वृक्ष है। इसका एक रूप आदम-हव्वा के कथानक में मिलता है। इसमें भले-बुरे के ज्ञान के पैदा होने के साधन का वर्जन प्रतीत होता है। यही वर्जन रूपान्तरित हो कर कक्ष-वर्जन, चित्र-मूर्ति वर्जन दिशा-वर्जन बन गया है। (स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर)। फ्रेजर ने जो सम्भावना प्रस्तुत की है वह अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। वर्जन के साथ उसका उल्लंघन भी वहां विद्यमान है। इससे स्वर्ण की बौछार बन कर उस वर्जित पाताल कक्ष से पहुंचता है। जियस भी सूर्य या उसकी किरणों का ही प्रतिरूप है।

[2] वर्जन के उल्लंघन से संकट में फँसने की एक कहानी वह है जिसमें एक सुनार को कुए से निकालने का वर्जन कई प्राणी जो उसी कुए में गिरे हुए हैं, निकाले

है ही। किन्तु वर्जन के उल्लंघन से किसी संकट में फँसने अथवा किसी संकट से मुक्ति पाने की कहानियां भी कम नहीं हैं।

(३) चित्र, मूर्ति अथवा वस्तुदर्शन से प्रेम—इस कहानी के समग्र रूप में इस अभिप्राय का कहीं-कहीं दो बार प्रयोग हुआ है। एक आरम्भिक है जिसका सम्बन्ध चित्रदर्शन अथवा मूर्तिदर्शन से। किन्तु जैसा ब्रज की कहानी में है, सुन्दरी की जूती को देख कर एक दूसरा राजकुमार परपुरुष मुग्ध हो जाता है, और दूति भेज कर सुन्दरी को बलात् प्राप्त करता है। नल-मोतिनी की कहानी में 'सार-फाँसे' (चोपड़) की गोट भी वैसा ही काम करती है। कहीं-कहीं सुनहले बाल नदी में बहते मिलते हैं। राजकुमार उस सुन्दरी को प्राप्त करना चाहता है। लखटकिया की प्रसिद्ध कहानी में कभी एक पैर की जूती यही काम करती है, कभी रेशमी या सुनहले बाल। चित्रदर्शन (मूर्तिदर्शन) भी तो साहित्य के क्षेत्र में भी एक उपयोगी विधान स्वीकार किया गया है:

(४) प्रेयसी की प्राप्ति में किसी बाधा का विधान और उसका निराकरण। इस अभिप्राय के कई रूप इस कहानी में मिलते हैं।

(अ) कहीं तो सुंदरी तालाव या कुएं में या नाग के बंधन में है। सर्प के अधीन सुन्दरी उससे जलाशय का संबंध, और वहां नायक का पहुंचकर उस सुंदरी से विवाह। इसी अभिप्राय का ही एक रूप शेषशायी भगवान् विष्णु के चित्र में मिलता है। शेष का सबंध भी क्षीरसागर से है। सुन्दरी लक्ष्मी का भी सम्बन्ध है। लक्ष्मी सागर से निकली। सागर भगवान् विष्णु की ससुराल है और शेषशायी विष्णु के अभिप्राय के रूप में शेष की छाया में विष्णु और लक्ष्मी दोनों साथ दिखाई पड़ते हैं।[1]

मणि पाकर पाताल में जाने और सर्पलोक में जाने की बात कितनी ही कहानियों में मिलेगी। नल-मोतिनी की कहानी में नल वासुकि के यहां पहुंचता है। कृष्ण-कथा में कृष्ण अपनी दिव्यता के कारण नागों में पहुंच गए हैं।

जाने पर करते जाते हैं। द्रष्टव्य—ब्रज की लोककहानियां, पृष्ठ १५ की कहानी—नारद का घमण्ड दूर करियो।

[1] नाग और दाने की कुछ ऐसी कहानियों पर विचार के लिए देखिये—स्टिथ थामसन की "द फॉक टेल" में पृ० ५० के निबंध "द ग्रेटफुल डेड" के नाग को मार कर मणि प्राप्त की जाती है। उससे पानी में मार्ग मिलता जाता है और नायक सुंदरी को प्राप्त कर लेता है।

(ब) कहीं सुंदरी दूर द्वीप में (I) किसी राक्षस या दाने के अधीन है। वहां नायक पहुँच जाता है और बाद में राक्षस या दाने को मारता है। (II) किसी राजा की पुत्री है[1] जिसे बहका कर व्यापारी जहाज पर बिठा कर भगा ले जाता है।

(स) कहीं सुंदरी पुरुष-द्वेषिणी है। वह पुरुष से दूर रहना चाहती है जैसे पद्मावती चरित में। इस चरित में मिलने वाला बाधा विषयक यह अभिप्राय बुन्देलखंड की "मित्र हो तो ऐसा हो" शीर्षक कहानी में भी सन्निवेषित है।[2] दोनों में यह पुरुष-घृणा पूर्वजन्म के पुरुष-विषयक किसी निर्मम व्यवहार के कारण है। "चरित" में हस हंसिनी हैं तो दूसरी में चिरोंटा—चिरैया है।

इसमें निराकरण की विधियां भिन्न हैं। चरित में पूर्व-जन्म के चित्र के सहारे उसे स्मरण दिला कर भ्रम दूर कराया गया है। बुन्देलखण्ड वाली कहानी में पुरुष-द्वेष के तुल्य ही स्त्री-द्वेष रखने वाले साधु का छद्म कराके पूर्वजन्म में चिरैया द्वारा किये गये दुर्व्यवहार को घृणा का कारण बताया गया जिससे वह सुंदरी उसे अपना पूर्व पति समझकर फिर आकृष्ट हो जाती है और इस प्रकार बाधा का निराकरण हो जाता है।

बाधाओं के विधान और उनके निराकरण के अनेक रूप हमें कहानियों में मिलते हैं। सीता की प्राप्ति के लिए धनुष तोड़ने की शर्त भी बाधा के रूप में ही है।

(द) प्रेयसी सोती मिलती है। इसे युक्ति से नायक जगाता है। सुपुप्त सौन्दर्य (स्लीपिंग ब्यूटी) से सम्बन्ध रखने वाली कहानियों की गिनती कठिन है।[3] यह निद्रा कभी-कभी तो साधारण होती है। सोते से जगाने के लिए, नायक या तो सिरहाने के तकिये को पैरों की ओर तथा पैरों के तकिये को सिरहाने की ओर रखता है या कभी शय्या को हलका धक्का लगा देता है।

---

[1] पाश्चात्य धर्मगाथाओं में अएनीज अपने स्वामिभक्त मित्र एकादिज के साथ दूर समुद्र में तूफान के कारण एक द्वीप पर पहुंचता है, जहां डीडी नाम की सुंदरी स्वयं ही राज्य कर रही है। अएनीज और इस सुंदरी में प्रेम हो जाता है। अएनीज एक दिन जहाज द्वारा चुपके से उस द्वीप से चला जाता है। सुंदरी वहीं वियोग में जल मरती है।

[2] पाषाण नगरी—श्री शिवसहाय चतुर्वेदी।

[3] 'स्टेण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर' निबन्ध-लिटिल ब्रायर रोज। पृष्ठ ३६४ तथा लैटिन की धर्मगाथा में क्यूपिड को साइक दिव्य निद्रा में मग्न मिलती है। क्यूपिड साइक से विवाह करता है।

कभी यह शयन मृत्यु के समान होता है। राक्षस या नाग उसे अपने दिव्य-साधन से मृतवत् करके चला जाता है और आकर फिर उसे जीवित कर लेता है। बहुधा ऐसा दो लड़कियों से होता है जिन्हें सिरहाने और पायताने बदल देने से वह या तो मर जाती है या जीवित हो उठती है। नायक या तो बुद्धि से या छिप कर देखकर जान लेता है और लाभ उठाता है।

कभी सिर और धड़ अलग किये मिलते हैं जिन्हें जादू की छड़ी से छूकर जीवित कर लिया जाता है।

य) प्रेयसी को प्राप्त कर नायक, सहायक और सुन्दरी चलते और एक वृक्ष के नीचे ठहरते हैं। वहां वे भविष्यवाणियां सुनते हैं—

प्रथम प्राप्ति के उपरान्त सुन्दरी का अपहरण होता है, और उसकी पुनः प्राप्ति का प्रयत्न होता है जो स्वय एक नई कहानो बन जाती है। नल और मोतिनी की कहानी में भी ऐसा ही होता है। बंगाल की कहानी "फकीरचन्द" में भी यह अभिप्राय विद्यमान है।

सुन्दरी का यह अपहरण बहुत व्यापक अभिप्राय है।

(र) भविष्यवाणियां कहने वाले प्रायः दो प्राणी होते हैं। वे अलौकिक यक्ष भी हो सकते हैं। पक्षी हो सकते हैं।[1] कहीं-कहीं एक ज्योतिषी ही यह कार्य सम्पन्न करता है, कहीं-कहीं केवल आकाशवाणियां ही हो सकती हैं। मिस्र से मिलने वाली प्राचीन कहानी में ऐसी भविष्यवाणी का उल्लेख है।

(ल) भविष्यवाणियों में तीन सामान्य संकटों का उल्लेख होता है। ये तीन संकट अलग-अलग कहानी में अलग-अलग रूप ग्रहण कर सकते हैं। इन संकटों का स्वरूप यह है—

(I) जादू का हार जिससे गला घुट जायगा। (कथा सरित्सागर की कहानी में)

---

[1] सिरी जातक में दो मुर्गे लड़ पड़ते हैं और लड़ते-लड़ते बातें करते हुए ऐसी बातें कहते हैं जिन्हें एक सुनने वाला उन्हें मार कर लाभ उठाता है। कथाकोष की रानी पद्मावती तोता-तोती की बातें सुनकर अपने शरीर की दुर्गन्ध का कारण भी जान लेती है और दूर करने का उपाय भी। कथाकोष में ललितांग की कहानी में अन्धा राजकुमार मारुण्ड पक्षियों से नेत्र-ज्योति पाने का उपाय जान लेता है। दक्षिण की कहानियों में दो सांप परस्पर बातें करके सुनने वाले के मन में उन्हें मार कर लाभ प्राप्त करने की इच्छा पैदा कर देते हैं। पंचफूल रानी गीदड़ों की बातों से अपने पति को जीवित करने का उपाय जान लेती है। एक कहानी में उल्लू के मुख से लक्ष्मण अपने भविष्य का वृतांत सुनते हैं।

(II) जादू का आम्रवृक्ष जिसका आम खाने वाला मर जायगा। यह अभिप्राय वस्तुतः विष देने के अभिप्राय के ही समान है। केवल रूप इसका दिव्य है।

(III) दरवाजा टूट कर गिर पड़ेगा। यह वृक्ष की शाखा गिरने के समान ही है।[1]

(IV) शयन कक्ष में सौ वार छींक। कथा सरित्सागर में है।

(V) एक दुष्ट घोड़ा। यह घोड़े का अभिप्राय भी काफी प्रचलित है। पर इस कहानी के साथ इधर नहीं मिलता।

(VI) विष-मिश्रित भोजन। विषैले भोजन के अभिप्राय में विशेषता नहीं, यह तो बहुत सामान्य है।

(VII) शयन कक्ष में सर्पदंश।[2] यह अभिप्राय इस कहानी में अन्त में अवश्य

---

[1] दरवाजे अथवा वृक्ष के गिरने का अभिप्राय भी बहुत प्रचलित अभिप्राय है। ढोला और मारू के कथानक में भी दरवाजे के गिरने से ढोला की मृत्यु का पूर्व-विधान है, जिससे करहा (ऊँट) उसे बचा ले जाता है यद्यपि उसकी पूंछ गिर जाती है। करहे के स्थान पर घोड़े की पूंछ गिरने का उल्लेख एक आयरिश रोचक कहानी में मिलता है। इसमें एक किसान को शैतान ड्रूड शाप देता है कि जब तक तुम प्रकाश की तलवार लाकर नहीं दोगे तुम अपनी सुन्दरी प्रियतमा के साथ सुख नहीं पा सकोगे। अपनी प्रियतमा से बिना परामर्श के वह किसान एक विशेष घोड़ा लेकर एक तीन परकोटे के किले पर आक्रमण करता है। जब पहले परकोटे को उसका घोड़ा अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा करने के लिए, लौटता हुआ फलांगता था तभी किले के शैतान के फेंके अस्त्र से उसकी पूंछ कट कर गिर गयी। पर वह स्वामी को बचा ले भागा। द्रष्टव्य— सनलोर आव आल एजेज, पृ. १११-११२। दरवाजे के स्थान पर वृक्ष के गिरने की बात भी बहुधा मिलती है। कहीं-कहीं दोनों का भी समावेश है। कहीं—जैसे भैयादूज की कहानी में—'सरकनी शिला' गिरने का विधान है।

[2] सर्प किसी न किसी रूप में पुष्पवती होने की अवस्था और संस्कार से सम्बन्ध रखता है। यह दक्षिण-पूर्वी बोलिविया के चिरिगुआनो में मिलने वाली एक प्रथा से विदित होता है। वहां जब कोई कन्या सबसे पहले पुष्पवती होती है, तो तीसरे महीने घर की बड़ी स्त्रियां डण्डे लेकर उस कोठरी में जाती हैं जिसमें वह पुष्पवती कन्या छत से लटकायी रहती है। और जो चीज उन्हें वहां मिलती है उसी में डण्डे मार कर कहती हैं— 'सांप को मार रही हैं जिसने इस लड़की को घायल किया है।' (गोल्डन बाउ पृष्ठ ६०७)

ही मिलता है। केवल कथा सरित्सागर में यह नहीं है।

(VIII) जल कर मरना। बहुत ही कम संस्करणों में इसका समावेश है।

(IX) चट्टान पर गिरना। इसका भी बहुत कम प्रयोग किया गया है।

(X) विवाह के दिन सर्प-दंश। इसमें और सातवें में मूलतः कोई विशेष अन्तर नहीं।

(XI) विषैले अथवा आग्नेय वस्त्र। यह अभिप्राय भी बहुत प्राचीन है, और पौराणिक भी है। हरक्यूलीज की मृत्यु ऐसे ही विषैले वस्त्र से हुई थी।[1]

(XII) डाकुओं से मुठभेड़। यह एक सामान्य अभिप्राय है।

(XIII) नदी में डूबना। सूखी नदी में जाते ही बीच में बाढ़ आजायगी और डूब जायेंगे। यह कई कहानियों में है।

(XIV) वृक्ष की शाखा गिरना। यह तीन के समान है।

(XV) चित्र का सिंह या बाघ जीवित होकर खा जायगा। यह विशिष्ट अभिप्राय कुछ कहानियों में मिलता है। उड़ीसा में मिलने वाली एक सत्यनारायण विषयक कहानी में भी चित्र के बाघ के जीवित हो जाने का उल्लेख है। राजा पद्लोचन के पुत्र की सम्पूर्ण आयु सत्यनारायण

---

[1] हरक्यूलीज देहअनीरा से विवाह करके घर लौट रहा था। मार्ग में एक नदी पड़ी। सेण्टोर नेस्सस (Centaur Nessus) देहअनीरा को कन्धे पर बिठाकर जब पार उतारने गया तब बीच नदी में उसके साथ अभद्र व्यवहार किया। हरक्यूलीज ने इस दुष्ट को मार डाला। मरते-मरते उसने देहअनीरा से कहा कि मेरे शरीर का कुछ रक्त ले कर अपने पास रखलो। यदि कभी हरक्यूलीज किसी स्त्री को तुमसे अधिक प्रेम करने लगें तो इस रक्त में रंग कर उसे वस्त्र पहना देना। यह तुम्हारे प्रेम की रक्षा करेगा। देहअनीरा ने उसे अपने पास रख लिया। एक बार इयूरीटस से युद्ध करते हुए कई स्त्रियां बंदिनी हुईं। उन्हें हरक्यूलीज ने अपनी स्त्री के पास भेज दिया। उनमें से इयोले नाम की राजकुमारी विशेष सुन्दर थी। देहअनीरा को यह भ्रम पैदा कराया गया कि हरक्यूलीज उसे बहुत प्रेम करता है। देहअनीरा ने तब उस रक्त से एक वस्त्र रंग कर हरक्यूलीज के पास भेजा। पहनते ही हरक्यूलीज तड़प कर मर गया। इसी प्रकार जादूगरनी मीडिया ने जादू के वस्त्र से अपने प्रेमी जैसन की दुल्हन को जला दिया था।

ने १२ वर्ष की ही नियत करायी। जिस दिन बारहवां वर्ष पूर्ण हो रहा था, उस दिन वह अपनी पत्नी के आग्रह पर एक वाघ का चित्र बनाने बैठा। चित्र बन जाने पर चित्र का वाघ जीवित हो उठा और राजकुमार को उसने मार डाला। (द्रष्टव्य- स्टडी आव ओरिस्सन फोकलोर)

(XVI) सहायक भविष्यवाणी सुनता है। वह संकटों से रक्षा करता है।

(XVII) अन्तिम शयनकक्ष वाले संकट से रक्षा करते समय पकड़ा जाता है और सन्देह में मृत्यु दण्ड की आज्ञा हो जाती है बुन्देलखण्ड की कहानी में "मित्रों की प्रीति" में एक और संकट प्रस्तुत किया गया है। रानी की नाक से सर्प निकलने का अभिप्राय भी वहुत प्रचलित है, पर वह इस कहानी से भिन्न वर्ग की कहानियों में मिलता है। जगदेव की एक कहानी में भी आया है।

(XVIII) वह सहायक रहस्य-उद्घाटन कर लेता है— जिससे वह पत्थर का हो जाता है।[1]

(XIX) नायक के प्रथम पुत्र का स्पर्श या उसके बलिदान का रक्त उसे पुनः जीवित कर देता है।[2]

---

[1] पत्थर होने का अभिप्राय अत्यन्त प्राचीन और अत्यन्त प्रचलित है। अहल्या के पत्थर होने की कहानी तो हम सभी जानते हैं। पाषाण नगरी की प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड की कहानी सभी हिन्दी क्षेत्रों में मिलती है। वह भी शाप का ही परिणाम है। ऐसी कहानियां भी बहुत हैं जिनसे किसी कठिन कार्य को करने के संकल्प से गया हुआ व्यक्ति किसी शोर को सुनता है और पत्थर हो जाता है। पाश्चात्य जगत में भी इसके अनेक प्रयोग हुए हैं। एक अभिशप्त शहर से भागते हुए लोट की स्त्री नमक का स्तम्भ बन गयी थी, क्योंकि उसने पीछे फिर कर सोडोम और गोमोरा पर दृष्टि डाली थी। गौरगन मेड्यूसा का रूप इतना भयावना हो गया था कि जो उसे देखता था पत्थर हो जाता था। 'अरेबियन नाईट्स' में एक पाषाण नगरी का उल्लेख है। ऊपरी मिश्र में इशमोनी नाम का नगर ही पत्थर का हो गया है। (विशेष देखिये-स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर—निबन्ध पैट्रीफिकेशन)

[2] रक्तलेपन—अहल्या वाली कथा में यह चरण की रज का स्पर्श है। पाषाण नगरी में कहानी को दुहराना ऐसा ही अभिप्राय है। रक्त के स्पर्श अथवा लेप से प्राण पाने के अभिप्राय में वह आदिम विश्वास विद्यमान है जिसमें यह माना जाता है कि रक्त में प्राण है। उसके स्पर्श से रूप का प्राण स्थानान्तरित हो जायगा।

(XX) मृतक पुत्र को सहायक जीवित कर देता है। (अ) उनके सिर धड़ से मिला कर (ब) देवी की कृपा पाकर।

इस प्रकार इन अभिप्रायों पर विचार करने के उपरान्त यह विदित हो जाता है कि कहानी ही पुरानी नहीं, उसमें आने वाले विविध अभिप्राय भी पुराने हैं और वे अत्यन्त विशद क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। उनमें से कुछ का सम्बन्ध निश्चय ही पुष्पवती अवस्था से है। पुष्पवती अवस्था के सम्बन्ध में आदिम मानव में अत्यन्त ही आशंका के भाव विद्यमान मिलते हैं। इस प्रकार जैन कथा साहित्य में लोक-वार्ता के तत्व पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं।

इन कहानियों के साथ अब हमारी दृष्टि जगदेव पँवार की कहानी पर जाती है। जगदेव पँवार की कथा भी प्रायः समस्त उत्तरी भारत में मिल जाती है। जयसिंह से जयपुर का सम्बन्ध जानकर एक कहानीकार जगदेव को जयपुर में जयसिंह का प्रतिद्वन्द्वी तक बना देता है। राजस्थान में जगदेव के पवाड़े के दो रूप मिले हैं। पहला बात के रूप में तथा दूसरा ख्याल के रूप में। ये दोनों ही श्री अगरचन्दजी नाहटा से प्राप्त हुए हैं। इस वीरकथा के इन दो राजस्थानी कृतियों के अतिरिक्त १० और मिले हैं:--

(१) टेम्पल के 'लीजेंड्स आव पंजाब' मे संकलित (२) फार्ब्स की रासमाला में गुजराती रूप (३) ब्रज का पवारा (४ गढ़वाली रूप (५) अवधी रूप (६) हिमालय का रूप (७) मैथिलीशरण द्वारा लिखित बुन्देली रूप (८) भक्तमाल हिन्दी (९) भक्तमाल बंगाली (१०) जैन गुर्जर कवियों के दूसरे भाग में।

जगदेव की मूल कथा का रूप केवल इतना-सा है कि जगदेव परमार अपने राज्य को त्याग कर किसी राजा जयसिंह के यहां गया। वहां उसने एक देवी को अपना सिर प्रदान कर दिया।

इस मूल कथा में इतने परिवर्द्धन संशोधन हुए कि इस जगदेव के तेरह पराक्रमों का उल्लेख हो गया। अन्य कुछ और वृत्त आगे-पीछे जुड़े वे अलग। जयपुर

बोर्नियो के ओट डनोमो में जब लड़की स्त्रीत्व की अवस्था पर पहुंचती है, तो उसे कोठरी से बाहर निकाला जाता है जिसमें वह सात साल तक, एक प्रकार से, बन्द रही और एक बड़ा भोज होता है। एक गुलाम को मार कर उसका रक्त उस लड़की के शरीर पर लेपा जाता है। (देखिये--गोल्डन बाउ, पृ० ५९७) यह पुष्पवती होने के समय का कृत्य पाषाण पर रक्त लेपन के विश्वास से कुछ सम्बन्ध रखता है, ऐसा विदित होता है।

से जो रूप नाहटा जी की कृपा से तब मिले थे उनमें दो ही पराक्रमों का उल्लेख मिलता है। एक है काल भैरव को पछाड़ने का तथा दूसरा है देवी को सिर दान करने का।

जगदेव के कथा तत्व पर हमने जो पहले विचार किया था उसे संक्षेप में यहां उद्धृत करना ठीक रहेगा।

इन रूपान्तरों पर दृष्टि डालने से किसी भी कहानी के मूल रूप को समझा जा सकता है। मूलरूप सामान्यतः सभी रूपान्तरों में विद्यमान मिलते है। जहां मूल का लोप रहता है वहां कहानी लगड़ी प्रतीत होती है। इसी जगदेव की कथा के उदाहरण को लें तो उक्त वृत्तों की तुलना में विदित होता है कि जगदेव की कहानी में एक सामान्य तत्व यह है कि उसे असंतुष्ट होकर घर छोड़ना पड़ा—वह जयसिंह-जयचन्द के राज्य में गया—उसके दरबार में उपस्थित हुआ—वहां उसने मांगने पर अपना सिर चारण-कंकाली देवी को चढ़ा दिया। प्रतीत होता है कि यही इसका मूल रूप है।

अब हम मूल कथा में हुए संवर्द्धनों पर विचार कर सकते हैं। ये संवर्द्धन क्यों हुए? एक समाधान है कि पृच्छा-पूर्ति के लिए। जहां-जहां जैसी-जैसी पृच्छाएँ खड़ी हुई, वैसी-वैसी ही कथाएँ समाधान के लिए जुड़ती गयीं। उदाहरणार्थ पहला प्रश्न उपस्थित हुआ कि जगदेव ने घर क्यों छोड़ा? उस जैसा अपने युग का महान् वीर अकारण क्यों अपना घर छोड़ता? इसके लिए कल्पनाएँ प्रस्तुत हुई कि—

जगदेव ने सौतेली मां के अत्याचार के कारण घर छोड़ा। इसकी शाखाएँ हुई—

(अ) सौतेली मां ने जगदेव और उसकी मां को जगदेव के जन्म से ही महलों से निकाल कर बाहर किया था।

(आ) राजा जब कभी जगदेव को कोई वस्तु देता तो सौतेली माता उसे वापिस मंगा लेती।

(इ) जगदेव की जो सगाई आई वह उसने रणधवल को चढ़वायी।

(ई) सौतेली मां ने यज्ञ के अवसर पर जगदेव की मां का अपमान किया।

जगदेव के जन्म के समय की एक घटना के कारण, जिसके दो रूप हुए—

(I) जब जगदेव का जन्म हुआ तो समाचार राजा के पास भेजा गया। राजा सो रहा था। दूत सिरहाने खड़ा हुआ। कुछ देर बाद

रणधवल पैदा हुआ। उसका समाचार लेकर दूत गया। वह पैरों की ओर खड़ा हुआ। राजा जगे। पैरों की ओर खड़े दूत ने रणधवल के जन्म का समाचार पहले दिया। राजा ने उसे बड़ा माना और जगदेव को छोटा।

(II) जब जगदेव पैदा हुआ तो राजा अपने से बड़े राजा के यहां था। बंदी था या काम पर था। जगदेव का समाचार ले जाने वाला धीरे-धीरे चला। रणधवल पैदा हुआ। उसका समाचार भेजा गया। रणधवल का समाचार-वाहक पहले पहुंचा। उसे ही पहले पैदा हुआ मान लिया गया।

जगदेव और रणधवल की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा में जगदेव के विशेष बल से युवराज के आतंकित होने के कारण—

(अ) जगदेव ने देवी के बल से एक भारी तोप उठा कर उसकी साँग बनवाई और उसे राज-दरबार में गाड़ दिया।

(आ) रणधवल ने जो भारी तवे बनवाये उन्हें सांग से वेध दिया।

(इ) रणधवल ने जो हाथी भेजे उन्हें मार दिया। यह आतंक फैला कर वह वहां से चल दिया।

जगदेव के प्रबल बल को देख कर उसके आतंक को घर से दूर करने के लिए उसे प्रेरित किया गया कि वह अपने पिता की "बंदी" छुड़ाये।

(अ) पिता कनवज की रानी से विवाह करने गये थे और बंदी बना लिए गये थे।

(आ) पिता किसी शाहंशाह के सामन्त थे। उसने खिराज न देने के कारण उन्हें नजरबन्द रखा था।[1]

इस प्रकार और भी आगमों पर विचार किया जा सकता है। पर ऐसे आगमों का विवेचन हमें कथा रूपों पर भी विचार करने की प्रेरणा देगा। जगदेव का उदाहरण लें तो मिलेगा कि घर त्याग एक भूमिका के रूप में है। जगदेव जैसा नायक घर छोड़कर बाहर चला तो वह चलता चलेगा और मार्ग में पराक्रम के कार्य करता चलेगा। अब यह एक कथा-रूप या कथा-चक्र बन गया। रिसालू कथा चक्र की भांति विक्रम या पराक्रम कथा-चक्र यहाँ प्रस्तुत हो गया है। ऐसे

---

[1] यह कल्पना पुत्र पैदा होने के समय से विषेषतः सम्बन्धित है, बंधन-मोक्ष के लिए जाने से नहीं। यद्यपि पुत्र-जन्म के उत्सव से प्रसन्न हो बंधन-मुक्त किये जाने की कल्पना से पिता की मुक्ति और पुत्र का सम्बन्ध इसमें भी है।

कथा-रूपों में पराक्रमों का अध्ययन अपेक्षित है। अब देखा जाय कि जगदेव ने क्या पराक्रम किये ? कुल पराक्रम यों दिये जा सकते हैं–

(१) सिंह को मारा – आ, ई,

(२) दांने को मारा – अ, ई,

(३) दूसरा नकली चांद चमकाया–अ,

(४) काल भैरव या कालदेव को परास्त किया–आ, इ उ ओ

(५) चारणां कंकाली को दान में सिर दिया–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ओ

(६) अपने समस्त कुटुम्ब की वलि देवी को दे, अपने आश्रयदाता राजा की आयु बढ़ायी–आ,

(७) सूरसेन के कावरियों का कर्ज चुकाया–ई

(८) एक राजा के सूखे बाग को हरा कर दिया–ई

(९) कनवज की रानी को बल से तथा पहेली बताकर परास्त किया, पिता को मुक्ति दिलायी, (पिता से उसका विवाह कराया)–ई, ए

(१० एक सूखे ताल में अपनी वलि देकर उसमें पानी परिप्लावन किया–ई

(११) एक राजकुमारी के मुख से रात को नागिन निकलती थी, वह एक मनुष्य को रोज डसती थी। जगदेव ने उस नागिन को नष्ट किया–ई

(१२) एक दांने को दान में अपना सिर दिया–ई

(१३) काली-पीली मिली सरसों एक रात में अलग-अलग करायी–ई

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मूल घटना शीश दान की है। यही घर छोड़ने के बाद का उसका मुख्य पराक्रम था। अन्य सभी पराक्रम बाद में मिलते गये।

जगदेव की लोककथा के जो विविध रूपान्तर ऊपर दिये गये हैं, उनकी सामान्य तुलना से ही स्पष्ट है कि विविध अभिप्रायों की द्योतक विविध लोककथाओं में विविध विकारों के ऊपर जो कारण बताये गये हैं उनके अतिरिक्त कुछ बातों में स्पष्ट ही लोकमानस की एक अनोखी प्रतिक्रिया झलकती है।

इसमें सबसे अधिक आकर्षक तत्व है राजा का नाम। इस नाम ने इस कथा में कई चमत्कार पैदा किये हैं। राजा का नाम "जय" से आरम्भ अवश्य होता है, यह बात प्रत्येक लोककथा से विदित होती है। किन्तु आगे यह नाम क्या था इसमें लोकमानस ने अपनी-अपनी जानकारी से काम लेकर उसे पूर्ण किया है।

एक क्षेत्र ने उसे जयसिंह माना। इस जयसिंह नाम से एक ओर तो जगदेव

सिद्धराज जयसिंह से सम्बन्धित हुए। इस कथा में जगदेव गुजरात पहुँचे हैं।

दूसरे क्षेत्र को जयसिंह जयपुर के राजा ही प्रतीत हुए और जगदेव को जयपुर जाना पड़ा है। जयसिंह की ज्योतिष विषयक प्रसिद्धि भी इस कथा में नकली चन्द्रमा के निर्माण के रूप में सम्मिलित हो गयी।

तीसरे को जय के कारण जयचन्द्र का ही स्मरण हुआ और जगदेव को कन्नौज जाना पड़ा है। उसके बाद भी उत्साही कथक्कड़ उसे बंगाल और उससे आगे भी ले गया है।

जयसिंह और जगदेव एक ही राजदरबार में थे, तभी चारणी द्वारा दोनों के प्रति भिन्न आचरण की घटना घटी। इसमें कई सम्भावनाएं प्रस्तुत कर दीं—

(अ) जगदेव इतना प्रबल सिद्ध हो चुका था कि जब वह दरबार में गया तो जाकर सीधे जयसिंह के आधे सिंहासन पर बैठ गया। किसी ने चूं तक न की।

(आ) जगदेव ने जयसिंह पर ऐसा उपकार किया था कि उसके बदले में उसने अपना आधा राज्य उसे दे दिया था, और अपनी लड़की का विवाह कर दिया था, जिससे जगदेव जयसिंह के साथ आधे सिंहासन पर बैठा था।

(इ) जगदेव को जयसिंह ने नौकर रख लिया था। वह प्रतिदिन दरबार में जयसिंह को प्रणाम करने जाता था।

(ई) जयसिंह और जगदेव भाई-भाई थे। साथ-साथ राज्य करते थे। (इसका मूल इतिहास में दिखाई पड़ता है। जगदेव का एक निकट पूर्वज जयसिंह भी था।)

जगदेव पहले पैदा हुआ फिर उसके जन्म का सामाचार पिता के पास देर से पहुँचा—इसके लिए ये सम्भावनाएँ ग्रहण की गयीं—

(अ राजा कहीं बाहर थे—जगदेव का समाचार वाहक पोस्ती था, धीरे-धीरे गया। रणधवल का समाचार वाहक तेज था।

(आ) राजा सो रहे थे—जगदेव वाला सिरहाने खड़ा हुआ। रणधवल वाला पाँयत खड़ा हुआ।

जगदेव ने स्वेच्छया अपना सिर बलि दिया। इसने ये कल्पनाएँ प्रस्तुत कीं—

(अ) चारणी को सिर बलि दिया। दाने को मांगने पर सिर दिया।

(आ) राजा जयसिंह की आयुष्य बढ़ाने के लिए और राज्यलक्ष्मी स्थिर रखने के लिए अपनी, अपने लड़के, अपनी लड़की तथा अपनी पत्नी की स्वेच्छया

वलि चढ़ायी। यह कथा सरित्सागर के वीरवल की भी कहानी है। इस वलि के भाव ने अन्य स्वेच्छया "वलि" जैसे पराक्रम के लिए होने वाली सम्भावनाओं को उपस्थित किया।

(इ) दांने के लिए राज्य से एक वलि। एक ब्राह्मणी के इकलौते पुत्र की वारी। जगदेव उसी के यहां अतिथि। जगदेव ने उसके पुत्र को वचाने के लिए स्वेच्छया उसके स्थान पर दांने के लिए जाने का निश्चय किया–परिणाम में दांने को मारना। यह जीमूत वाहन और भीम की एकचका की घटना की कहानी है।

(ई) तालाव में पानी आने के लिए अपने सिर की वलि।[1]

(उ) काल भैरव या कालूदेव को परास्त करने की घटना की सम्भावना भी इसी के सहजातक है।

(ऊ) राजकुमारी के मुख से निकलने वाली नागिन को मारकर प्रतिदिन एक युवक की मृत्यु को रोकना। विल्कुल (अ) का ही रूप है। दांने के स्थान पर राजकुमारी तथा उसके मुख को शेर को मारने की घटना भी दांने को मारने की घटना से सूझ सकती है। एक सूखे वाग को हरा किया।

देवी की कृपा के चमत्कार– देवी की कृपा के चमत्कार से तो सामान्यतः साम्प्रदायिक दृष्टि वाले कथा-रूप अधिक ओतप्रोत हैं। इस साम्प्रदायिक दृष्टि का भी मूल विन्दु तो वही चारणी देवी को शीश-दान विदित होता है जो प्रायः सभी कथाओं में विद्यमान है। इस घटना से जो सम्भावनाएं हुईं, उन्हें इस क्रम से रख सकते हैं–

(i) जगदेव ने देवी को शीश-दान दिया। (ii) क्यों दान दिया ? (iii) देवी ने जगदेव से शीश क्यों मांगा?

(अ) वह देवी का भक्त था ?

(i) उसने घर में ही देवी सिद्ध कर ली थी।

(आ) देवी अपने भक्त का यश वढ़ाना चाहती थी और प्रतापी से प्रतापी राजा को भी अपने भक्त के समक्ष नीचा दिखाना चाहती थी।

(इ) देवी माता काल भैरव के हठ को भी पूरा करना चाहती थी।

(i) हठ पूरा करके भी वह काल भैरव से वढ़कर ही अपने भक्त को सिद्ध करना चाहती थी।

---

[1] यह एक अत्यन्त व्यापक कथारूढ़ी है। इसके लिए देखिये–भारतीय साहित्य, अंक जुलाई, वर्ष-३ अधिद्वादशी पर निवंध।

वह देवी का भक्त था और देवी उसे सिद्ध थी तो देवी ने उस पर क्या-क्या कृपा की—

(१) देवी ने उसे अपार बल दिया।

(अ) इतनी भारी तोप देवी की कृपा से उसने उठायी। (आ) ऐसी सारी सांग उसी की कृपा से चलायी (इ) तवे वींधे (ई) ऐसे अन्य पराक्रम, दांने को मारने के, सिंह को मारने के, कालू को पछाड़ने के, देवी की कृपा से सिद्ध हुए।

(२) देवी ने उसे पुनरुज्जीवन दिया।

(अ) समस्त कुटुम्ब की बलि चढ़ाने पर देवी ने सबको पुनरुज्जीवित किया (आ) चारणी को शीश बलि देने पर पुन शीश प्रदान देवी ने किया (इ) तालाब पर बलि चढ़ाने पर पुनः शीश देवी ने प्रदान किया।

(३) देवी ने उसे अन्य संकटों से भी उबारा।

(अ) कावरियों की समस्या से खड़ी होने वाली विपत्ति से उबारा (आ) कनवज की रानी को पहेली का उत्तर देवी की कृपा से (इ) बंगाल मेंढ़ा बना लिया गया तो देवी ने ही उद्धार किया।

इस प्रकार एक बिन्दु से देवी की कृपा से विविध रूपों को दिखाने के लिए सम्भावित वृत्तों का समावेश भी इस वृत्त में होता गया। इस प्रकार लोककथा के रूप में ही एक भिन्नता उपस्थित हो गयी। जो मूलतः एक त्यागमयी घटना का नायक था वह अनेकों त्यागमयी घटनाओं का नायक बन गया, और वह लोक-कथा जो एक घटना पर केन्द्रित कथा थी, वह घटना-मालाओं की कथा बन गई और सामान्य कथा-चक्र से निकल कर पराक्रममाला कथा-चक्र के परिवार में सम्मिलित हो गई।

पराक्रम-माला कथा-चक्र वाला रूप वस्तुतः इस लोककथा को व्रज में ही मिला है। प्रायः अन्य सभी रूपों में दो-तीन पराक्रमों का ही अधिकाधिक समावेश हुआ है, किन्तु व्रज ने बारह मवासे खड़े कर दिये हैं। व्रज के इन बारह मवासों में भी कई तो एक दूसरे के अनुकूल हैं। केवल कुछ रूप बदलकर अलग स्थान उन्हें दे दिया गया है।

(१) सिरदान दान देने की दो कथाएं—

(अ) चारणी को सिर देना (आ) दांते को सिर देना।

(२) दूसरे के उपकारार्थ बलि—

(अ) देवियों को बलि देना, राजा की आयुष्य के लिये (आ) तालाब को

बलि देना कि उसमें जल आ सके।

(३) उपकारार्थ हिंस्रों का संहार—

(अ) सिंह को मारा (आ) दाने को मारा (इ) राजकुमारी के मुख से निकलने वाली नागिन को मारा (ई) काल भैरव को परास्त किया।

इन तीन कथाओं से आठ कहानियां हो गयीं। शेष चार कथाएं, घटनाएं, भवा से स्वतन्त्र रूप से आये हैं—

(अ) नकली चांद चमकाना (आ) कावरियों का कर्ज चुकाना (इ) सूखे बाग को हरा करना (ई) पहेली बताकर रानी को जीतना (उ) काली-पीली सरसों को अलग करना।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकमानस एक सामान्य बिन्दु से तजनुकूल विविध लोककथाओं को किस प्रकार एक कथा में जोड़ लेता है।

ऊपर जिन पराक्रमो का उल्लेख हुआ है, उसमें कुछ संस्करणों में कुछ और भी पराक्रमों का सन्निवेश है।

राजा के यहां से जगदेव फिर धार को लौटा।

धार को क्यों लौटा—

(i) जगदेव के यश से, अपमानित हो राजा उससे द्वेष मानने लगा। इसलिए जगदेव धार लौटा।

(ii) जगदेव एक छोर में चलकर देश के दूसरे छोर तक पराक्रम दिखा चुका तो धार को लौटा।

(iii) जगदेव के यश के साथ धार या मालवा का यश भी बढ़ा तो राजा ने जगदेव को नीचा दिखाने के लिए धार या मालवा पर आक्रमण करने का विचार किया, जिससे जगदेव ने धार लौटने का निश्चय किया।

जब धार को लौट रहा तो मार्ग में देखा कि—

[i] एक मिट्टी का गढ़ धार के अनुरूप बनाया जा रहा था।

[ii] विदित हुआ है कि राजा ने धार को ध्वस्त करके ही अन्न-जल ग्रहण करने का निश्चय किया है। अतः यह नकली धारागढ़ बना कर राजा ध्वस्त कर देगा और अन्न-जल ग्रहण कर सकेगा।

जगदेव उस गढ़ में घुस गया। देवी से प्रार्थना करके उसे लोहे का गढ़ बना दिया और अकेला उसकी रक्षा करने लगा।

[iii] इस समाचार को सुन कर राजा हताश हुआ। यहां भी यह देखने

को मिलता है कि इतिहास की कृत्रिमगढ़ की कहां की कहानी कहां लोकमानस ने जोड़ दी है। कहानी चित्तौड़ के राणा की तथा बून्दी के गढ़ की है। मैथिलीशरणजी ने 'विकट भट' में यह भी दी है।

जगदेव की कहानी में आगत एक अभिप्राय, कालीपीली सरसों को अलग करना कम से कम दूसरी शती ईस्वी में यूरोप में 'क्यूपिड तथा साईक' की कथा में मिलती है। इसमें क्यूपिड (कामदेव) को वर रूप में पाने के लिए साईक को क्यूपिड की मां वीनस द्वारा कितने ही कठिन कार्य करने को दिये जाते हैं। उनमें से प्रथम है—"They took a great quantity of wheat, barley, millet, poppyseed, peas, lentils and beans, mingled these, all together in heap and commanded the girl to sort them before night. Psyche was aided by an army of ants."

यद्यपि क्यूपिड और साईक पुरुरवा और उर्वशी की वैदिक कहानी का ही उलटा रूप है। पुरुरवा उर्वशी में पुरुरवा मानव है। उर्वशी देवलोक की अप्सरा है। उधर क्यूपिड देवता है। साईक मानवी है। पुरुरवा उर्वशी को प्राप्त करने को प्रयत्नशील है। यहां साईक क्यूपिड की तलाश में है। अतः कहानी का मूल रूप वैदिक काल तक पहुँचता है, किन्तु मिले हुए विविध अन्नों के ढेर को अलग-अलग करने का अभिप्राय वैदिक मूल में नहीं। फिर भी यूरोप की दूसरी शताब्दी से पूर्व का तो होगा ही।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजस्थानी लोकसाहित्य अत्यन्त समृद्ध है। ऐसा कोई स्तर नहीं जो लोकवार्त्ता की दृष्टि से यहां न मिलता हो।

सभी स्तरों पर होते हुए भी तथा सभी प्रकार और सभी रूप की लोकवार्त्ता प्राप्य होते हुए भी इस क्षेत्र को प्रधानतः वीरगाथाओं की भूमि कह सकते हैं। यह वीरों की भूमि है। वीरों का वैशिष्ट्य उनका शौर्य उन्हें श्रद्धा का पात्र बना देता है। पराक्रम करना वीरों का सामान्य धर्म हो जाता है। पराक्रम वरण करने वाला पराक्रम व्यवसायी ही हो जाता है। उसका प्रत्येक पराक्रम उसे अधिक से अधिक श्रद्धा का पात्र बनाता चला जाता है। शनैः शनैः उसे देवत्व प्राप्त हो जाता है। राजस्थान के इन पराक्रमावतारों में हमें गौरक्षा और वचन रक्षा के लिए प्राण होमने की निष्ठा विशेष मिलती है। गूगाजी, तेजाजी, पाबूजी; ये तीन तो गौरक्षा के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने को तैयार रहे हैं। तीनों ने गायों की रक्षा की है। गाय की रक्षा के जितने प्रकार के रूप हमें भारतीय संस्कृति में मिलते हैं अथवा भारत में कहीं भी मिलते हैं, उनके सहायक राजस्थान में भी मिल जाते हैं। शत्रुओं, चोरों, दस्युओं, बधकों से गाय की रक्षा करने वाले देवता हो ही गये हैं;

जैसे प्राचीन साक्षी से गायों की रक्षा करने वाला इन्द्र गायों का पोषण और सेवा तथा रक्षा करने वाला दिलीप गायों का पोषण तथा रक्षा करने वाला कृष्ण, विराट की गायों की रक्षा करने वाले अर्जुन देवता अथवा श्रद्धा के भाजन बने हैं वैसे ही राजस्थान के ये वीर बने हैं। गाय की रक्षा का और सेवा को जो वृत्त दिलीप से जुड़ा हुआ है, शिवलिंग अथवा सर्प के बिल दूध छोड़ने वाली गाय का वृत्त यहां तेजाजी के साथ भी मिलता है।

वचन रक्षा इन वीरों का और भी दृढ़ व्रत है। तेजाजी में वचन रक्षा का प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है। वे सर्प से वचनबद्ध हैं, अतः समस्त शरीर गाय की रक्षा में क्षत-विक्षत है, पर वे वचन रक्षार्थ सर्प के पास जाते हैं। सर्प उन्हें डस लेना चाहता है। पर कहां, अक्षत स्थान तो केवल जीभ ही मे था। वे जीभ निकाल लेते हैं सर्प उन्हें डस लेता है।

वचन-रक्षा के साथ सर्प यों भी वीरों के साथ मिलता है, जैसे सर्प वीरवार्त्ता का एक अनिवार्य अंग ही हो। राजस्थान में यह मिलता है। विशेषत गोगाजी और तेजाजी के साथ। घोड़ा भी वीर का अनिवार्य साथी है। इस वीर-पूजा में हमें प्रायः मृत्यु का भी बोध मिलता है। पचवीर अथवा पन्च पीर (?) का सहयोग भी यहां के वीर को मिलता है। इस तथ्य के कारण इस वीर-पूजा को प्रेत-पूजा अथवा मृतात्मा की पूजा भी माना जा सकता है। गोगाजी के वृत्त में प्रेतात्मा के जैसा रूप मिलता भी है। मृत्यु अर्थात भूमि में समा जाने के उपरान्त भी वे अपनी पत्नी के पास प्रेत के रूप में आया भी करते थे। पर राजस्थान में वीर-पूजा के भाव के आधार को समग्र रूपेण लिया जाए तो उसे प्रेत-पूजा नहीं माना जा सकता।

प्रेत-पूजा के कुछ तत्व तो दिखाई पड़ते हैं तथा ये सभी 'सिर आते' हैं। पर सिर तो आते भैरव, नृसिंह तथा देवी भी। इनमें से कोई भी प्रेत नहीं है। अतः सिर आना ही केवल प्रेत-पूजा का लक्षण नहीं माना जा सकता। प्रेतात्मा प्रायः हीन पुरुष को ही आतंक से काम लेकर पूजा मांगती है। राजस्थानी वीरों के चरित्र उदात्त और सात्विक थे। उनका जीवन शुद्ध शौर्य का था, केवल परोपकारार्थ।

गोरखनाथ का इन वीरों से संपर्क रहा। ये वीर कहीं किसी न किसी रूप में गोरख से मिले हैं और उनके शिष्य बने हैं। गोरखनाथ इन नायकों को, वीरों को उस दैवी पुरुष की भांति मिलते हैं जो नायक-वीरों को सिद्धियां प्रदान करता है, जो उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्रदान करता है।

"Not infrequently, the supernatural helper is masculine in

form. In fairy lore it may be some little fellow of the wood, some wizard, hermit, shepherd or smith, who appears to supply the amulets and advise that the hero will require. The higher mythologies develop the race in the great figure of the guide, the teacher, the ferrymen the conductor of souls to the after world. In classical myth this is Hersnes-Mercury, in Egyptian usually Thoth (theives God, the Labours God in Christian the Holy Ghost.

वीरों के स्वरूप में हमें शैव तत्व प्रतीत होता हैं। शैव तत्व का संबंध गोरखनाथ से ही नहीं वरन सर्प अथवा नाग से भी प्रतीत होता है। गोगाजी तो संभवत: नाग के ही अवतार हैं। गुजराती कहानी में नाग उनके साथ ही पैदा होता है। तेजाजी दक्षिण की कहानी की भांति नाग को दूध पिलाते हैं तथा नाग से वचन बद्ध होकर वे उसके पास आहत होते हुए भी आते हैं कि वह उन्हें डस ले। गाय का स्वयमेव नाग को दूध छोड़ना या पिलाना जैसे शिव-लिंग पर दूध छोड़ना-इन सभी के समीकरण से शिव तथा नाग अथवा सर्प का भी समीकरण होता है तथा गोरखनाथ का भी नागों से सम्बन्ध है ही। नागों का सम्बन्ध एक ओर ऋतुओं विशेषत: वर्षा से भी है। दूसरी ओर ये जीवनी-शक्ति के भी प्रतीक हैं—कुण्डलिनी को सर्पिणी के रूप में ही माना गया है। मैरिया लीच का फोकलोर डिक्शनरी में नाग विषयक टिप्पणी का यह अंश द्रष्टव्य है—

"The connection of the Nagas with the weather, especially with rain, is emphasized by a Nepalese legend. King Gunkam Dewa conquered the snakes. Each gave the king a likeness of himself drawn with his own blood and promised that worship of the pictures would cause plentiful rains Pictures of Nagas are still worshipped in time of drought. Once St. Gorakhnath shut up nine Nagas in a hillock and a twelve years drought resulted. In modern Hindu belief Karkataka is a king of Nagas who control weather.

The worship of the surpent, symbolizing the life force is wide spread in India".

युद्धवीरों-नायकों का घोड़ों से सम्बन्ध तो स्वाभाविक ही है। राजस्थान में घोड़ा ही समझदार और तेज तथा वलवान नहीं माना गया, ऊंट को भी यही स्थान मिला हुआ है।

इस समस्त विवरण तथा विवेचन से वीर पूजा के इष्ट वीरों का शौर्य तथा उनकी करुणा तथा पराक्रम सभी जन-जीवन के कल्याण के लिए समर्पित प्रतीत होता है। फलतः राजस्थानी लोक और उसकी अभिव्यक्ति भी इन पर देवता के पूजा-भाव से समर्पित है। समग्र राजस्थानी लोक की साहित्य तथा कलागत सामग्री का आज भी पूरा लेखा-जोखा नहीं हो पाया। यों तो सामग्री सर्वत्र ही अनन्त राशि के रूप में विद्यमान मिलती है किन्तु इस सामग्री में ऐसा वैविध्य है और जीवन की रहस्यमय गहराइयों से इसका इतना प्रभूत सम्बन्ध है कि मेरी दृष्टि में बिना सम्पूर्ण सामग्री को व्यक्तिगत रूप दिये लोकवार्त्ता तत्व का मौलिक निरूपण असंभव है।

००

7

जाहरपीर : गुरु गुग्गा

दिसम्बर १९५६ में 'जाहरपीर : गुरु गुग्गा' पर एक विस्तृत अध्ययन प्रकाशित किया गया था। सन् ५६ के बाद कुछ और सामग्री उसी अध्ययन में सहयोग देने की दृष्टि से प्राप्त हुई है। उसी को यहां दिया जा रहा है।

'मुहणोत नेणसी की ख्यात' (खण्ड २, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) में 'पाबूजी री बात' में उल्लेख है कि पाबूजी की भतीजी, कड़ोजी की पुत्री केलमदे से गोगाजी का विवाह हुआ था। उन्होंने दहेज में डोंडे की सांडिनियां (ऊँटनियां) लाकर दी थीं। पाबूजी तथा गोगाजी तभी मिले थे। एक ने दूसरे को अपने चमत्कार दिखाये। तब दोनों एक दूसरे को मानने लगे थे।

बीकानेर राज्य के इतिहास (म. म. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा) में उल्लेख है कि—

गोगाजी का स्वर्गवास जिस स्थान पर हुआ था उसे गोगामेंडी[1] कहते हैं। बीकानेर से ११८ मील उत्तर-पूर्व में नौहर नामक एक प्राचीन स्थान है, उसमें १६ मील पूर्व में गोगामेंड़ी नामक स्थान है. जहां भाद्रपद के कृष्ण पक्ष में गोगाजी की स्मृति में बड़ा भारी मेला लगता है। इसमें १०- ५ हजार आदमी एकत्रित होते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि एक वार यहां की यात्रा कर लेने पर सर्पदंश का भय नहीं रहता।

बीकानेर से १२४ मील उत्तर-पूर्व में ददरेवा गांव का उल्लेख (उक्त इतिहास में) है। चौहानों का राज्य १३ वीं शताब्दी में, इस ददरेवा में था। ये अपने को राणा कहते थे। बीकानेर की ख्यातों में इसे गोगादे सिद्ध का जन्म-स्थान बताया है।

Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, New Serie's, Vol. XVI-1920 : पृष्ठ २५७ पर उल्लेख है कि—

'ददरेवा से एक लेख खोज में मिला है कि १२०० संवत् की शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह स्थान चहवाण राजाओं की राजधानी था। ये राजा 'राणा' की उपाधि धारण करते थे। इस प्रकार यह लेख अप्रत्यक्ष रूप से गोगादे पीर संबंधी बीकानेरी किंवदन्ती की पुष्टि करता है। बीकानेरी किंवदन्ती के अनुसार गोगादे पीर ददरेवा के चहवाण राजा के घर में पैदा हुआ था। मैंने एक ऐसी प्रति (ग्रन्थ की) भी देखी है जिसमें गोगादे के पिता का नाम 'जेवर' बताया गया है। यह 'राणा' की उपाधि धारण किये हुए था। उक्त लेख में एक कूप खुदाये जाने का उल्लेख है और इसमें मंडलेश्वर गोपाल के पुत्र राणा जयतसीह का उल्लेख है।

---

[1] गोगामेंड़ी के सम्बन्ध में एक समाचार १३ मार्च १९५६ के सैनिक में प्रकाशित हुआ था जिसे यहां उद्धृत किया जाता है।

हिन्दू मन्दिर में मुस्लिम पुजारी

जयपुर, १२ मार्च। सूरतगढ़ (राजस्थान) के निकट एक हिन्दू मन्दिर के पुजारी मुसलमान हैं जो देवता की पूजा करते हैं और भक्तों से नैवेद्य ग्रहण करते हैं। ऐसा वे सदियों से कर रहे हैं।

यह मन्दिर गोगामेड़ी में है, जहां गोगाजी की मूर्ति है, जो एक राजपूत सन्त हो चुका है।

इसका काल संवत् १२७० दिया गया है। अतः यह सत्य है कि ददरेवा में चहुवाणों का शासन था। और यह जयतसीह गोगादे का कोई पूर्वज प्रतीत होता है।[1]

पंचपीर की परम्परा वहुत प्राचीन तथा वहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली मिलती है। हमने पहले जो जाहरपीर के परिवार के पंचपीर वताये थे. उनसे कुछ भिन्न उसी परिकर का एक पता 'इण्डियन ऐंटीक्वरी' में प्रकाशित आर. सी. टेम्पल महोदय के 'फोक ईटिमालिजी' (लोक व्युत्पत्ति) विषयक लेख से चलता है। टेम्पल महोदय ने वताया है कि करनाल तथा अम्वाला जिले में जाहरपीर के साथ नरसिंह, कालेसिंह तथा जौरसिंह की पूजा होती है। ये सभी दईदेवता माने जाते हैं. और नाग कहे जाते हैं। जौरसिंह को गूगा का पिता जेवर या राजा जेवर वताया जाता है। टेम्पल महोदय ने टिप्पणी में यह भी वताया है कि गुरु गुग्गा

---

[1] Next to the above-mentioned finds in importance and perhaps even more interesting is the discovery made at Daderevo of an inscription which proves that in the later half of the Savat Century 1200 this place was the seat of a Chahavana chief who bore the title of Rana, and thus indirectly confirms the truth of the Bikaneri tradition concerning Gogade Pir,according to the tradition, Goga De was born at Dadrevo of a Cahavana chief, who was ruling over the place, and one manuscript examined by me in Jodhpur goes further and says that this chief father of Gogade, was called Jevara (sio)and bore the title of rana Now the inscription mentioned above which incidently records the digging of a well, contains the name of a rana Jayat Siha the son of Mandaleshwara Gopala, and gives for him the date Samvat 1270. It is therefore true that a Chahavan Rana was ruling over Dadrevo in ancient days and in the light of the truth this particular it is reasonable to conclude that the Bikaneri tradition concerning the birth of Gogade at Dadrevo is accurate and that the rana Jayata Siha mentioned in the inscript is probably one of Gogade's ancestors.

—Tessitory

की मौसी के पुत्र अरजन तथा सर्जन जौरा या जोल्ला थे। कभी-कभी ये दोनों ही जौर नाम से पूजे जाते हैं।[1]

स्पष्ट है कि इस उल्लेख में जो पंचपीर हैं उनमें जाहरपीर तथा नरसिंह को छोड़ तीन बिल्कुल नये हैं और ये मथुरा की परम्परा से नहीं मिलते—कालेसिंह, बूरेसिंह तथा जौरसिंह में जौरसिंह की तो कुछ व्याख्या मिलती भी है, जिससे ये जाहर के पिता या मौसेरे भाई ठहरते हैं। पर कालेसिंह या बूरेसिंह कौन हैं? मथुरा परम्परा में पाँचों पीरों में एक घोड़ा अवश्य रहता है और यह घोड़ा वही है जो जाहरपीर के साथ-साथ एक ही समय पैदा हुआ था और जाहर के साथ ही भूमि में समा गया था। टाड महोदय के अनुसार यह घोड़ा 'जवार' कहलाता था। 'जौ' से उत्पन्न होने के कारण यह 'जवार' भी जौर हो सकता है।

गोगा पीर का भंगियों या महतरों से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह पहले बताया जा चुका है। इस सम्बन्ध में चिरकीन महोदय की भी कुछ उक्तियां मिलती हैं। लखनऊ के इस अनोखे शायर ने गोगाजी को भंगियों का देवता बताया है। वे कहते हैं—

फातिहा गूगल जला के देंगे गूगा पीर का,
कम नहीं गैरों से गर उस आफते-जां का तपाक।

+ + +

चलेंगे देखने जिस रोज गोगा पीर का मेला,
बनेगा मेहतरों का टोकरा तख्ते रवां अपना।

पहले हम गोगा नाम के लगभग तीन भिन्न-भिन्न वीरों का परिचय दे चुके हैं। एक तो ददरेवा के गोगा, यही हमारे नायक जाहरपीर हैं। दूसरे

---

[1] R. C. Temple-Folk Etymology-Indian Antiquary. In the Karnal and Ambala districts worshipped along with Guga Pir, Nar-Singh (Narsinha), Kale Singh & Bure Singh is found Jaur Singh. Nar Singh is of course a curruption of the name of the man-lion avatar of Vishnu and Bure Singh and Kale Singh appear to be synonymous with him. Jaur Singh is explained to be Jewar or Raja Jewar, the usual name of Guga's father. All the above are worshipped as godlings and called nags or serpent. Note—Arjan and Sarjan the jora or twin half brothers of Guga are sometimes worshipped as Jaur.

वंशभास्कर के अजमेरी चौहानों के गोगराज। वंशभास्कर कर्त्ता ने इन्हीं को जाहरपीर माना है। तीसरा गोगाराव सांभर के चौहानों वाला।

इनके अतिरिक्त भी एक और गोगाजी मिलते हैं। इनका परिचय हमें 'वीरमायण' ग्रन्थ से मिलता है। यह ग्रन्थ राणा वीरम के सम्बन्ध में 'बादर ढाढ़ी' का लिखा हुआ है। ये वीरमजी राठौर थे। वीरमजी राव सलखा के पुत्र थे। सिंध के जोइया मुसलमान गुजरात के बादशाह महमूद के खजाने को लूटकर मल्लीनाथजी की शरण में आये। वीरमदेव की पत्नी मांगलियाणी ने इन जोइयों के बड़े भाई दला को राखीबंद भाई बना लिया। एक बछेड़ी को लेकर मल्लीनाथ और जोइयों में मनमुटाव हो गया। जोइये बछेड़ी देना नहीं चाहते थे। एक षड्यंत्र में मारे जाने के भय से जोइये दले के साथ खेड में वीरम के पास आये। वीरम ने इन्हें सिंध में पहुँचा दिया। वीरम ने कुंडल में भाटियों की कन्या से विवाह किया। इन्हीं भटियाणी से गोगा का जन्म हुआ। वीरम खड़े लौटे पर अपने भाई जगपाल के वैर के कारण वहां ठहर नहीं सके। ये इधर-उधर भटक कर सिंध में जोइयों की शरण में आये। जोइयों ने इन्हें १२ गांव दिये। यहां रहते-रहते जोइयों और वीरमदे में वैर के बीज पड़े और बैर बढ़ता ही गया। आखिर दोनों में युद्ध ठन ही गया। वीरमदे इसमें मारे गये। इनके एक पुत्र चूंडे ने युक्ति से मण्डोवर में अपना राज्य स्थापित कर लिया। वहीं उसके तीनों अन्य भाई देवराज, जयसिंह और गोगादे उससे जा मिले।

गोगाजी ने यहां मंडोवर के भौमिया देव को पछाड़ा और उसको दी जाने वाली बलि बन्द करा दी। इस भौमिया देव ने गोगाजी को जालंधरनाथजी से मिलाया। जालंधरनाथजी ने गोगाजी को रलतली तलवार दी।

एक अवसर पाकर गोगाजी अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने जोइयों पर चढ़ दौड़े और दला को मार डाला। दला की पुत्री देऊ ने तिलक लगाकर गोगा को भाई बना लिया। इसी समय दला के पुत्र हांसू ने जोइयों को समाचार दिया पर जब तक जोइये गोगा पर चढ़ कर आये तब तक वह लोप हो चुका था। यह पता लगाने पर कि गोगा लछूसर तलाब पर है, जोइयों ने उन्हें घेर लिया। गोगाजी रोटी बना रहे थे, घोड़ा उनके हाथ नहीं आया। उन्हें पैदल ही लड़ना पड़ा जिसमें उनके पैर कट गये। उन्होंने जालंधरनाथ को याद किया। जालंधर-नाथ ने प्रकट होकर इनकी काया अमर कर दी। पैर जोड़ दिये पर पैर उल्टे जुड़ गये। जालंधरनाथ इन्हें दसवां सिद्ध मानकर अपने साथ ले गये।

मारवाड़ के इतिहास में रेऊजी ने गोगा का जन्म सं० १४३१ और मृत्यु सं० १४५९-६० में मानी है। इन गोगाजी के ऐतिहासिक पुरुष होने

में कोई संदेह नहीं।

इस कथानक में और जाहरपीर के कथानक में बाह्यतः तो कोई साम्य नहीं प्रतीत होता पर कुछ मोटिफ या अभिप्राय अवश्य सामान्य दिखायी पड़ते हैं। जैसे:—

(अ) जोइयों और वीरमजी में अन्तिम युद्ध गायों के कारण हुआ था। जोइयों ने वीरम की गायें घेर ली थीं। गायों के लिए होने वाले इसी युद्ध में वीरमजी काम आये।

(आ) गायों को घेरने वाले जोइयों से ही (पिता का वैर लेने के लिए) गोगाजी ने युद्ध किया और उन्हें मार डाला।

(इ) दोनों पर ही नाथ की कृपा थी। इस गोगा पर जालंधरनाथ की व जाहर गोगा पर गोरखनाथ की।

(ई) जोइयों और गोगा का युद्ध मुसलमानों और गोगा का युद्ध था, क्योंकि जोइये सिंध के मुसलमान थे।

(उ) दोनों ही लुप्त हो गये। एक को जालंधरनाथ साथ ले गये दसवां सिद्ध बना कर। दूसरा पृथ्वी में समा गया।

फिर भी यह स्पष्ट है कि ये राठौर गोगा चौहान गोगा से भिन्न हैं।

७. गोगाजी का यश गायों की रक्षा के लिये प्राण की बाजी तक लगा देने में है। उनके पूजे जाने में इस गो-रक्षा का भी एक बड़ा हाथ रहा है। वस्तुतः शत्रु द्वारा गायें घेरे जाने और उन गायों का उद्धार शत्रु को मार कर करने के वीरत्व का सम्बन्ध देवत्व से वैदिक युग से ही मिलता है। इन्द्र का सबसे बड़ा पराक्रम गायों का उद्धार ही ऋग्वेद में बताया गया है। महाभारत में कौरव, विराटनगर के राजा की गायें घेर ले गये थे। अर्जुन ने उनका उद्धार किया था। कृष्ण की गोकुल लीला में भी गोपों की सब गायें चुरा ली गई थीं, उनका भी उद्धार कृष्ण ने किया था। इसी प्रकार इतिहास में हमें कितने ही राजस्थानी वीर गाय की रक्षा करने के कारण देवत्व को प्राप्त होते मिलते हैं। पाबूजी, तेजो, रामदेव आदि कितने ही वीर इस कोटि में रखे जा सकते हैं। अलीगढ़ जिले के गंगारी कस्बे में गंगी पंथ का देवता मैंकासुर भी गो-रक्षक है। गंगी की गायें घेर ले गये थे उसके शत्रु, और उनका उद्धार किया था मैंकासुर ने, उसमें उसने अपने प्राण भी गंवा दिये थे। इस प्रकार गौ-रक्षा और देवत्व में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी पड़ता है।

हमारे नायक गोगाजी पर 'गोगाजी का रसावला' नामक एक ग्रन्थ

मिलता है। इसके लेखक हैं मेहाजी। यह कृति अठारहवीं शती को या उससे पूर्व की होनी चाहिये, क्योंकि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में इसकी जो प्रति है वह अठारहवीं-उन्नीसवीं शती की हस्तलिखित प्रति से उतारी हुई है।

जाहरपीर के सोहिले[1]

जब जाहरपीर की जात करने केलिए 'जाती' जाते हैं तो जाहरपीरकी महिमा के सम्बन्ध में अनेक गीत गाये जाते हैं। ये ही गीत 'सोहिले' कहलाते हैं। यहां कुछ सोहिले दिये जा रहे हैं—

—१—

सहर दलेलो गांउ जापै महरि पूरी नाथ की
गूंगा गजाधारी हुश्रौं जेवर के औतारी
जाकूं धावै जगु संसार बात देखी ईमान की
संग नरसींगु सो वीरू
मांगे लडुश्रा पूरी खीर
जे तो धार पै परतंद, बीरी मांगै नागर पान की।
गोरख टीला
अजब हटीला
सुलग तलैया पत्तूर पूजा भोलानाथ की।
लागीं दस आठ
देख्यौ मैरी बीच ठाटु
चंदन की कड़ी लगीं वास्या के हाथ की।
मंसानाथ गामें
गुरु गोरख कूं मनामें
जे मेरु के परताप बात कहतु ना गुमान की।

—२—

अधर धरे करसा
मैरी के ऊपर अधर धरे कलसा।

---

[1] जाहरपीर के जागरण में सोहिले भी गाये जाते हैं। सोहिले मूलतः जन्म गीत होते हैं। ये सोहर भी कहलाते हैं। जाहरपीर के जागरण में सोहिले गाने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि ये सोहिले यह सूचित करते हैं कि जाहरपीर का उद्भव हुआ है अर्थात वे पुनः अवतरित हुए हैं। इस पुनरावतरण के उपलक्ष्य में ये सोहिले गाये जाते होंगे। ये सोहिले भी लोहबन के मट्टानाथ से सुनकर लिखे गये हैं।

वंकी महरी सोने के कलसा।
सादर सहरू गुरु रे मनाऊँ।
श्रोरू सेरु दुरगा। महरी के ऊपर ०।
गाम गाम में जुरै रे चिराकी।
तेरी मजलनि को चलना। अधर धरे ०।
निकरि संग ड्योढ़ीनु मयो ठाड़ो।
अरे हमें म्वां दरसन करना। अधर धरे०।
माइ तुम्हारी भोजन लावै।
बावुल खरच बंधाइ। अधर धरे०।
चल्यो रे संग जमुना पै आया
जमुना जोर वहाइ। अधर धरे०।
मलहा नाव डारि तू दीजो,
मोइ वागर चलना। महरी पै अधर धरे।
धरम की नाव सत्त कों वेड़ा
जाईते लगै चलना। अधर धरे०।
ज्वाला नाथ वागर को राना
म्वां देवी के दरसन करना। अधर धरे०।

—३—

बावा को अगिमानी,
ना रसिया मैंने अमरवा देख्या
अमरवा देख्या
जुलम का देख्या
तोड़ारै वजुर किवार।
इक्कीस पान का वीरा तुम्हारो
औरू दूध को प्यालो
सांकर तौरे वावा लोह मरोरै
तोड़ारै बजुर किवार।
गावै नाथ सेवक सुखु पावै
सेवकु सुफल फलाइ।

—४—

जोरूगी दिवला
भैरो के आगै जोरूगी दिवला।
जोरि धर्यो गोरख के आगै

जरी ऐ सारी राति चिराकी। जोरू गी०।
जोरि धर्‌यौ नरसींग के आगैं
जरी ऐ सारी राति चिराकी। जोरू गी०।
जोरि धर्‌यौ वाछिल के आगैं
जरी ऐ सारी राति चिराकी। जोरू गी०।
मंसानाथ भेख के काजैं
जाकी हर चरना। जोरू गी०।

—५—

ऊपर ते आयौ रे असाढु
मैं तो अलबत्त बागर जांऊँ।
तेरी तौ बरजी चतुर पिया मैं न रहूँ
गोरी कौनु करै हरफारू
जामैं नारी पुरिष कौ नाएं कामु
मां वेटा परसैं पीर
पापी ऐ पीरू डारै मारि
भूड़ों में निकारै जानि
तेरी तौ बरजी पिया न रहूँ
गोरी मेरें गांठि खरचु हतु नांइ
तू कहा खाइ परसै पीरू
बलमा मोइ सेरक लै दै रूअ
महलन में कातूं सूतु
तेरी बरजी पिया मैं ना रहूँ।
मेरी अकरे मोल बिकाइ
मेरी साठि रुप्या की सेरू
मैं ग्वाई ऐ बांधि लै जाऊँ।
तेरी बरजी ना रहूँ।
गोरी न्या कौन बिलोवै दूधु
मेरी ननंद बिलोवै दूधु
ननदेउआ पसर (चराने) लैजाइ।
बलमा तुम करियौ हर फार
देवर संग लै जाऊँ साथ
मंजलि मंजलि के गूजरि के चालने
जमुना पै पहुंची जाइ

मलहा के डोंगा डारि
मेरी नैया लगाइ दे पार
बाबा की बोली जात
मेरो घर को देवरू साथ
रानी तैंनें बादर डारे फारि
ग्यां मां-बेटा को ऐ कामु
तेरी बी बरजी रे, चतुर पिया ना रहूं।
जमुना तो जोर बहाइ
बाबा मेरी पल्ली पारि लगाइ
गावै बजावै रे 'सूरा' सोहिलो
बु तो म्वाऊं ते चलि दई हाल
छड़ियन की जात लगाइ
गोरख पै पहुंची जाइ
लड्डून ते पत्र भराइ
चोम्रो चंदन लै लीयो मंगाइ
महरी पै पहुंची जाइ
जानें बालकु दयो लुटाइ
पीर परसिकें रे गोरी धन बाहुरी
बेतो तम्मू दीयो ररकाइ
तमुम्रा में ते करति जुवाव
देवर मेरे कांटो लग्यो भूड़ा रेत
कांटे की कसक मिटाइ
जे भूमि कहिएँ सच्चे पीर की।
कांटो काढ़तु देख्यो पापु
देवर भोजी डारे मारि[1]
छोरा को है गयो म्राकु
देवर की छोंकर डार
भोजी को सागर ताल
भरे जाकी वैंयन की बनी गई पारि
गावै बजावै सूर सोहिलो।

---

[1] सुना जाता है कि म्राज तक वहां इन दोनों की समाधि बनी हुई है।

इन भूड़ों पै बलिहारी
भूड़ों पै अधर धरी माड़ी।
चौरे में तेरी करामाति जागी
साहिब सैरू गुरु मनाऊँ
सैरू दुरगे माई
परवत फोरि जिमी में निकरी
सामल पिंडी रे लटों वारी
चौरे में तेरी करामाति जागी
शुर बागर ते लीला पलान्या
दिल्ली की करी तैयारी
लाल पलंग पै सोवै बास्या
आइ पलंग ठोकर मारी
दौरी आई बास्या, तेरी अम्मा, राना
कहा जु उठी तोकू बीमारी
लेटे से बैठ्यो करिलीयो
आइ तखत ठोपर मारी
अम्मखास बेला बास्या सोवै
पडित बोले बिरमचारी
धुर बाकर में एकु पीर परगट्यो
ताकी उठी ऐ जाइ बीमारी
क्या मांगै क्या लेस्यै सहजादो
काए को भूको भाई
बागर आवे महरो बनबावै
जब सुख सौमन दूं माई
गाढ़ा भराइ लए माल के रना
बागर की करी तैयारी
बनि कें महरों सापरि आई
बनियां नें कलस चढ़ाए भारी
'आसकरण' रावलिया गावै, राना
तेरे हरि चरनों पै बलिहारी
घरि कें नौबति तेरी बाजै
पीलू तर नौबति भारी।

तेरी इन भूंड़न में वलिहारी
चौरे में करामाति जागी।

—७—

बनजारिन वनिवनि करति सिंगार
जे भुमि कहिऐं रे सच्चे पीर की
वनजारो टांड़ो लीयो लादि
वागर कूं रमतो जाइ
जानें टांड़ो लीयो लादि
गौंनिन में भरि लयौ मालु
जे भुमि कहिऐं। सच्चे वीर की
अरे यानें क्या क्या भरि लए माल
अरे वानें चिन्नी भरि लई खांड़
जानें भरे एँ गिरि रे वादाम
पूरब लादयो, पछैंया रमिचल्यौ
अरे जोरे पै पहुंच्यौ जाइ
जे भुमि कहिऐं। सच्चे वीर की
पानी कौ देख्यौ रे निमानि
जानें टांड़ो दीयौ थामि
अरे जानें उतारि लए रे माल
हाथ छबरिया रे वनजारे, वांस की
जे कंडा वीनन जाइ
अरे जाइ घोड़ी वारो मिल्यौ ऐ असवार
जाके कंधा पै धरी ऐ समसेर
अरी तू क्या भरि लाई माल
जे भुमि कहिऐं रे सच्चे वीर की
चिन्नी खांड़ को वताइ दीयौ नौंनु
वादाम के क्यौला होंइ
जो तैनें मांग्यौ रे जोइ तेरें होइगो
कंडा वीनि कें रे वनजारिन वाहुरी
बनजारे ते करति जुवाव
अरे जानें गाहकु दयौ लगाइ
बनजारौ टांके तोरतु जाइ
हंसि हंसि कें चवाइ रही पान

बनजारौ करतु जुबाब
जे भुमि कहिएँ रे गोरे धन वीर की
अरे चिन्नी खाड़ को है गयौ नौंनु
तू काऊ ते बोलि आई भूंटु
एकु घोड़े वारौ मिल्यौ ऐ असवार
व्वाके कंधा पै धरी ऐ समसेर
जे भुमि कहिऐं रे गोरीधन वीर की।
वावा मेरे गए मालु नगदाइ
तेरी दूनी करूं खैराति,
मैं फिरि कें बांगर जाऊँ
जे धन कहिऐं रे सच्चे वीर की।
एकु फलु मांग्यौ रे
द्वै तोइ दै दए जी
अरे सौंने कौ छत्रु वनाइ
चोवा चदन औरू अरगजा
मेरी मलि मलि महरी लगाइ
गावै वजावै रे सूरा सोहिलौ।

—८—

असाढ़ु महीना लग्यौ रमनि चहुं वादर में छाई।
मेरे उठै करेजा हूक खोलि दिल कदी नहीं न्हाई
नगर में सोरू भयौ भारी
जाहरपीर अमीर करौ तुम महलन की त्यारी।
सामनु महीना लग्यौ क झूला झूलें सवु नारी
मेरौ पिया घर नांइ विपति भइ सिरियल कूं ठाड़ी
वनी में करत कुहक मोरा
मेरौ सव तनु लैंतु हिलोर गुमट पै इन्दुर घन घोरा
भादों महीना लग्यौ, पुहुमि पै मेह परैं भारी
मेरी थरथर कांपै देह पिया विनु तड़पि रही नारी
दुपट्टा ओढ़ौ फुलवारी
जाहरपीर अमीर करौ तुम महलन की त्यारी।
क्वार कनागत लगे दलेले में घर घर पुन्नु करैं।
पुन्न धरम हम जवई करिंगे जव वालम नजरि परैं।
कहे धन महलन में ठाड़ौ

जाहरपीर..........अमीर करी ....
कातिक तिल के मास सरद ऋतु जाड़े की थाई
रैन विहंगम लग्यो महल में सुन्दरि घबराई
पिया बिनु नींद नहीं आवै।
गांठि खरचु ब्याइ दऊँ बोलि नैंक जुलमी कूं लावै
अगहन महीना लगे टूटि गई वालम की आसा।
राजपाट गए छोड़ि भये वे वनोवास राजा।
पिया बिनु नींद नहीं आवै।
काइ पठऊँ को जाइ खबरि नेंक लहरी की लावै
पूसु महीना लग्यो पुहुमि पै सीत परै भारी
थरथर कांपै देह तड़पि रही तेरी घरवारी।

—६—

बागर देस अनूप औलिया मंदुर भलो बनायो
बागर में सांचो पीरू रे कहायो।
लगतइ असाढ़ घटा चहुंदिसि छाइ रही
जाहरपीर बैठे जानें ढ़ईति हात लई जी
नरसींग बुलाइ लियो पूरब खंदाइ दीयो
सोमतु पायो भगतु जानें जांतइ जगाइ लियो जी
निरभै के पूत जाने गरदन पै पांउ दीयो
पकरि बांह लै आयो
बागर में सांचो पीर कहायो।
कान्हा को गिर्राज गाम
गोपिन को निज धाम
कन्नसींग माली को जाहर को बड़ो ध्यानु जी
बाजत नगाड़ो संग, जाहर पीर रहत संग
घोड़ा को खेंचि तंग
माली गोल बांधि कें आयो
बागर में सांचो पीर कहायो।
परसा नाथ गामें गुरु गोरख कूं मनामें
जोरि स्वान (स्वांग) गीत गामें
राजा तेरे दरस कूं आयो
बागर में सांचो पीर कहायो।

००

8

गुरु गुग्गा

•

जाहरपीर पर अब तक जो विचार हुआ है, उससे स्पष्ट कि वह विविध सम्प्रदायों और मतों के ऐक्य से संगठित पाषंड है। उसकी कथा पर अभी तक जितना प्रकाश डाला गया है, उससे यह प्रकट होता है कि वह वीर पूजा का अधिकारी व्यक्तित्व रखता है, और उसकी गाथा जैसे वीर गाथा हो। किन्तु यहां आवश्यक यह है कि इस कथा का विश्लेषण और किया जाय।

प्रथम दृष्टि से ही यह विदित होता है कि इस कथा में निम्न तन्तु स्पष्ट हैं—

जाहरपीर की जन्म-कथा।

जाहरपीर की विवाह-कथा।

जाहरपीर की युद्ध-कथा।
जाहरपीर की निर्वाण-कथा।
सिरिअल की निर्वाण-कथा।

पहली कथा में निम्न अभिप्राय: हैं—

राजा रानी संतानाभाव से पीड़ित :

लोक-कथाकार ने इनमें कई अभिप्रायों को जोड़ कर इस संतानाभाव की स्थिति को अत्यन्त असह्य दिखाया है। उसने—

संतान की आवश्यकता दिखाई है।
ज्योतिषियों-पंडितों से विधियां पूछी हैं।
बाग लगवाया है।
बाग के फल फूल राजा के देखने से कुम्हलाते हैं। रानी उन्हें बासी बता कर समाधान करती है।
बाग में राजा जाता है तो बाग सूख जाता है।
उसका साढू उसे अपने महल में नहीं आने देता।
राजा राजपाट छोड़ कर चल देता है, बाछल साथ जाती है।
अन्ततः राजा लौटता है।

इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा ही भाग्यहीन है।

संतान-प्राप्ति के लिए जोगी सेवा :

गोरखनाथ के जाने से बाग हरा हो जाता है।
बाछल गोरख की सेवा करती है।
पहली सेवा का फल न मिलने पर फिर सेवा करती है।

जोगी से फल प्राप्ति :

बाछल की पहली सेवा का फल धोखा देकर उसकी बहिन काछल ले जाती है।
काछल को बाछल समझ गुरु उसे दो फल देते हैं।
बाछल को दूसरी सेवा पर एक जौ या गूगल मिलता है।

फल का उपयोग :

काछल दोनों फलों को अकेली खाती है।
बाछल गूगल या जौ को पांच व्यक्तियों में बांट देती है। वे पांच हैं—
(अ) वह स्वयं (ब) घोड़ी (स) चमारिन (द) महतरानी (य) ब्राह्मणी

वाछल पर लांछन :

वाछल गर्भवती ।

ननद से बिगाड़ ।

ननद द्वारा वाछल के चरित्र पर लांछन ।

वाछल का निष्कासन :

जेवर वाछल को मारने का प्रयत्न करता है पर तलवार नहीं चलती ।

निष्कासन ।

मार्ग में बाधा :

वाछल के बैल को सर्प काटता है ।

(यह सर्प स्वयं गर्भ स्थित जाहरपीर की चेष्टा से आया है)

पिता और ससुर लेने आये ।

(जाहर ने दोनों को करामात दिखाई, जिससे दोनों वाछल को लेने आये)

गृह प्रतिवर्तन :

वाछल सुसराल आई ।

संतान प्राप्ति :

वाछल के जाहरपीर हुआ । अन्य चारों के भी संतानें हुई । ये पांच पीर कहलाये ।

इस कथांश में ७ वें अभिप्राय को छोड़कर शेष सभी सामान्य लोककथाओं के तत्व हैं जो अन्य प्रसिद्ध कथाओं में भी मिल जाते हैं। संतानाभाव का अभिप्राय राम के पिता-माता से भी सम्बन्धित है। वहां योगी नहीं ऋषि आया है। ऋषि यज्ञ कराता है। उससे यज्ञ पुरुष ने निकल कर खीर दी है। जिस प्रकार खीर तीन रानियों में बांटी गई है, उसी प्रकार यहां गूगल पांच में बांटा गया है। ननद की शिकायत का तत्व लोक प्रचलित सीता वनवास की कथा में भी है। यह लांछन की बात और लांछित को मारने या निकालने की बात सीता वनवास में भी है। और राजा नल की माता मंभा से तो एकदम बहुत मिलती है। निष्कासन के उपरांत का तत्व जाहरपीर में अनोखा है। पीर का गर्भ में से जाकर वासुकि को विवश करना, अपने नाना और बाबा को विवश करना। ये इस कथा के अनोखे तत्व हैं।

दूसरे कथांश के अभिप्राय ये हैं—

स्वप्न में सिरिअल के दर्शन और आधी भावरें।

सिरिअल की खोज में अकेले प्रस्थान।

गुरु गोरखनाथ से सिरिअल का पता।

घोड़े पर चढ़ कर समुद्र तट पर वैमाता को जूड़ी बांधते देखना ।
घोड़े ने सिरिअल के देश में पहुंचाया ।
सिरिअल के बाग में सिरिअल की शैया पर शयन ।
सिरिअल का आना, मिलन, सार-पासे ।
सिरिअल के पिता ने विवाह का प्रस्ताव ठुकराया ।
जाहर का वन में जाकर वंशी बजाना, नागों तक को मुग्ध करना ।
वासुकि ने तातिग नाग को सहायता के लिए भेजा ।
तातिग ने सिरिअल को स्नानोपरान्त डसा ।
तातिग सपेरा वन राजा से वचन लेकर कि सिरिअल का विवाह जाहर से होगा, सिरिअल को ठीक कर देता है ।
एक अन्य दुलहे का भी आगमन और जाहर का भी ।
दोनों बरातों का युद्ध ।
देवी हस्तक्षेप ।
सिरिअल से विवाह ।

इस समस्त कथांश में कुछ भी असामान्य तत्व नहीं । सभी अभिप्राय अत्यन्त प्रचलित लोक-प्रेम-कथाओं में मिल जाते हैं ।

तीसरे कथांश में ये अभिप्राय हैं—

वाछल की बहन के लड़कों ने राज्य में से हिस्सा मांगा ।
वाछल हिस्सा देने को तैयार ।
जाहरपीर ने अस्वीकार कर दिया ।
क्रुद्ध भाई मुसलमानी शासक को चढ़ा लाये ।
सिरिअल का हठपूर्वक झूलने जाना और अपमानित होना ।
सिरिअल ने ही जाहर से साक्षात्कार की विधि बतलायी ।
सेना ने गायें घेर लीं ।
जाहर ने गायें छुड़ाने के लिए युद्ध किया और दोनों भाइयों के सिर काट लिये ।

गायों के लिए युद्ध ऐसा तत्व है जो अत्यन्त लौकिक हो गया है, विशेषतः राजस्थान में । पाबूजी ने भी गायों के लिए युद्ध किया है । मुसलमानी शासकों को चढ़ा लाने का भी अभिप्राय इतिहास तथा लोकतत्व दोनों से सम्बद्ध है ।

चौथे कथांश के अभिप्राय हैं—

जाहर मां को सूचना देता है कि उसने दोनों भाइयों को मार डाला ।
मां का क्रुद्ध हो आदेश देना कि वह भ्रातृ-हन्ता उसे मुंह न दिखाये ।

जाहर की पृथ्वी में समा जाने की इच्छा ।

मुसलमानियत स्वीकार की ।

तब पृथ्वी में वह घोड़े सहित समा गया ।

चौथा अभिप्राय जाहरपीर के किसी-किसी संस्करण में ही है। यह कथांश सम्पूर्ण ही अनोखा है। साधारणतः लोक में प्रचलित नहीं ।

पांचवें कथांश में—

सिरिअल के वियोग में जाहर प्रेत रूप में ही प्रकट होता है ।

प्रति रात्रि जब मां सो जाती है तो सिरिअल के पास आता है ।

सिरिअल से वचन कि मां से नहीं कहेगी ।

सिरिअल गर्भवती होती है अथवा उसकी सासू उसे सौभाग्य चिह्न धारण किये देखकर संदेह करती है ।

सिरिअल मां से भेद खोल देती है और मां को दिखा देने का वचन देती है ।

जाहर को पता चल जाता है। नहीं आता ।

मां का उलहाना ।

सिरिअल काग से संदेश भेजती है। देवी से जाहर चौपर खेलता मिलता है ।

जाहर सिरिअल का निमंत्रण मान लेता है ।

सिरिअल से मिलता है, चलने लगता है तभी सिरिअल मां को जाते हुए जाहर को दिखाती है ।

मां आवाज देती है तभी जाहर सिरिअल के साथ अन्तिम रूप से भूमि में समा जाता है ।

यह अन्तिम कथांश पुनरुज्जीवन अथवा प्रेत-प्राप्ति का है ।

इस विश्लेषण से स्पष्ट विदित होता है कि समस्त कथा में वास्तविक ढांचा प्रेमगाथा का है ।

पहला कथांश प्रायः सभी लोकप्रिय प्रेमगाथाओं में मिलता है। नल-दमयन्ती सम्बन्धी लोकगाथा में भी नल के पिता पिरथम निपुत्री हैं। उन्हें पुत्र की बहुत कामना है। अन्य अनेक लोकगाथाओं में ऐसा ही उल्लेख है। प्रेमगाथा का नायक असाधारण प्रकार से ही उत्पन्न होता है। जन्म से ही उसे सिद्ध या देवी देवता का पोषण मिलता है ।

दूसरा कथांश शुद्ध प्रेमकथा है। स्वप्न में सिरिअल को देखना, उसे पाने के लिए चल पड़ना। बाधाएँ, उनका शमन। योगी होना या योगी गोरख की कृपा

पाना। देवी देवताओं की कृपा होना और प्रेमिका की प्राप्ति। इसी को जाहर की इस कथा में विशेष रूप में रख दिया गया है।

तीसरा कथांश प्रेमकथा या प्रेमगाथा के मिलनोपरान्त की बाधाओं से संबंध रखता है। पद्मावत में जिस स्थान पर अलाउद्दीन से युद्ध आता है प्रायः उसी स्थान पर गोगा का शाही सेना से युद्ध आता है। पद्मावत में भी अलाउद्दीन को चढ़ा लाने वाला घर का भेदी है। जाहरपीर में भी ऐसा ही है, जाहर के मौसेरे भाई।

चौथा कथांश प्रेमगाथा के नायक की मृत्यु का एक रूपान्तर ही है। साधारण प्रेमगाथा में नायक मारा जाता है। यहां जाहर ने शत्रु को पछाड़ा है, फिर स्वयं पृथ्वी में समाया है। यह ऐसे ही है जैसे जायसी ने अलाउद्दीन के हाथ से बचा कर एक अन्य राजा से लड़ते-लडते रत्नसेन का मारना दिखाया हो।

पांचवां कथांश प्रेमिका के चितारोहण के समान है परन्तु पीर की प्रेत-लीला दिखाकर इन प्रेमी-प्रेमिका को इस कथाकार ने साथ-साथ पृथ्वी में समाते दिखाया है।

अतः मूलतः जाहरपीर की कथा प्रेमकथा है जैसे रामकथा मूलत प्रेम-कथा है। पर, उसको एक विशेष धार्मिक ढाल में ढाल दिया है। प्रेमकथाएँ प्रेम की पीर पैदा करने के लिए लिखी जाती थीं अथवा किसी प्रकार की शिक्षा देने या मनोरंजन के लिए। जाहरपीर की कथा इनमें से किसी अभिप्राय से नहीं लिखी गई। एक और अभिप्राय भी कथाओं का हुआ करता था। वह था उनका माहात्म्य। शब्द-वृक्ष-मंत्र और फल के अनिवार्य सम्बन्धों के कारण अथवा तांत्रिक प्रभाव के कारण अथवा तांत्रिकता के दूषित प्रभाव को रोकने के लिए कथाओं के साथ माहात्म्य की बात जुड़ी। इन कथाओं को पढ़ने या सुनने से ही विशेष फल मिलने की बात पर विश्वास किया गया। पुत्रों के कल्याण के लिए अहोई आठें की कथा, पति के कल्याण के लिए करवा चौथ की कहानी, भाई के कल्याण के लिये भैया दूज की कहानी, सर्प से रक्षा के लिए नागपंचमी की कहानी। कलंक से मुक्ति स्वयमंतक मणि की कथा दिलाती है। समस्त विघ्नों का नाश गणेश-कथा से होता है। सब प्रकार की समृद्धि आती है सत्यनारायण की कथा सुनने से। इसी प्रकार यह विश्वास प्रचलित है कि रामकथा के सुन्दरकाण्ड का पाठ करने से रोग दोष नष्ट होते हैं। यही कारण है कि अकेले सुन्दरकाण्ड की हस्तलिखित प्रतियां बहुत मिलती हैं। तिजारी रोकने के लिए उषा-कथा का महत्व है। जाहरपीर की कथा ऐसी ही माहात्म्य कथा है।

इस कथा-विश्लेषण से पहली बात हमारा ध्यान आकर्षित करती कि गुरु

गोगा का जन्म-पूर्व से ही गोरखनाथजी से सम्बन्ध स्थापित किया गया है; क्योंकि गुरु गोरखनाथ द्वारा दीगई गूगल से जन्म लेते हैं। बाद में यह भी उल्लेख मिलता है कि वे गोरखनाथ के विधिवत शिष्य भी हो गये थे। इसके बाद हमें दिखाई पड़ता है कि गुरु गोरखनाथ गुरु गोगा के मार्गदर्शक और विभिन्न संकटों से उबारने वाले के रूप में निरन्तर आते हैं। दूसरी बात जो कि विशेष ध्यान आकर्षित करती है वह है सर्पों या नागों से सम्बन्धित।

जब गुरु गोगा मां के गर्भ में है तभी वह सर्पों पर शासन करके उन्हें बुलाता है और उन बैलों को डस लेता है जो बाछल को उसके मायके ले जा रहे थे। फिर गोगा सिरिअल से विवाह करने में संकट आने पर बंशी बजाकर नागों को वश में करता है और वासिक की आज्ञा से तातिग नाग उसकी सहायता कर सिरिअल से उसका विवाह कराता है।

तीसरी बात जो ध्यान आकर्षित करती है वह है गाय रक्षा के लिए युद्ध। इस युद्ध में मुसलमानों को मार कर और अपनी मौसी के दो पुत्रों को मार कर गोगाजी ने गायों की रक्षा की। एक और महत्वपूर्ण बात है प्रेत रूप में जाहर का प्रकट होना। यहीं यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि गोगा की मृत्यु का जो समस्त कथा में उल्लेख है वह स्वाभाविक मृत्यु नहीं है। मौसी के दोनों पुत्रों को मार डालने के कारण मां ने क्रुद्ध होकर उसे मुंह न दिखाने का आदेश दिया तब गोगाजी स्वयं घोड़े पर चढ़ कर घर से गये और घोड़े सहित पृथ्वी में समा गये। यह बहुत ही विलक्षण तत्व है और सभी कथाओं में इसका समावेश है। यह प्रेत-कथा का आधार भी है, क्योंकि बिना मृत्यु हुए प्रेत का अस्तित्व नहीं हो सकता। गोगाजी की इस समस्त कथा में यों कितनी ही विलक्षण बातें हैं, किन्तु देखा जाए तो जीवनवृत्त की दृष्टि से यह मृत्यु सबसे अद्भुत ठहरती है। यह कहना कठिन है कि पृथ्वी में घोड़े सहित समा जाने की बात कैसे और कहां से आई? मृत्यु-कथा और प्रेत-कथा का यदि सामान्य बोधगम्य अर्थ ग्रहण किया जाय तो यह होगा कि गोगाजी घर छोड़ कर चले गये। मां को मुंह दिखाना बन्द कर दिया, मानो उनके लिए मर ही गये हों; किन्तु अपनी पत्नी से वे छिप-छिप कर मिलते रहे और जब एक बार मां ने पत्नी सिरिअल के साथ यों छिप कर मिलते देख लिया तो वे सिरिअल को भी लेकर घर से सदा-सदा के लिए चले गये। इसी घटना को लोककवि ने और लोकवार्ता ने वह रूप दिया जो कि हमने कथा-विश्लेषण में चौथे और पांचवें कथांश में बताया है। यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि बाछल ने गोरखनाथजी की दी हुई गूगल पांच व्यक्तियों में बांटी और उन पांचों के सन्तान हुई। बाछल के गोगाजी, घोड़ी के नीली घोड़ी, ब्राह्मणी के नरसिंह, चमारिन से मज्जु, भंगिन से रतनसिंह। ये पांचों एक दिन,

एक समय, एक ही विधि से उत्पन्न हुए थे। ये पांचों पंच पीर भी कहलाते हैं और गुरु गुग्गा के साथ पूजे जाते हैं। इस सम्बन्ध में 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' में फोक इटीमोलोजी (लोकनिरुक्ति) का उदाहरण देते हुए लिखा था—

'In the Karnal and Ambala Districts worshipped along with Guga Pir, Narsingh (Nar Sinha), Kale Singh and Bure Singh is found Jaur Singh, Nar Singh is of course a corruption of the name of the manlion avator of vishnu and Bure Singh and Kale Singh appear to be synonymous with him. Jaur Singh is explained to be Jewar or Raja Jewar, the usual name of Guga's father. All the above are worshipped as Godlings and called Nags or Serpent.

Note—Arjan and Sarjan the jora or twin half brothers of Guga are sometimes worshipped as Jaur.'

इस विवरण से पता चलता है कि करनाल तथा अम्बाला में ऊपर दिये पांच पीरों में से गोगा और नरसिंह को छोड़ कर शेष तीन—कालेसिंह, भूरेसिंह तथा जौ भिन्न हैं। अब हम इन सभी बातों पर दृष्टि न रख कर यह देखेंगे कि गोगाजी को देवत्व प्रदान करने में किसका कितना योगदान है।

पहले हम गोगाजी और सर्प या नाग का सम्बन्ध बताने के लिए अपनी पुस्तक 'जाहरपीर : गुरु गुग्गा' में से वैदिक सर्प तथा सर्प और आर्य शीर्षक अंश उद्धृत करते हैं—

वैदिक सर्प तथा सर्प और आर्य :

वेदों में वृत्र का उल्लेख है। वृत्र अहि है। यह वृत्र शब्द ऋग्वेद में कई स्थलों पर बहुवचन में आया है; जैसे, ऋ० ६-२९-६; ६-३३-३; ७-१९-४; ७-८३-९; ६-८८-४; १०-८३-७। यहाँ पर वृत्र शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—१. बादलसमूह २. वृत्र नाम की जाति के लोग। इन वृत्रों का उल्लेख कहीं दस्युप्रमुख के साथ हुआ है, कहीं दासों और अन्य आर्यों के साथ हुआ है। दस्युओं के साथ कहीं-कहीं इन वृत्रों को अहि भी कहा गया है। इन प्रमाणों के आधार पर डा. अविनासचन्द्र दास एम ए., पी-एच. डी. इन्हें सर्पपूजक जाति मानते हैं।

ऋग्वेद में अर्बुद काद्रवेय सर्प का उल्लेख है। पंचविंश ब्राह्मण में एक सर्पोत्सव का उल्लेख है, उसमें एक अर्बुद ऋषि ग्रावस्तुत पुरोहित थे। इन अर्बुद काद्रवेय को ऐतरेय ब्रा. (६-१) तथा कौशीतकी ब्राह्मण (२९-१) में मंत्र-द्रष्टा माना गया है।

ऋग्वेद और तद्विषयक ब्राह्मणों के अध्ययन से विदित होता है कि ऋग्वेद-

काल में दो वर्ग थे—एक वृत्र के अनुयायियों का। ये सर्पपूजक थे। वृत्र को 'देव' कहते थे। दूसरा इन्द्र के अनुयायियों का। इन दोनों में संघर्ष था। वृत्र जाति पूर्व पक्ष में थी, इन्द्रानुयायी उत्तर पक्ष में। इन्द्र ने वृत्र का संहार किया। वैदिक काल में वृत्र, सर्प और अहि सम्भवतः एक ही जाति के नाम थे, यही महाभारत काल में नाग' कहलाये। गरुड भी एक जाति थी। गरुड़ और सर्पों में परस्पर युद्ध छिड़ा रहता था। महाभारत में उल्लेख है कि गरुड़ ने नाग या सर्प जाति को खदेड़ कर एक अत्यन्त ही सुन्दर द्वीप में पहुंचा दिया था और ये सर्प वहीं बस गये थे।

ऋग्वेद में सर्पराज्ञी नाम की सर्पजाति की ऋषिमहिला का उल्लेख है। इसने सूर्य पर पूरा सूक्त (ऋ० १०-१८९) ही रचा था। शतपथ ब्राह्मण में पृथ्वी को ही सर्पराज्ञी बताया है। यही ऐतरेय ब्राह्मण ने बताया है।

महाभारत से विदित होता है कि यायावर जाति के ऋषि जरतकारू ने वासुकि नाग की बहन से विवाह किया था। इनका पुत्र आस्तिक था।

पणिस अथवा वणिक जाति के लोग भी वृत्र पूजक और वृत्रानुयायी थे। इन्हें भी आर्यों ने खदेड़ दिया था।[1]

हरिवंश में उल्लेख है कि ऋषि वशिष्ठ के परामर्श से राजा सगर ने शक, यवन, काम्बोज, परद, पल्लव, कोली, सर्प, महिषक, दर्व, चोल, कोल आदि जातियों से वेदाध्ययन का अधिकार छीन कर देश से बहिष्कृत कर दिया था।

इन सब प्रमाणों से विदित होता है कि वैदिक काल में सर्प-पूजा प्रचलित थी। सर्प-पूजकों से आर्य घृणा करते थे। आर्यों और सर्पों में ब्राह्मण-काल में संधि हो गयी। सर्प-जाति के लोगों ने भी वेदों की ऋचाओं के निर्माण में भाग लिया किन्तु ऐसा विदित होता है कि यह संधि अधिक नहीं ठहर सकी। आर्य लोगों की सर्पों के प्रति घृणा अन्तर्निष्ठ थी। सम्भवतः सोमरस के लिए ही इन्हें सर्पों से संधि करनी पड़ी। यह बात ध्यान देने की है कि अर्बुद काद्रवेय सर्प के मंत्र 'सोम' सम्बन्धी हैं। सर्पराज्ञी के सूक्त 'सूर्य' विषयक हैं। क्योंकि सोम को सर्पों द्वारा रक्षित कहा गया है। बाद में आर्थिक कारणों से इसी सोम के लिए सर्पों का गरुड़ों से संघर्ष हुआ। आर्यों ने गरुड़ों का साथ दिया। सर्प खदेड़ दिये गये। गरुड़ ने सोम पर अधिकार किया। ये सर्प नाग जाति से मिल गये। इन सर्प-नागों

---

[1] यही कारण है कि वणिक जाति में आज भी गुरु गुग्गा या जाहरपीर की विशेष मान्यता है। द्रष्टव्य अग्रवाल जाति का इतिहास, विद्यालंकार।

से आर्यों का भयंकर युद्ध नित्य होता रहा। जैसे नाग-यज्ञ का जन्मेजय ने आयोजन किया था, वैसे कई यज्ञ भारतीय इतिहास में हुए हैं।

यहां पर यह सिद्ध करने के लिए कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है—ऋग्वेद से एक मंत्र का भाव दिया जाता है—यह मत्र ऋ० ७-२१ का ३-७ है। इस मंत्र क एक अंश का भाव यह है:—

'तैने अपनी शक्ति से वृत्र का सहार किया है। युद्ध में कोई शत्रु तेरा घात नहीं कर सका। पहले देवता तेरी दिव्य शक्ति के सामने झुक गये हैं; उनकी शक्ति तेरी दिव्य शक्ति से हार गयी है; उनकी शक्तिया तेरे महत्तम बल के सामने धूल चाटने लगी हैं।'

इससे विदित होता है कि वैदिक काल में इन्द्र ने वृत्र अथवा सर्प जाति को परास्त किया। सर्प जाति के लोगो ने इन्द्र के समक्ष हार मानी। सर्प के शक्ति-केन्द्रों में इन्द्र के शक्ति-केन्द्र स्थापित हुए।

वैदिक इतिहास का यह पूर्व युग हुआ। वाद में कृष्ण ने इन्द्र को इसी प्रकार परास्त किया जिस प्रकार इन्द्र ने सर्प-जाति को किया था। यों कृष्ण ने नाग—जाति को भी ब्रज से निष्कासित कर दिया था।

किन्तु सर्प-नाथ जाति समाप्त नहीं हो सकी। जन्मेजय के भयंकर नाग—यज्ञ के उपरान्त भी यहां नागों और सर्पों की बहुलता रही। नागों और सर्पों को सम्पूर्ण विनाश से आस्तिक ने बचाया।

और इतिहास का एक और पृष्ठ कहता है कि भगवान बुद्ध के समय में नाग फिर उतने ही प्रबल हो गये थे, क्योंकि लोकस्तर पर भगवान बुद्ध ने नागो को उसी प्रकार परास्त किया है, अपनी शक्ति के तेज से जैसे इन्द्र ने वृत्र को किया था। और बुद्ध ने समस्त नाग-केन्द्रों पर अधिकार स्थापित कर लिया। यों परास्त हो कर नाग बुद्ध के अनुयायी हो गये। नागो और बौद्धों का घनिष्ठ संबंध हो गया।

और ये नाग गुरु गुग्गा के समय तक भी किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में अपना अस्तित्व बनाये रहे। लोकवार्ता में नागपूजा गुरु गुग्गा अथवा जाहरपीर के साथ ही जीवित नहीं, वह स्वतत्र रूप से जीवित है और फल-फूल रही है। ब्रज में 'नागपचमी' सर्वत्र मनायी जाती है। पूर्व मे मनसा-पूजा इसी नाग अथवा सर्प—पूजा का ही एक रूप है। गुरु गुग्गा अथवा जाहरपीर का सम्बन्ध भी नाग पूजा से है।[1]

---

[1] जाहरपीर : गुरु गुग्गा, पृ० ५०-५२।

इस विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वैदिक काल से लेकर पौराणिक काल तक जो व्यक्ति अहि, नाग या सर्प को परास्त करता रहा वह देवता माना गया। इन्द्र इसी कारण देवता माना गया और इसे ऋग्वेद (७-२१ का ३-७ वां मन्त्र) में यह कहकर इन्द्र का देवत्व स्वीकार किया गया है कि 'पहले देवता एक दिव्यशक्ति के सामने झुक गये हैं। उनकी शक्ति तेरी दिव्यशक्ति से हार गई है।' तभी इन्द्र देवता हुए। कृष्ण में भी देवत्व के विधान में कालिया नाग के परास्त करने की वार्ता है। और गोगा के सम्बन्ध में चम्पा में प्रचलित कहानी में भी यह उल्लेख है कि जब गूगा विवाह करने के लिए बंगाल की ओर चला तो वासुकि और उसके सर्पों के दल ने उसका सामना किया। गूगा ने उन्हें परास्त कर दिया। (देखिये इण्डियन सर्पेन्टलोर, पृ० २६ की पाद टिप्पणियां) तथा कूलू में यह माना गया है कि गूगा की पत्नी सूर्यल—वासुकि नाग की बेटी थी। अतएव इस मत के अनुसार भी गूगा नागों को परास्त करके सूर्यल या सिरिअल से विवाह किया होगा। यदि यह पक्ष इस कथा का स्वीकार किया जाए तो गूगाजी को देवत्व प्रदान कराने में नाग-विजय या सर्प-विजय का हाथ हो सकता है; क्योंकि परम्परा से ऐसे वीर देवता माने जाते रहे हैं।

किन्तु, इसका एक दूसरा पहलू भी है जिसकी कुछ ध्वनि तो लोक-कहानियों में से मिलती है। इन कहानियों में उल्लेख है कि गोगाजी के साथ ही एक सर्प पैदा हुआ था या एक सर्प उनके पालने में आगया जिसे मुंह में लेकर वे चूसने लगे। इस प्रकार सर्प उनके वश में होगये। सिरिअल से विवाह के समय बांसुरी बजा कर इन्होंने वासुकि को मुग्ध किया और वासुकि ने तातिग को गूगा की सहायता करने का काम सौंपा। तातिग की युक्ति से ही सिरिअल का विवाह गूगा से हुआ। इन सबमें यह ध्वनि है कि गूगा और सर्प अभिन्न हैं और जिस प्रकार सर्पों का राजा वासुकि सर्पों पर शासन करता है, उसी प्रकार का कोई स्थान सर्पों में गूगा का है और तभी वे सर्पों पर शासन करते हैं। इसकी पुष्टि में कुछ ऐसी सामग्री इतिहास से भी मिलती है जो सिद्ध करती है कि वे स्वयं नागवंशी थे।

'चन्द्रदान चारण ने अपने ग्रन्थ 'गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा' में पृष्ठ २१ पर लिखा है कि 'राजस्थान के जिस भाग में चौहान का राज्य था वहां के स्थानों के नाम भी द्रष्टव्य हैं—प्राचीन अहिछत्रपुर और आधुनिक नागौर शहर इस बात का प्रमाण है कि इस स्थान का नागों से भी कोई सम्बन्ध रहा होगा। अहिछत्रपुर पहले चौहानों के राज्यों की राजधानी था। ११ वीं शताब्दी के लगभग जबकि गोगाजी चौहान हुए हैं, इस भाग पर नागों का भी प्रभाव रहा होगा।' सम्भवतः चारणजी यह संकेत करना चाहते हैं कि गोगाजी चौहान का अपने क्षेत्र में रहनेवाले नागों से सम्बन्ध था; क्योंकि वे राजवंश के थे इसलिए राजा और

प्रजा का सम्बन्ध हो सकता है और शासक होने के ही कारण नागों पर इनका आदेश चलता होगा। किन्तु, चारणजी ने परिशिष्ट में (मरुभारती, वर्ष ६, अंक ४ से उद्धृत करके) डा. दशरथ शर्मा का मत दिया है—

'हम कुछ लेखों द्वारा ददरवे के चौहान शासक गूगोजी का समय निश्चित करने का प्रयत्न कर चुके हैं किन्तु जनमानस में व्याप्त गूगोजी की कथा में कुछ ऐसे तत्व हैं जिन्हें समझने के लिए चौहान गूगोजी का इतिवृत्त पर्याप्त नहीं है। बहुत सम्भव है कि जनमानस के वृत्त में अन्य गूगा कथाएँ भी आ मिली हों। यह ठीक है कि चौहान गूगोजी महान वीर थे, अतः वीर रूप में उनका पूजित होना सर्वथा संगत है। किन्तु उनसे सर्पों का सम्बन्ध होने का क्या कारण है—यही प्रश्न प्रायः हर एक अन्वेषक के मस्तिष्क में चक्कर लगाता रहता है। सम्भव है कि इस दिशा में विक्रम सम्वत ७७० के गुग्गा के अभिलेख से हमें कुछ सहायता मिल सके। उपर्युक्त लेख ब्रिटिश म्यूजियम में है। इसका समुचित सम्पादन अब तक नहीं हुआ है किन्तु कीलहार्न के टिप्पण के आधार पर डा. देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने इस अभिलेख के विषय में ये शब्द लिखे हैं[1]—

संवत्सर—शतैतीते सप्त में चाधिकैस्तथा (पंक्ति २२) पूर्ण्णे सप्तभिर्वर्षै निर्म्मितं तु पुरं तदा।

Nagendra son of a Paramesvra whose name is lost had a daughter, Subha who was marri-d to Taksharaja son of Devaraja. Their son was Gugga. Engraved by Gunasila.

जिस अभिलेख के आधार पर ये शब्द लिखे गये हैं वह स्पष्टतः काफी लम्बा है। उसकी २२ वीं पंक्ति से हमें ज्ञात है कि संवत ७७० में गुग्गा ने किसी नगर का निर्माण करवाया। अभिलेख इसी बात के रूप में है। गुणशील ने लेख उत्कीर्ण किया है।

इससे अधिक महत्वपूर्ण अभिलेख की वंशावली है। इसके अनुसार उसकी मां का नाम शुभा, बाप का तक्षराज और नाना का नाम नागेन्द्र था।

नागेन्द्र किसी परमेश्वर (महाराजाधिराज) का पुत्र था जिसका नाम लेख से लुप्त हो गया है। दादा का नाम देवराज था। इन नामों को पढ़ते ही आपाततः यही धारणा उत्पन्न होती है कि गुग्गा के पिता और नाना दोनों ही नाग-वंशी थे। एक का नाम तक्षराज तो दूसरे का नागेन्द्र था। नागराज तक्षराज के

---

[1] इन्स्क्रिप्शन्स आफ नार्दर्न इण्डिया, संख्या १५।

पुत्र और स्वयं नागराज होने से इस गुग्गा का नागों से सम्बन्ध सर्वथा स्वाभाविक है।

यह भी सम्भव है कि इस नागराज ने मुसलमानों से युद्ध किया हो। संवत ७६६ (सन ७१२) में मुहम्मदबिनकासिम ने सिन्ध पर विजय प्राप्त की। इसके बाद किसी साल में गुग्गा और मुसलमानों के युद्ध की सम्भावना की जा सकती है। सन ७२५ में अरब सेनापति ने जुनेद भिल्लमाल, मालवा आदि अनेक जनपदों को जीता। क्या गुग्गा ने इसी अरब सेनापति से युद्ध किया ? मैं स्वयं इस विषय पर कुछ राय नहीं रखता किन्तु भविष्य को गवेष्य अवश्य समझता हूं।

संवत ७७० का गुग्गा के किसी नगर के निर्माण के समय के इस अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि गुग्गा स्वयं नागवंशी थे और देवराज के पुत्र तक्षराज से उनका जन्म हुआ था और उनकी मां एक नागराज नागेन्द्र की पुत्री सुमा थी। इस नागवंशी गुग्गा का युद्ध किसी मुसलमान शासक से हुआ हो इस सम्भावना को भी डा. दशरथ शर्मा स्वीकार करते हैं। सन ७२५ में अरब सेनापति ने इधर आक्रमण किया था, होसकता है गुग्गा का उसी से युद्ध हुआ हो। इस ऐतिहासिक प्रमाण से गोगाजी नागवंशी ठहरते हैं। राजा थे इसलिए उन्हें नागराज भी कहा जा सकता है। नाग देवता के रूप में बहुत पहले से पूजे जाते रहे हैं। यह कारण भी हो सकता है जिसने गोगा को नागदेवता के रूप में मान्यता प्रदान की। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने की है कि विश्व लोकवार्ता में वीरों का संबंध नागों से रहा है और इस दृष्टि से गोगाजी के साथ वीर पूजा का सूत्र भी जुड़ कर उन्हें विशिष्ट नागदेवता का महत्व प्रदान करता है।

एक और ऐसा ही तत्व गोगाजी के वृत्त से जुड़ा हुआ है। वह वृत्त है गाय की रक्षा का। गाय के रक्षक को भी देवता मानने की एक दीर्घ परम्परा वैदिक काल से मिलती है। इन्द्र ने केवल अहि वृत्र पर ही विजय प्राप्त नहीं की वरन् गायों को भी उसने मुक्त कराया और उनकी रक्षा की। इसी प्रकार कृष्ण को देवत्व प्रदान करने में भी गायों की रक्षा और गायों की सेवा का हाथ अवश्य है। राजस्थान में पाबूजी के देवत्व प्रदान में भी गायों की रक्षा विशेष महत्व रखती है। तेजाजी के देवत्व प्रदान में भी गाय सेवा और गाय रक्षा का स्थान है। उत्तर-प्रदेश में गभीरी मैंकासुर या माइकासुर माता का देवता भी इसीलिए पूजा जाता है कि उसने गायों की रक्षा की। इस दृष्टि से गायों का भी योगदान गोगाजी को देवत्व प्रदान कराने में निश्चय ही है। वास्तव में उनकी समस्त जीवन-कथा के लोकवार्तागत अंश को, चमत्कारक अंश को हटा कर देखें तो उनके जीवन की प्रधान घटना मुसलमानों के आक्रमण को विफल कर गायों की रक्षा करना ही

महत्व की घटना है। लगता है इसी ने उन्हें देवत्व प्रदान कराया है और बाद में देव-पूजा की भावना ने उन्हें वीर या पीर बना दिया है।

अब एक बात हमारा विशेष ध्यान आकर्षित करती है। गाय और सर्प इन दोनों का सिर से भी लोकवार्ता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके लिए हम 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' जनवरी, १८७३ पर दी गई The Legend of Vallore का यह अंश उद्धृत करते हैं—

All this stage of affairs one of the cows of Bimardi was delivered of a calf. It was as white as milk, but i s hornes, nose, tail and hoofs were black. Its teats were five. When it grew, it never went in company with the other cattle. It went to graze alone and returned alone It was delivered of a calf, but did not allow it to drink milk Bimardi was surprised to find that daily when the cow returned in the evening it came with empty udder. Nor was the herdman able to explain this, but one morning he followed the cow whe ever it went. The cow went on tile it came near a small island, to which it went crossing the water. Immediately after this a serpent came out of a hole. It had five mouths, by which it drank milk from the fire teats of the cow. After the serpant had done drinking the cow returned to its master's place. Bimardi was much affected by this sight. He considered both the occurences and the locality as sacred. On the morning of this following day he crossed the water and went near the hole of the five-mouthed serpent. There he prayed to know what were the wishes of the serpent. After this he fell fast asleep. A figure then appeared to him in his dream and said to Bimardi. 'my name is Sambsivan that cow which you possess is created by me. I drink its milk and am pleased'

जैसी गाय का उल्लेख Legend (अवदान) में है ऐसा ही गाय और सर्प का सम्बन्ध है। तेजाजी की कथा में भी है। बापा रावल की कथा में यह उल्लेख है कि ऐसी दुधारू गाय चुपचाप जाकर एकलिंगजी पर अपना सारा दूध चढ़ा आती थी और तभी बापाजी को एकलिंग-शिवजी के दर्शन हुए और वहीं हारित ऋषि

से, जो कि गोरखपूर्वी नाथ माने जाते हैं, साक्षात्कार हुआ। ऐसी ही कथा आमेर के अम्बिकेश्वर के सम्बन्ध में कही जाती है। अम्बिकेश्वरनाथ की मूर्ति (शिवलिंग) बहुत गहरे में है। आज भी विद्युत्प्रकाश में उस गड्ढे में ध्यान से देखने पर उनके दर्शन होते हैं और आमेर के राजाओं के प्रथम वंशज एक गाय के पीछे ही इस स्थान तक आये थे, जहां गाय ने अपने थनों का समस्त दूध इन पर चढ़ा दिया था। आमेर का यह प्राचीनतम मन्दिर माना जाता है और इसी घटना के बाद आमेर बसाया गया। बाद की दोनों घटनाओं में सर्प देवता का उल्लेख नहीं है किन्तु गाय और शिव दोनों विद्यमान हैं। और जहां शिव है वहां नाग होंगे ही। यह भी स्वयं सिद्ध है। अतएव गाय और सर्प दोनों मिल कर हमें शिव की ओर ले जाते हैं और शिव का नाथों में जो स्थान है वह सर्वविदित है। यहां आदिनाथ स्वयं शिव हैं।

गाय, सर्प और शिव :

गाय, सर्प और शिव की त्रिवेणी से गोगा को देवत्व मिला है। गाय के सम्बन्ध में कुछ कथाएँ यहां देना समीचीन होगा। (१) कौल ज्ञान निर्णय में बागची ने लिखा है कि एक कथा के अनुसार मोहिनी के प्रति कामातुर शिव के मत्स्येन्द्र हुए और एक गाय द्वारा गोरक्षनाथ। (पृ० ४४, पाद टिप्पणी १) (२) योग सम्प्रदायाविष्कृति में लिखा है कि एक दिन गाय चराते समय गोरक्षनाथ को सर्प ने काट लिया। (पृ० ४५, पाद टिप्पणी १)

इन कथाओं से और स्वय नाम से यह विदित होता है कि गोरक्षनाथ और गाय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सांपों का सम्बन्ध गोरखनाथ से भी बैठता है। ब्रिग्स के आधार पर डा. रांगेय राघव ने बताया कि गोरक्ष के साथ सांप, बांसुरी तथा नाग की कहानियां जुड़ी हुई हैं। योगसम्प्रदायाविष्कृति के आधार पर डा. रांगेय राघव ने पृ० ४८ की पाद टिप्पणी (च) में लिखा है कि गोरक्ष पर अविश्वास करके एक शिष्य ने भोजन पंक्ति में सांप पैदा किया जिससे उपस्थित जनसमूह में खलबली मच गयी। गोरक्षनाथ ने क्रोध से उसे शाप दिया कि सर्प ही तेरा साथी हो। काणिप्पानाथ ने अपने शिष्य पर दया करके सर्प को गोरक्ष से मंत्रावरुद्ध करवा दिया। इस शिष्य की शिष्य प्रणाली प्रचलित हुई जो सर्पेलिया, कार्णपालिया, कर्णवेलिया कहलाती है। लेकिन इन सबका मूल शिव में है। गोरखनाथ स्वयं शिव हैं। आदिनाथ स्वयं शिव हैं। प्रत्येक नाथ शिव रूप ही है, क्योंकि मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध योगिनी कौल से है। अतः सहजकौल जो कौल का एक प्रकार है उसमें साधक और शिव बिल्कुल एकाकार हो जाते हैं। इस आधार पर भी नाथ का तादात्म्य शिव से हो जाता है। इस प्रकार गोरखनाथ भी स्वयं शिव हैं। शिव होने के कारण उनका सर्पों से भी सम्बन्ध बैठ जाता है।

शिव होने के कारण सर्प उनके वश में हैं। गोरखनाथ के शिष्य होने के कारण गोगा भी प्रतीक रूप में शिव ही स्वीकार किये गये हैं। यद्यपि जैसे गोरखनाथ को स्पष्ट रूप से शिव कहा गया है वैसे गोगा को नहीं कहा गया। गोरखनाथ के शिष्य होने के कारण और गोरखनाथ के ही आशीर्वाद से उत्पन्न होने के कारण गोरखनाथ जगोपयोगी कुछ शक्तियां और उतना ही शिवत्व गूगा में आ गया। इसी के अन्तर्गत उनमे वह बल आया जिससे वे अकेले विशाल सेना से युद्ध करके गायों की रक्षा कर सके। इसी कारण सर्प भी उनके वश में हुए और कुछ अन्य प्रकार के चमत्कारों की सामर्थ्य प्रतिक्षण, प्रतिपल गोरखनाथ के साथ देने के कारण उनमें आरोपित हुई।

यह स्पष्ट है कि गोगा वीर ही रहे सिद्ध नहीं हो पाये। यह कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता कि उन्होंने कहीं भी योग साधना की। गोरखनाथ के शिष्यत्व के कारण और संकट पड़ने पर स्मरण आने से गोरखनाथ के उपस्थित हो जाने के कारण उनमें चमत्कार दिखाने की शक्ति आगयी। उतना ही शिवत्व उन्हें मिल गया।

सामान्य जनश्रुति या लोकवार्ता में गूगा को सर्पराज भी माना जाता है। गूगा की कथा से भी यह आभास मिलता है। राजस्थान में नागपचमी पर अनेक स्थानों पर नाग पूजा होती है। एक स्थान, जिसका नाम स्मरण नहीं है, के नागपंचमी के पूजोत्सव का विवरण देते हुए यह बताया था कि गूगा के अनेकों भक्त और सपेरे या कालवेलिये उस स्थान पर सांप ले-लेकर आते हैं और जागरण गीत और मंत्र गाये जाते हैं। जब उन गानों की लहर अच्छी तरह आने लगती है तब एक छोटा सफेद रंग का सर्प एक बड़े सर्प की पीठ पर बैठकर आता है; उसके लिए सिंहासन की भांति जो एक ऊंचा स्थान बना होता है उस पर आकर बैठ जाता है। वहां उसकी पूजा की जाती है। इस सर्पराज को गूगा बताया जाता है। इसी प्रकार गोगामैड़ी में नाग पंचमी पर जो मेला होता है, उसमे अनेकों लोग सांप ले-लेकर आते हैं और गोगामैड़ी के पास एक वृक्ष है उस पर उन सर्पों को डालते जाते हैं। सर्प किसी को काटता नहीं और यह भी कहा जाता है कि यहां आने पर या जात बोलने पर सर्प का विष भी दूर हो जाता है। अतः लोकवार्ता के अनुसार इन्हीं सर्पों पर गोगा का शासन रहा। इस शासन के मूल में गोरखनाथ के द्वारा, जो स्वयं शिव हैं, शिव की कुछ शक्तियां गोगा को मिलीं। उनके कारण ही गोगा का सर्पों पर यह अधिकार हुआ।

यह स्पष्ट है कि गूगा वीर था। वीरता के कारण वह गौ की रक्षा कर सका। ऐसे गौरक्षक वीर को वैदिक काल से देवत्व प्राप्त होता रहा है। इसके अतिरिक्त गूगा गोरखनाथ का शिष्य हो गया। गोरखनाथ के सम्पर्क के कारण,

उनके आशीर्वाद से उत्पन्न होने के कारण, उनमें नाथ या शिव के सर्पशासन संबधी गुण अवतरित हुए। अतः वीरपूजा के साथ शिवत्व का संयोग एक विशेष तत्व की तरह से गूगा में जुड़ा। फिर गूगा भूमि में समा गये। जीवित समाधि उन्होंने ली। इसके उपरान्त भी वे सिरिअल के पास जाते रहे। इस तत्व के कारण उनमें प्रेत तत्व का भी आरोप हुआ। प्रेत-पूजा का तत्व उनकी पूजा में जुड़कर उनके देवत्व को एक नया रूप दे गया। भूमि में समा जाने के सम्बन्ध में गूगा को लेकर एक किवदन्ती है कि माता के यह कह देने पर कि तुम अपना मुख न दिखाना, गूगा ने पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह फट जाय जिससे गूगा उसमें समा जाय। पृथ्वी ने कहा कि हिन्दू भूमि में नहीं दफनाये जाते, तुम मुसलमान बनो तब मैं स्थान दूंगी। गूगाजी ने यही किया और वे जब कलमा पढ़कर आये तब भूमि फट गई और वे घोड़े सहित समा गये। इसी सम्बन्ध में डा० रांगेय राघव के 'गोरखनाथ और उनका युग' से गोरखनाथ के सम्बन्ध में यह उद्धरण एक दूसरी दृष्टि को हमारे सामने रखता है—

'ब्रिग्स नें एक किवदन्ती का उल्लेख किया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक बार हिन्दुओं और मुसलमानो में इस बात पर झगड़ा हुआ कि धरती का मालिक कौन है? गोरखनाथ ने मुसलमानों के दावे को झूठा साबित करने के लिए एक काम किया। उन्होंने अपना भोजन और सामान अपने पास रखा और वे पृथ्वी से बोले कि यदि उनका धरती में कोई हिस्सा हो तो वह उन्हें स्थान दे। धरती फट गई और गोरख पृथ्वी में उतर गये। तब से कनफटों में शव को गाड़ने की प्रथा चल गई। किन्तु कनफटों के अतिरिक्त भी अन्य योगी, सम्प्रदाय हैं जिनमें शव को गाड़ा ही जाता है।' (पृ० २५५)

इस किवदन्ती से भूमि में समाने का अर्थ या तो योगियों की भांति जीवित समाधि लेना माना जायेगा अथवा यह माना जायेगा कि योगियों को जलाया नहीं जाता, उन्हें समाधिस्त मानकर उनकी समाधि बनाई जाती है और पूजी जाती है। अतः यह मानना होगा कि गोरखनाथ के शिष्य होने के कारण योग-साधना न करने पर भी गोरखनाथ की कृपा से गूगा ने जीवित समाधि ली। यही कारण है कि गूगा के साथ ही उसकी समाधि पूजी जाती है।[1]

---

[1] ऊपर हमने गूगा को देवत्व प्रदान करने वाले तत्वों का उल्लेख किया है, किन्तु मूल बात सबके अन्तर में वही है जो Encyclopedia Ethics and Religion Vol. IX में पृष्ठ ७८८ पर दी गई है, वह है—

'At the root of all God making his a respectful attitude of mind towards certain phenomena, physical or mental, arising from a consciousness that they are sources of power difficult to control. Yet necessarily to be reckoned with.'

9

कहावतों का विज्ञान

लोकोक्ति या कहावत लोकवार्ता और लोकसाहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। सन् १८७५ में रेवरेंड जेम्स लौंग ने Oriental Proverbs में लिखा था कि A proverb is a spark thrown up from the depths beneath; as Lord Bacon states. The genuins, spirit and wit of a nation are discovered in its proverbs. अर्थात् लोकोक्ति नीचे गहराइयों से उछाली हुई स्फुलिंग है। जैसा कि लार्ड वेकन ने लिखा—किसी जाति की प्रतिभा, आत्मा और वाक्‌वैदग्ध्य उसकी लोकोक्तियों में से उद्घाटित होती है।[1]

इस एक वाक्य से ही लोकोक्ति का महत्व निर्विवाद सिद्ध होता है। लौंग महोदय ने यह भी बताया था कि

[1] Oriental Proverbs-Rev. James Long edited by Dr. Mahadev Prasad Saha, 1956

This is transition period in Hindu society. The spread of education and the changes of society are rapidly sweeping into the gulf of ablivion many of the old traditions and fragmentory folklore. The old Pauranic pandits are vanishing from the scene. Now is therefore the time to collect what remains of the living proverbs .... [1]

लोंग महोदय ने बंगला भाषा की बहुत सी लोकोक्तियों का संग्रह स्वयं कराया और उसे प्रकाशित भी कराया। हिन्दी में भी लोकोक्तियों पर काम हुआ है। इसमें लोंग के समय मे ही एस० डब्ल्यू फैलन (१८१७-८०) का कोश A New Hindustani-English Dictionary with illustration From Hindustani Literature And Folklore विशेष उल्लेखनीय है। इस कोश में फैलन ने उदाहरण के लिए लोकोक्तियों या कहावतों का प्रचुर प्रयोग किया है। आज भी इस कोश के समकक्ष दूसरा कोश नहीं मिलता। फैलन महोदय ने इस कोश की भूमिका में यह सूचना दी थी कि वे कहावतों का एक संग्रह भी शीघ्र निकालेंगे। उन्होंने उस समय तक (१८७९ ई० तक) १२,००० से भी अधिक कहावतें एकत्रित करली थीं जैसे मारवाड़ी, मगही, भोजपुरी तथा तिरहुती कहावतें। दुर्भाग्य यह रहा कि फैलन महोदय १८८० में इंग्लैंड गये और इसी वर्ष ३ अक्टूबर को वे कालकवलित होगये[2] और कहावतों के संग्रह का वे स्वयं प्रकाशन नहीं करा सके।[3]

१८७५ में लिखते हुए रे० जेम्स लोंग ने बताया है कि भारतीय कहावतों के उनके समय में चार संग्रह प्रकाशित हो चुके थे: (१) पीटर परसीवल का तामुल (Tamul) प्रोवर्ब्स अंग्रेजी अनुवाद सहित। वस्तुत. इसका प्रथम संस्करण १८४२ में हो चुका था, यह डा. साहा का मत है। १८७४ में मद्रास में इसका दूसरा संस्करण निकला था। (२) मार्क विलियम कार (Carr) का 'ए कलैक्शन आव तेलुगु प्रोवर्ब्स' यह दो भागों में मद्रास और लंदन से १८६८ में प्रकाशित हुआ

---

[1] ओरियटल प्रोवर्ब्स-रेवरेंड जेम्सलोंग-संपादक डा.महादेवप्रसादसाहा, पृ. ८ १९५६।

[2] ,, १९५६।

[3] यह संग्रह कैप्टेन आर. सी. टैम्पल के द्वारा सम्पादित और संशोधित होकर १८८६ में प्रकाशित हुआ। इसका शीर्षक था 'ए डिक्शनरी आव हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स'—एस. डब्ल्यू. फैलन। इसमें १२५०० कहावतें हैं।

था। इसमें संस्कृत कहावतें भी पूरक के रूप में दी गयी थीं। (३) एच ग्रेन्डर्ट (H. Grandert) की एक हजार मलयालम कहावतें। इसका द्वितीय संस्करण मंगलोर से १८६८ में छपा था। प्रथम संस्करण १८७२ में हो चुका था। (४) 'प्रवाद-माला' स्वयं लोंग महोदय की है। यह १८७२ में कलकत्ते से प्रकाशित हुई थी। इसमें बंगला भाषा की कहावतों का संग्रह लोंग महोदय ने दिया था। आगे इन्होंने बंगाल सरकार द्वारा प्रकाशित लेविन लिखित छत्तीसगढ़ पहाड़ी की कहावतों की पुस्तक का भी उल्लेख किया है। लोंग महोदय ने रूस के काम की बहुत प्रशंसा की है। वहां लोकोक्तियों पर जो काम होरहा था उससे वे बहुत प्रभावित थे।

इसमें सन्देह नहीं कि लोंग महोदय का नाम लोकोक्ति साहित्य के संग्रह-कर्त्ताओं में ही नहीं वरन् इस कार्य की उपयोगिता को स्थापित कर सरकार को तथा विद्वजनों को मार्गदर्शन कराने वाले अग्रणीयों में सम्मानपूर्वक लिया जायगा। आपकी 'ओरियन्टल प्रोवर्ब्स' नाम की छोटी सी पुस्तक इस दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व की है।

लोंग महोदय ने इसी में 'स्नेजिरेफ' का वह वर्गीकरण भी दिया है जो उसने रूसी कहावतों के लिए काम में लिया है। लोंग महोदय कहते हैं कि यह वर्गीकरण प्राच्य (Oriental) कहावतों के वर्गीकरण का भी आधार बन सकता है। वह वर्गीकरण यों है—

१. विदेशी—कहावतों से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रभाव, कहावतों के उदाहरण सहित।

२. भाषाविज्ञान (Philology) सम्बन्धी कहावतें—शब्दों के, प्रयोगवाक्यों के, वाकवैदग्ध के, गीतों के और रूपकों (Metaphors) के अर्थ।

३. नृवैज्ञानिक कहावतें—नियम, रीति-रिवाज, विश्वास, भोजन, आवास, भूषा, सेवक, मनोरंजन, गृह जीवन, शिक्षा, सम्प्रदाय (Creed), मूढ़ग्राह (Superistitions), पंथ (Sects), पारिवारिक जीवन सम्बन्धी, विवाह, स्त्री का स्थान, शव-संस्कार, आदर-सत्कार, देशप्रेम, व्यापार, सत्य, न्याय सम्बन्धी।

४. राजनीतिक तथा विधि (Legal) की कहावतें—कहावतों में कानून, शासक की शक्ति, जनसभाएँ, उच्चवर्ग, पुजारी-पुरोहित साधु-फकीर, मेले, प्रायश्चित (Ordeals), विदेशी शासन या कानून का प्रभाव, दण्ड, सताना, भाग्यदशा, कहावतें जिनमें इतिहास की प्रतिध्वनि हो, धर्म और स्थलों का उल्लेख हो, विविध युगों का इतिहास राजनीतिक तथा न्याय विषयक कहावतों के उदाहरण सहित।

५. भौतिक विषयों के सम्बन्ध में कहावतें—ज्योतिष्पिडों, ज्योतिषीय, ग्राम्य, खेती की, मौसम की, चिकित्सा की औषध की, तथा राजाओं की कहावतें।

६. ऐतिहासिक, भू-वर्ती (Topographical)—स्थानीय, विविध वंशों से सम्बन्धित, प्रसिद्ध स्थानों से सम्बन्धित।

७ नृवांशिक (Enthrographic)।

८. व्यंग्यात्मक (Satirical)।

यह रूसी कहावतों का वर्गीकरण लोंग महोदय को भारतीय कहावतों के वर्गीकरण के आधार के लिए अच्छा लगा था। डा. कन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन शीर्षक शोध-प्रबन्ध में कहावतों के अपने वर्गीकरण के सम्बन्ध में यह लिखा है—रूप और वर्ण्य विषय दोनों को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक, छन्द, अलंकार, लौकिक-न्याय, अध्याहार, संवाद, संख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्वों पर विचार किया है जिन्होंने राजस्थानी कहावतों के रूप को किसी न किसी अंश में प्रभावित किया है। वर्ण्य-विषय को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है—

१. ऐतिहासिक कहावतें

२. स्थान-सम्बन्धी कहावतें

३. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र

क. जाति-सम्बन्धी कहावतें

ख. नारी सम्बन्धी कहावतें

४. शिक्षा, ज्ञान और साहित्य

क. शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें

ख. मनोवैज्ञानिक कहावतें

ग. राजस्थानी साहित्य में कहावतें

५. धर्म और जीवन दर्शन

क. धर्म और ईश्वर विषयक कहावतें

ख. शकुन सम्बन्धी कहावतें

ग. लोक-विश्वास सम्बन्धी कहावतें

घ जीवन-दर्शन सम्बन्धी कहावतें

६. कृषि सम्बन्धी कहावतें

७. वर्षा सम्बन्धी कहावतें

८. प्रकीर्ण कहावतें[1]

---

[1] राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन, पृष्ठ २८-५६।

उस समय इसी वर्गीकरण से संकलनकर्त्ताओं को यह दृष्टि मिल सकती थी कि किस-किस प्रकार की कहावतें संकलित करनी हैं। १८ वीं १६ वीं शती में भारत में आनेवाले विदेशी शासकों का दृष्टिकोण शासितों पर और अच्छा शासन करने के लिए उन्हें अधिकाधिक गहराई और निकटता से जानने का था। लोंग महोदय ने इस तथ्य का उद्घाटन भी कर दिया है। इतिहास-पुरातत्व और लोकवार्ता तथा साहित्य के अध्ययन के साथ राजनीति किस प्रकार जुड़ी रहती है, यह इस उद्धरण से सिद्ध होगा—I remember, in the height of the Indian Mutiny, Lord Canning sending for me at Calcutta to consult on best method of getting at native opinion—a very vital one of maintaining good rule in India. His Lordship remarked to me, 'We have certain Chiefs on our side, but how are we to know regarding what the people feel ?' I pointed out the clues the Native Press gave on this difficult subject and the result was, the Government took action and instituted the important department of Reporters of the Native Vernacular Press of India. This department, diving down into the undercurrents of native opinion, has been very useful to a Government like that of India a small body of saxon foreigners located among an oriental race, whose stand-point is so very different from the European. Now the proverbs in popular use are also of value in ganging the depths of popular sentiments तो, उनके इन पुरातात्विक प्रयत्नों का मूल उद्देश्य तो यही था, पर इसके साथ अन्य महत्वपूर्ण पक्षों की भी अवहेलना इन लोगों ने नहीं की। यह तो ऊपर दी हुई बातों से स्पष्ट है कि हिन्दी की लोकोक्तियों के संग्रह की ओर दृष्टि तो इसी समय से हो गई थी। ईलियट महोदय ने एक ग्लौसरी और लोकवार्ता पर ग्रन्थ इसी शती में तैयार किया था, उसमें भी लोकोक्तियों का संकलन और उन पर चर्चा उन्होंने की थी।

लोकोक्तियों का यह अध्ययन जन-संस्कृति और जन-मानस को समझने के लिए था। यह अध्ययन भले ही इस काल में किसी राजनीतिक दृष्टि से प्रेरित हुआ हो, पर अध्ययन-दृष्टि का अपना भी महत्व होता है। वस्तुतः लोकवार्ता का अध्ययन किसी जाति या वर्ग या देशकाल के जन से सीमित नहीं रहता, लोक-वार्ता का लोक तो जन-लोक होता है, यह दिखाई पड़ता है।

लोकोक्ति भी इसी लोक की सम्पत्ति होती है। एक उदाहरण लें—एक

अंग्रेजी कहावत—A bird in the hand is worth two in the bush—हाथ की एक चिड़िया झाड़ी की दो के बराबर है।

गैलिक है—A bird in the hand is worth a dozen on the wine—हाथ की एक चिड़िया, उड़ती एक दर्जन के बराबर है।

स्पेन की—A bird in the hand is better than a hundred (or thousand) flying—हाथ की एक चिड़िया उड़ती सैकड़ों (या हजारों) से बहतर है।

फारसी की—'हाथ की गौरैया हवा में बाज़ से कहीं अच्छी है।'

जरमन भाषा की—'हाथ की गौरैया छत के कबूतर से कहीं अच्छी है।'

इसी के कुछ बदले हुए रूप भी लीजिये—

तुर्की में—'आज का अण्डा कल की हसिनी से अच्छा।'

लैटिन में—'आज का एक घण्टा कल के दो के बराबर।'

सर्बियन में—'आज ओट (oat) की रोटी कल की केक से अच्छी।'

संस्कृत में चाणक्य सूत्र से—'श्वः सहस्त्रादद्य काकिणी श्रेयसी' (४।५८)
=उधार के हजार से नकद की कौड़ी भली।

चाणक्य सूत्र से दूसरा रूप—'श्वो मयूरादद्य कपोतो वरः (४८।५९)
=कल के मोर से आज का कबूतर अच्छा।

वात्स्यायन के कामसूत्र में—वर' सांशयिका त्रिष्कात अंसाशयिकः।
कार्षापण इति लोकायतिकाः॥
=खटके वाले निष्क (सोने का सिक्का) से बिना खटके का कार्षापण (चांदी का) अच्छा।

हिन्दी—'नौ नकद न तेरह उधार।'

सब में एक ही भाव है। शैली की भी एकरूपता दीखती है।

निष्क और कार्षापण के आधार पर डा. वासुदेवशरणजी का निष्कर्ष यह था—'निष्क और कार्षापण ईस्वी पांचवी शताब्दी पूर्व में प्रचलित थे। अतएव इस कहावत की आयु लगभग उतनी प्राचीन तो अवश्य होनी चाहिए।' (पृथिवी पुत्र-लोकोक्ति साहित्य का महत्व, पृष्ठ ११३)।

ईस्वी पूर्व पांचवीं शती यानी आज १९७४ से २४६६ वर्ष पूर्व तो लोक का मानस वही था जो आज हिन्दी की 'नौ नकद न तेरह उधार' कहावत कहनेवाला लोकमानस है। और यही मानस इंगलैंड, स्पेन, तुर्की, फारस, जर्मनी जैसे भू-खण्डों में भी समान ही लगता है।

लोकोक्तियों के माध्यम से हम इस सामान्य सार्वभौम मानस की अवस्थिति

का और ठोस प्रमाण पा सकते हैं। पर लोकोक्तियों का संग्रह या अध्ययन क्या राजनीतिक दृष्टि से या सार्वभौम मनव को खोजने के लिए ही करना चाहते हैं। ये खोजें और दृष्टियां भी अपनी-अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं, पर कहावतों का संग्रह तथा इनका अध्ययन इन्हीं दृष्टियों से नहीं करना होता।

कहावतें भाषा के जीवित और स्पंदित तन्तु हैं। किन्तु उनमें बहुत सी ऐतिहासिक संकेतवाली सामग्री भी होती है। कहा राजा भोज कहां नलुआ (?) तेली। भोज और तैलप की तुलना नहीं, यह इतिहास की बात है। इनमे जाति-गत तत्व भी विद्यमान मिल जाते हैं: 'वामन कुत्ता नाऊ: जाति देखि घुर्राऊ।' इनमें ज्ञान-विज्ञान की बातें भी रहती हैं— कोठी चढ़े पुकारे जई, खिचड़ी खाकर क्यों न वई।'[1] उक्ति-चोज आदि ऐसा क्या है जो कहावतों में नहीं।

भारत तो कहावतों का ही देश है। १६ वीं शती में १८८६ में फैलन के कहावतों के संग्रह की भूमिका में टेम्पल महोदय ने लिखा था—

'Like Spain, India is a land of proverbial saying. Their name is legion and their use constant and never ending The natives employ them in their daily intercourse, in their commercial and social correspondence in all the many (?) vicissitudes of every day life, even in the very Courts of Law. I have often heard a witness reply to a question put by pleader with a proverb, and altercations and disputes the natives hurl them at each other by the dozen '

फैलन, ईलियट आदि के साथ लोकोक्तियों के संग्रह-संकलन-अध्ययन का कार्य आरम्भ हुआ, और कुछेक लोकोक्तिकोश भी प्रकाशित हुए, पर आज भी इस क्षेत्र में अभाव बना हुआ है—उस दृष्टि का अभाव बना हुआ है जिसे वैज्ञानिक दृष्टि कहते हैं।

विदेशियों ने भारत के जन की प्रकृति और स्वरूप को जिस रूप में समझना चाहा उसके लिए उन्होंने सब प्रकार से अथक प्रयत्न किये थे और समस्त विद्या-वुद्धि का उपयोग उसके लिए किया था। उनके वे कार्य आज भी ऐतिहासिक महत्व के हैं। आज हमें उन समस्त कार्यों को स्वतन्त्र भारत की मनीषा के द्वारा संशोधित और परिवर्द्धित करांना है। प्रत्येक कहावत को संशोधित और परिवर्द्धित कराना है। प्रत्येक कहावत को तुलनापूर्वक प्रस्तुत करना होगा और अर्थ-शब्द के

---

[1] हेनरी एम. ईलियट, पृष्ठ ३६९।

सूक्ष्म अन्तरों को देशकाल की पृष्ठभूमि पर समझने का प्रयत्न करना होगा। विविध क्षेत्रों में एक ही कहावत की आधार-कथाओं को संकलित करके उनका भी तुलनात्मक अध्ययन करना होगा और उनके स्रोतों को ढूंढकर उनका भी उल्लेख करना होगा। इसी प्रकार प्रत्येक कहावत के साथ संलग्न सांस्कृतिक तत्व भी स्पष्ट करना होगा। ऐतिहासिक और धार्मिक तथा पौराणिक सूत्र भी इसी प्रकार स्पष्ट हो उठेंगे। कहावतों में परम्परा सिद्ध शैली-शिल्प भी रहती है, एक वृहद कोश में उसे भी प्रकट करना अपेक्षित होगा। शब्दों की व्युत्पत्ति का जो मार्ग पृथिवीपुत्र में डा. वासुदेवशरण अग्रवाल जी बता गये हैं, उसकी भी उपेक्षा नहीं करनी होगी। देखें, ऐसा दिन कब आता है, जब यथासंभव सर्वांगपूर्ण कहावत-कोश हिन्दी के गर्व और गौरव की वस्तु बनेगा।

कहावतों की कुछ सैद्धान्तिक चर्चा में प्रवृत्त होते ही हमें प्रतीत होता है कि कहावतों में सामान्यतः चार दृष्टियां रहती हैं जो इस प्रकार हैं—

एक दृष्टि है अर्थ-पोषण की। इन कहावतों में हमें दो भेद मिल सकते हैं। एक तो मात्र तथ्य-कथन। जैसे—गाय न बाछी नींद आवे आछी। दूसरा सामान्य से विशेष अथवा विशेष से सामान्य की पुष्टि। दूसरे शब्दों में पुष्टि विषयक उक्ति से सम्बन्ध रखने वाली कहावत।

दूसरी दृष्टि है शिक्षण की। ऐसी कहावतों में कोई न कोई शिक्षा रहती है। यह शिक्षा एक नीति विषयक हो सकती है. ज्ञान विषयक हो सकती है। नीति विषयक में—आरकस नींद किसाने खोवै, चोरे खोवै खांसी। टका ब्याज वैरागीय खोवै, राणै खोवै हांसी। और ज्ञान विषयक में—गुनि घटी गए गाजर खाये ते, बल बढ़ गयो चबाये ते-जैसी कहावतें समाविष्ट होंगी।

तीसरी दृष्टि है आलोचना की। ऐसी कहावतों में किसी वस्तुस्थिति की गम्भीर और कटु आलोचना निहित रहती है। इसमें अनेकों मानसिक रूपों के प्रकट होने की विशेष सम्भावना रहती है। गैल में हँसे और आंख नटेरे. उल्टो चोर कोतवालै डांटे; घर में बैठ्ठु मरी मैया, गदहा दैयो नौन; गदहा न जानि आंख फोरी— जैसी कहावतों में आलोचना के साथ मानसिक वैभिन्य देखा जा सकता है।

चौथी दृष्टि सूचन विषयक होती है। इनमें ऋतु, खेत, व्यवसाय और व्यवहार आदि के लिए उपयोगी ज्ञान सामग्री का समावेश रहता है। बुध बामनी शुक्र लामनी ऐसी ही कहावत है।

इन कहावतों अथवा लोकोक्तियों के साधारणतः हम तीन भेद कर सकते हैं। १. गम्भीर कथन से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य कहावतें जिन पर कुछ विस्तृत विचार ऊपर हो चुका है। २. गम्भीर कथन विषयक स्थान अथवा लोक विशिष्ट

कहावतें। सामान्य कहावतों का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। उनमें गर्भित अभिप्राय प्राय: सभी क्षेत्रों में मिलनेवाली कहावतों में मिल सकता है किन्तु कुछ कहावतें स्थान विशेष अथवा जाति विशेष में ही मिलती हैं और उनका उद्‌भव भी उस स्थल अथवा जाति विषयक किसी विशिष्ट घटना से होता है। उदाहरणत: लज्जावारी देना अथवा सीजी की दुकान जैसी कहावतें व्रज के लोहवन गांव में ही बोली और समझी जा सकती हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध उस स्थान विशेष के व्यक्ति के किसी व्यवहार से ही है। ऐसी कहावतों में कभी-कभी स्थानीय प्रतीकों के प्रयोग के द्वारा सामान्य अर्थ की अभिव्यक्ति भी होती है। केवल प्रतीक वैशिष्ट्य के कारण ही इन्हें स्थानीय कहा जा सकता है। अर्थ की दृष्टि से नहीं।

तीसरा भेद लोकोक्तियों का वह है जिसे शैली वक्र लोकोक्तियां कह सकते हैं। जैसा कि नाम से प्रकट किया है, इन लोकोक्तियों में बात कहने के वक्रता-पूर्ण ढंग की विशेषता रहती है। ऐसी वक्र लोकोक्तियां सभी बोलियों में मिल सकती हैं। व्रज के उदाहरण से हम इन्हें सात प्रकार की कह सकते हैं। संक्षेप में—१. अनमिल्ला २. भेरि ३. अचका ४. ओठपाव ५. गहगड्ड ६. ओलना ७ रखुसि। ये सभी लोकोक्तियां पद्यबद्ध होती हैं। इनको साधारणत: वक्रोक्ति गर्भित लोकोक्तियां कह सकते हैं; क्योंकि लोकमानस अन्य कहावतों की तरह इनमें अपने कथन को किसी न किसी वक्रता के साथ कहना चाहता है। उस वक्रता में वह अद्‌भुत और अतिशय तो प्रस्तुत रहता ही है कथित वस्तु गम्भीर अथवा ज्ञान-प्रदायक होते हुए भी एक ऐसे ग्रामीण हल्केपन का समावेश भी इसमें रहता है कि उक्त समस्त तत्वों के संघठन से अन्य अभिप्रायों के साथ हास्य भी गुम्फित हो जाता है। ऐसी अभिव्यक्तियां प्रत्येक भाषा और जाति के लोकसाहित्य में किसी न किसी परिणाम में मिलती ही हैं।

अभी हिन्दी में लोकोक्तियों के वैज्ञानिक अध्ययन का आरम्भ नहीं हुआ। कहीं-कहीं छुटपुट प्रयत्न हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सबसे पहले लोकोक्तियों का संग्रह किया जाए। समस्त जनपदों के ऐसे संग्रह जब प्रस्तुत हो जाएं तब उनका संतुलित अध्ययन करके वर्गीकरण किया जाए। इन लोकोक्तियों में वर्गीकरण करते समय विदित होगा कि पांच पर्त्त एक के ऊपर एक बिछे हुए हैं। एक पर्त्त ऐसी लोकोक्तियों का होगा जो सार्वभौम मान्यता रखती होंगी। इन लोकोक्तियों का रूप-विधान, शिल्प-विधान और अर्थ-विधान समस्त भाषाओं और देशों में केवल भाषा के रूपान्तर से विद्यमान मिलेगा। इन कहावतों को सार्वभौम सामान्य लोकोक्तियां कह सकते हैं। दूसरा पर्त्त ऐसी कहावतों का होगा जो भारत-भर में सामान्य हों। ऐसी लोकोक्तियों को देश सामान्य लोकोक्तियां कह

सकते हैं। तीसरा पर्त्त ऐसी लोकोक्तियों का होगा जिनमें जातिगत वैशिष्ट्य हो। ये लोकोक्तियां जिस भाषा में मिलती हैं उस भाषा के जातीय क्षेत्र में वे सामान्यतः सर्वत्र प्रचलित मिलेंगी। हिन्दी में ऐसी लोकोक्तियां मिल सकती हैं जो भारतीय आर्यभाषाओं में सर्वत्र समान रूप से प्रचलित हों। केवल साधारण रूप-भेद हो।

चौथा पर्त्त इन लोकोक्तियों में जनपदीय पर्त्त हो सकता है जिसमें बोली के क्षेत्र में ही मिलनेवाली कहावतें स्थान पा सकेंगी। पांचवें पर्त्त में वे कहावतें आयेंगी जिनमें ग्राम विशेष अथवा स्थान विशेष की विशेषता ही लक्षित होगी और जो उसी क्षेत्र के लिए सार्थक होंगी। हिन्दी में लोकवार्ता साहित्य के अध्येता को ये समस्त प्रयत्न और अध्ययन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में लोकवार्ता साहित्य के संग्रह का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में मार्ग्रेट एम ब्रायन ने जिन बातों की ओर ध्यान दिलाया है वे ये हैं—

कोई भी कहावत या मुहावरा जिसमें कोई ज्ञान गर्भित हो अथवा किसी अलंकार का समावेश हो, उपमा अथवा रूपक का सभी को संग्रह कर लेना चाहिये। जितना अधिक संग्रह होसके उतना ही अच्छा। जहां यह संदेह हो कि किसी एक विशेष कथन का संग्रह किया जाए या नहीं, तो संग्रह कर लेना ही उचित है। क्योंकि जो अनावश्यक है, उसको बाद में छांटा जा सकता है। किन्तु यदि किसी क्षेत्र की कोई कहावत संग्रह में आने से रह गई तो वह एक बड़ी हानि हो सकती है। लोककहावतों के ८ रूप उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१. ऐसी लोककहावतें जो पूरे वाक्य के रूप में होती हैं। हिन्दी से यदि उदाहरण लिया जाए तो 'जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं।'

२. विद्वानों द्वारा निर्मित पूरे वाक्यों के रूप में अभिव्यक्त होनेवाली कहावतें। उदाहरणार्थ—'शरीर माद्यम् खलु धर्म साधनम्।'

३. सतुक कहावतें—'उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान।'

४. मुहावरेवाली कहावतें जो एक पूर्ण वाक्य नहीं होतीं, जिनमें क्रिया की प्रधानता होती है। जो कि इनफिनिटिव रूप में आतीं हैं और जिनमें प्रथम संज्ञा महत्वपूर्ण होती है। जैसे—'खीसे निपोरना।'

५. ऐसे-ऐसे मुहावरे जिनमें क्रिया न हो। जैसे—'आकाश कुसुम।'

६. तुलना और उपमा से युक्त कहावतें। जैसे—'काजल से काली।'

७. वेलरिज्म वेलर दी किग्स के 'पिकविक पेपर्स' में एक पात्र है, जो अद्भुत रूप से कहावतों का उपयोग करता है। ऐसी कहावतें वह चुनता है जो बहुत प्रचलित हैं और उनका प्रयोग वह कुछ उपहास और व्यंग्य की दृष्टि से करता है। अतः ऐसी कहावतें जो वेलर की शैली में कही गयी हों, इस वर्ग के अन्तर्गत आएँगी।

८. आधुनिक व्यंग्य हास्यपूर्ण कहावतें तथा तुकें। यह स्पष्ट है कि लोकोक्तियों का यह वर्गीकरण भारतीय कहावतों के लिए उतना उपयुक्त नहीं है किन्तु इससे यह संकेत मिल सकता है कि किस प्रकार के लोककथन को हमें लोकोक्तियों की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए एकत्र करना चाहिए। यहां यह बात भी ध्यान रखने की है कि लोकोक्तियों से परम्पराएँ बनती हैं। एक साहित्यिक परम्परा और दूसरी लोक परम्परा। लोकसाहित्य के विद्यार्थी को साहित्यिक परम्परा वाली कहावतो को अलग निकाल देना होगा। उसे केवल लोकपरम्परा की कहावतों को ही अपने अध्ययन का विषय बनाना होगा। लोककहावतों को लिपिबद्ध करने के लिए भी आठ नियमों का उल्लेख किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं—

१. तीन इन्च चौड़ी और पांच इन्च लम्बी चिटों का उपयोग कीजिए या तो उन पर स्याही से लिखिये या टाइपराइटर से।

२. प्रत्येक कहावत को एक पृथक चिट पर लिखिए जिस रूप में आपने उसे सुना है। परिमार्जन मत कीजिए। यदि आपने उसी कहावत के अन्य रूप भी सुने हों तो उनका भी उल्लेख कर दीजिए।

३. साथ ही कोई अन्य उपयोगी सूचना हो तो उसे भी दीजिए। जैसे-कहां, कब और किसके द्वारा उस कहावत का प्रयोग हुआ था। इस तथ्य का निश्चयात्मक रूप से उल्लेख कीजिए कि वह कहावत, उस विशेष विदेशी, सामाजिक, धार्मिक, औद्योगिक अथवा अन्य समुदाय के लिए विलक्षण तो नहीं है। यदि आवश्यक हो तो उसका अर्थ भी लिख दीजिए।

४. ऊपर बायें किनारे पर उस कहावत का जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण शब्द हो—बहुधा जो संज्ञा के रूप में होगा; कभी-कभी क्रिया अथवा विशेषण के रूप में होगा—उसे लिख दीजिए।

५. ऊपर सीधे कोने में उस प्रदेश का नाम लिखिए जहाँ से सबसे पहले उसे संग्रह किया गया है।

६. कार्ड पर कहावत अथवा लोकोक्ति और उसके अर्थ को कोष्ठकों में कर दीजिए। यदि आप उसके अर्थ को भली प्रकार नहीं समझते। इस कहावत अथवा लोकोक्ति के सम्बन्ध में जो अन्य ज्ञातव्य बातें हों उनका भी उल्लेख कीजिए। जैसे-मूलतः यह किस भाषा से आयी है, किस अवसर पर सुनी गयी अथवा किस पुस्तक या पत्रिका से इसे उतारा गया।

७. सावधानी से उसके समस्त लिखित स्रोतों का उल्लेख कीजिए। उसके लेखक का पूरा नाम दीजिए। पुस्तक अथवा पाण्डुलिपि का पूरा नाम दीजिए। प्रकाशन

का वर्ष अथवा लिखे जाने का वर्ष लिखिए। पुस्तक अथवा पाण्डुलिपि की पृष्ठसंख्या दीजिए, यदि उसमें पृष्ठसंख्या पड़ी हो।

८. इस कार्ड की पीठ पर अपना नाम और पता भी दे दीजिए। जिससे आपके योगदान का श्रेय आपको दिया जा सके। रबर की मोहर इसके लिए सुविधाजनक हो सकती है।

हिन्दी क्षेत्र में अभी ऐसी वैज्ञानिक सस्थाएं प्रायः नहीं हैं जो लोकवार्त्ता और लोकसाहित्य के विषय में वैज्ञानिक कार्य कर रही हों। फिर भी व्रजभाषा से सम्बन्ध रखने वाली संस्था व्रज-साहित्य-मण्डल एक ऐसी संस्था अवश्य है जो इस प्रकार का कार्य कर रही है और इस प्रकार से लोकोक्तियों को संग्रह करने वाले व्यक्ति अपने संग्रह व्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा के मंत्री को भेज सकते हैं। जहां उसका आवश्यक वैज्ञानिक अध्ययन हो सकता है।

लोककहावतों के सम्बन्ध में इतनी चर्चा के उपरान्त इसके दूसरे अंग पर विचार करना समीचीन होगा। यहां पर थोड़ा-सा विचार कहावतों के उद्भव पर भी कर लेना आवश्यक है। कुछ लोगों का अनुमान है कि कहावत में सूत्र शैली मिलती है। अतः इनका जन्म सूत्रकाल में हुआ होगा। उस युग में जिसमें पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी लिखी थी। इस युग में सूत्र रचना की ओर बहुत प्रवृत्ति थी। संभवतः उसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप लोकमानस ने भी सूत्रशैली में अपनी अभिव्यक्ति की। यह दृष्टिकोण समीचीन नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक तो सूत्रकाल से पूर्व ही कहावतों का प्रयोग मिल सकता है। वेदों तक में ऐसे प्रयोग हैं, जिन्हें कहावत अथवा लोकोक्ति माना जा सकता है। दूसरे सूत्रशैली में जिस उच्च बौद्धिकता और शब्द अधिकार का पता चलता है, वह इन लोकोक्तियों में साधारणतः नहीं मिलता। लोकोक्ति साधारणतः लोक की काम चलाऊ अभिव्यक्तियां हैं। बहुत सीधे-सादे शब्दों में लघुतम रूप में अपने भावों को प्रकट करने की चेष्टा में व्यवहार दृष्टि से उपयोगी बनने के लिए इनका जन्म हुआ होगा। अतः सूत्रकाल के घोर बौद्धिक और पाण्डित्यपूर्ण वातावरण से इनके जन्म का सम्बन्ध नहीं किया जा सकता। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कहावतें शुद्ध आदिम मानव के मानस से उद्भूत नहीं मानी जा सकतीं। जैसी कि लोककहानियां अथवा लोकगीत नाम की चीजें मानी जा सकती हैं। क्योंकि लोकमानस मानस-चित्रों (इमेजेज) की छाप तो सहज ही ग्रहण कर लेता है और इन्हें वह गीत और कहानियों में प्रकट करता है। मानस चित्रों से ऊपर उठकर बौद्धिक भाव-तत्वों के संयोजन के लिए जिस स्थिति की आवश्यकता है, वह स्थिति आदिम मानस की अन्तिम विकास कोटि की सीमा पर पहुंचती है। वहां से जन्म लेकर ये कहावतें निरन्तर ऐतिहासिक विकास के साथ विकसित होती गयी हैं और

बढ़ती गयी हैं। कहावतों का क्षेत्र गीतों और कहानियों से भिन्न व्यवहार और व्यवसाय का क्षेत्र है।

कहावतें जनमानस और जनजीवन में कहां कैसे उद्योग से आती हैं और उनमें लोकमानस किस प्रकार अभिव्यक्त होता है। इसे हम यों प्रस्तुत कर सकते हैं—

हमारी प्रत्येक अभिव्यक्ति में हमारे मानस की झलक रहती है। हमारे वाणी-विलास में तो हमारे मानस का प्रतिबिम्ब और भी अधिक होता है। यही कारण है कि लोकोक्तियों में लोकमानस की भरपूर झलक मिल जाती है। लोकोक्ति में लोक का अनुभूत ज्ञान ठूंस-ठूंस कर भरा होता है। लोकोक्ति के द्वारा लोक एक ओर तो चोट देता है, दूसरी ओर मनुहार करता है। किसी को चेताता है, किसी को उकसाता है, किसी की मूर्खता पर छींटा कसता है, किसी को रोकता है; किसी को टोकता है; किसी पर हंसता है, किसी पर थूकता है। किसी को पते और ज्ञान की बात बताता है, किसी का भ्रम दूर करता है। लोकोक्ति के सागर में डुबकी लगाने पर लोक के मन की विविध मौजों के थपेड़े लगते हैं। इन थपेड़ों में तरह-तरह के आस्वाद होते हैं

ब्रज में लोकोक्ति के सभी रूप आपको मिल जायेंगे। लीजिए ये कोई आरहे हैं; शायद यमुना स्नान करके लौटे हैं; तिलक छाप सुशोभित हैं, रामनामी दुपट्टा लहरा रहा है—

एक— हरि ओम; हरि ओम, जय राधारानी, जय घनश्याम, जय द्वारकाधीश; च्यों लाला, जि का वेचि रहो ऐ ?

दूसरा—वा पंडतजी, आंखिनु के अंधे और नाम नैन सुख। जि इत्ती बड़ी बड़ी मका की भुट्टियाऊ नायें दीसति।

एक— जय राधारानी; जय कन्हैया जू ! आजु काली के छोरान नैं तो ऊदि उठाइ लई है। जिन सफेद पै कारो जमन दिगे। भला जितो बताइ कि का भाव दई है।

दूसरा— आपु तेऊ का भावु करनो ऐं। जौं चारि की एक दई ऐ।

एक— राम! राम! हरे! हरे! भई पल्लै है गई। तेरी तो ही मैं ई फूटी ऐ। आंखिन में सरसों फूलि रही है। एक पइसा की चीज चारि की बतावतु ऐ। ठैंत्तो बा। अबहाल सिपाई ए बुलाइ कें ते उठवासतू।

दूसरा— जाई ते कैहवें म्हों में राम बगल में ईंट। कछु तुम्पैते ले तौ नांय लए। भावु न जंचे तो मति लेउ। पर रस्ता पर्यो ऐ। पर गीदि गए औ न। गौंदी गाइ गिलंदि खाइ

यहां लोकोक्तियों में ही परस्पर चोटें की गई हैं। बातें कितनी चुभनेवाली होगई हैं। लोकोक्तियां यहां बोली के मुहावरों का ऐसा अविच्छिन्न अंग होगया है जैसे दूध में पानी होजाता है। एक लोकोक्ति कितनी-कितनी चोटें करती है, एक ही साथ। 'आंखिन के अंधे नाम नैंन सुख।' सीधा सा अभिप्राय है कि क्या दीखता नहीं पर लोकोक्ति ने शब्द सौन्दर्य के साथ नामकरण की प्रणाली पर भी फब्ती कस दी है। सफेद पर काला जमाने की उक्ति में लोक-मानस ने सफेद और काले को प्रतीक रूप में ग्रहण कर सही गलत, पुण्य पाप आदि भावों की ओर ही संकेत नहीं किया; न विषयों के सामंजस्य की ओर संकेत मात्र किया है; इन सबके साथ, समस्त लोकोक्तियां लोकमानस का बल 'जमने' पर है। सफेद पर काला जमाने के माने हैं विचित्र व्यवस्था करना; जैसे सफेद रंग पर या सफेद कागज पर काला रंग या काली रेखाएं खूब जमती और खिलती हैं उसी प्रकार उचित व्यवस्था का अर्थ उक्त उक्ति से अभिप्रेत है। इतने अर्थों की संभावनाओं के कारण लोकोक्ति अत्यन्त प्राणवान हो गई है। 'हरे में ई फूटना तथा आंखों में सरसों फूलना, म्हों में राम बगल में ईंट' इन तीनों उक्तियों में मार्मिक चोट के साथ लोक-मानस ने हास्य का पुट भी रक्खा है। ये उक्तियां पूरी कठोरता के साथ यथार्थ. किन्तु अप्रिय प्रवृत्ति का पर्दाफाश कर देती हैं। 'गीदी गाइ गिलोंदे खाइ' में लोकमानस साहित्यकारों की अनुप्रास प्रियता के कान काट रहा है, साथ ही शब्द ध्वनि से मन की लपलपाहट और अर्द्ध ध्वनि से लोलुपता प्रकट कर रहा है।

पर यह न समझिए कि लोकमानस केवल लोकोक्तियों का उपयोग परस्पर चोटों के लिए ही करता है। ये देखिये चौपाल पर बैठे लोगों में विविध वार्तालाप हो रहा है; इसमें ज्ञान चर्चा उठ खड़ी हुई—

एक—मेरी तौ आजु कल्लि से तबियत खराबु रहैति ऐ।

दूसरा—चौं; खराब रहैगी; कछु नेम कायदा ऊ जान्तु ऐ। बड़े बूढ़े कहिगए कि क्वारी करेला; सावन दही न खानौ चाहिये।

तीसरा—भई उन्नें तो जिऊ बतायो कै 'सावन ब्यारू जब तब कीजै
भादौं ब्यारू नाम न लीजै।'

एक—मोइ इन बातनु को का पतो ओ।

दूसरा—पते की कहा बात ऐ। दुनियां जान्ति ऐ, बड़े बूड़ेन की बातनि पै ध्यान दियौ करौ। बड़े बूढ़ेन पै ऐसी ऐसी बातें आवति ऐं के 'बस्सि को ऐ कर्नैटा बेजरिमें।'

तीसरा—ठीक कहै तौ एक नें बताई कै "सुक्करवारी बादरी, रहै सनीचर छाइ कहै घाघ सुनि भड्डरी बिनु बरसें नहिं जाइ।"

एक— जिही तो ऐमी ई ऐ कै सवेरै को मेह ग्रौर साझ को मेहमान-टारे ते नाहिं टरै।

दूसरा— जिई चौं, खेत क्यार की बड़ी बड़ी बातें लोकोक्तियों में बड़ी आसानी से समझ में आइ जाति एं। जाने किन्नैं सुनाई कै "पूरन पुनरवसु बोइय धान, अस लेखा को दो परमान, मका पसीना दीजिए पेरलि; फिर दीजियो परइल में ठेलि।"

तीसरा—कछु पूछियो मति; वड़े वड़े पते की वातें मिलि जाति एं। जाई लोकोक्ति ऐ लै लेइ कै—"सन घनरो वन वैंगरों; और मेंढक फुद्धी ज्वार-पेड़ पेड़ पै वाजरो-जामैं आवै सोटा सी वारि।" कहि देउ कैसे वोइ वे की सिगरी वातें थोड़े में समझाइ दई एं।

लोकमानस ने इन कहावतों में केवल ज्ञानराशि संचित ही नहीं की है, उसको कंठ पर जाने का सुगम साधन भी प्रदान कर दिया है। वस्तुत: लोकोक्तियां लोक और गांव की यथार्थ पाठशालाएँ हैं।

पाठशाला, पर सामान्य पाठशाला नहीं; विशिष्ट पाठशाला, जिसमें ज्ञान-विज्ञान ही नहीं; मनुष्य के स्वभाव और उसकी जातिगत विशेषताओं का भी चित्रण मिलता है। मनुष्य के चरित्र के अध्ययन के छोटे-छोटे सूत्रों में वड़े-वड़े पोथों की वातें लोकमानस से दवोच-दवोच कर ठूंस कर भरदी हैं। उदाहरणत: एक कुछ लम्वी कहावत यों है—

सौ पर फुली सहस पर कानौं
ताके ऊपर ऐंचक तानौं
ऐंचक ताने नें करी पुकार
मैं मानी कंजे ते हार
कंजा विचारो कहा करै
जव कोथवारि के पातै परै
जाके नायें छाती वार
ताते हारि गयो करतार।

एक से एक वढ़कर लोगों का पारस्परिक मूल्यांकन यहां कर दिया गया है। जातियों के सम्वन्ध में कहावतों का मजा तो ऐसे अवसर पर ही आता है जवकि कई जाति के लोग एक स्थान पर संयोग से मिल जाएँ और उनमें छेड़खानी शुरू हो जाए। लीजिए एक ऐसी ही गोष्ठी है। सुनिए, सभी मौज में कैसी वातें कर रहे हैं—

एक— 'ओ जाटके, यह क्या कर रहा है ? किसी ने ठीक ही कहा है– 'लाख जाट पिंगल पढ़ैं एक मुच्च लागी रहै।'

दूसरा— अरे यह क्या कोई आज की है; न जाने कब से लोग कहते आए हैं कि–'जाकौ बनिया यार, ताकूं नहिं वैरी दरबार।'

पर भगवान का विधान देखिए कि हमको यार दिया तो बनियां ही दिया, जिसके स्वभाव को मैं जानता हूं कि 'नीबू बनियां आमियां कसकें ही रस देईं।'

एक— बस रहने दीजिए। 'जाटै लगी ऊत्र, भैंसि वेचि घोड़ी लई; खोदन लग्यौ दूब।'

दूसरा— अरे पता भी है कि वेपढ़ा जाट पढ़ा जैसा–और पढ़ा जाट खुदा जैसा।'

तीसरा— ओहों देखें खुदा की शकल।

दूसरा— आप भी अपनी टांग अड़ाने आगये। 'सूप तो सूप चलनी भी बोली, जामें बहत्तर सौ छेद।'

इन लोकोक्तियों में जातियों के स्वभाव का निदान दे दिया गया है, पर सभी में एक विनोद का भाव भरा हुआ है। इससे चुभाने पर ही ये उक्तियां चुभती हैं; और बड़ी तीखी होकर चुभती हैं, पर सामान्यतः हँस लेने का भी काम देती हैं। ऐसी ही उक्तियां ब्राह्मण, कायस्थ, नाई, कुम्हार, तेली आदि पर हैं। इन सभी में जनजीवन के विविध लोगों की क्रिया-प्रक्रिया भली भांति प्रतिविम्बित मिलती है। साथ ही इन उक्तियों का अन्योक्ति की भाँति अन्यत्र भी उपयोग हो सकता है। जैसे—

धोवी ते का तेली घाटि
वापै मौगरा वापै लाठि।

यह उक्ति केवल धोबी और तेली जातियों के लिए ही नहीं वरन् दो व्यक्तियों की पारस्परिक होड़ पर भी फब्ती कस सकती है। मोंगरा और लाठि इस साम्य में कितना गहरा व्यंग्य है, यह वताने की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार लोकोक्तियों में जनजीवन का हर्ष, विषाद, आनन्द, व्यंग्य, उमंग, ज्ञान-विज्ञान, आशा और निराशा सभी अभिव्यक्त होता है। इनके उपयोग से अवसर पर एक विशेष मार्मिकता और चुहल से वातचीत खिल उठती है; इसीलिए जनजीवन में पग-पग पर आपको लोकोक्तियां बिखरी मिलेंगी। इतनी व्यापकता के कारण लोकोक्तियों ने कितने ही नये रूप भी ग्रहण कर लिए हैं।

एक— चौं रे छोरा, जि का करि रहौ ऐ। अरे हाथ पाम टूटि जांगे। का घरते बढ़ि कें ऐ का ?

दूसरा— नांय बाबा यु पतिंग उड़ी रही ऐ, काहैकी तो इमपाई ई [illegible],
सोई लपकि लुंगो।

एक— अबे पागल, जा दीवारि पै [illegible], पू पना ऊपर चढ़ि गयौ ऐ,
पांव फिसल जाइगौ। सुनी नांय का—
'एक आंखि तो कुआ कानौं, दूजी सई [illegible]।
भीति पै चढ़ि कै दौरन लागो, जेई मारिवे के ओटपाइ।'
चलि उतरि मां ते।

यह हुआ ओठपाव। और आगे—

एक— जि तू गुस्स चों बैठो ऐ ?

दूसरा— नांय, कछु बात नायँ।

एक— अरे दाई ते पेटु का छिपावतु ऐ। मैं सबु जानूं। [illegible]
कहा सुनी हैगई लगति ऐ।

दूसरा— जब सबु जान्तौ तो पूछत काए हूं औ।

एक— भइया जितो खुंसि की बात ई होइ गई है—
एक तो बो लम्बी जोई
दुसरा कूं बांझ होई
तीसरा कूं बुद्धि हीन
खुंसिस ऊपर खुंसि तीन
अब तो भुगतनी पड़ैगी; अच्छा भइया राम राम।

इसे ही खुंस कहते हैं; भेरि नाम की भी लोकोक्ति होती है।

एक— चों भइया, रोमतु चों ऐं; आ आ ! का है गयो।

दूसरा— है का गयो ऐ। बेई भइया-भतीजे ऐं। जब तक अपने खेत में
मेहनति करि कें खमामतु रह्यो, तब तक तो मैं उनको भाई-बापु
औ। अब जि जान्तें कै न तो वापै कागु होई, न जा में पौरिसु
ऐ कै भाइकें लरि सकै; और पइसाऊ हतु नांय कै मुकद्दमा करि
सकै, सो आजु मोई घर में तेऊ निकारि दयो ऐ।

एक— पल्लै करि दई। भइया ! हमतो तोतै पैहलैई कहैत ए कै
सांपु के जाएन्तें दूधु मति पिया वै। जे काए के चिरे पै मूंति
सकत एं। परि तू का तब कछू सुन्तो का ? अब है भई न भेरि।
जा घुसि उनई में औरू जा। ऐसे न के लैं पैहलेंई ते चली
आई ऐ कै—

गीदी गाइ गिलौंदे खाइ
दौरि दौरि महुआ तर जाइ
पकरि ग्वारिया ने लौठी दइ
गड्आ गढ़त भेरि है गइ।

सो अब रोएं ते कहा होतु ऐ। पहलैंई सोचि लैंनो ओ।

जनजीवन में भेरि के अवसर ही नहीं आते, सुख और आनन्द के अवसर भी आते हैं। जब मन पूर्ण संतुष्ट रहता है और सोचता है कि बस ऐसा ही सुख बना रहे या एक विशेप प्रकार के सुख की कामना करता है। ऐसे ही कुछ लोग इस बगीचे में जमा हैं—

एक— वाहरे दद्दू ! कैसी वहारें आइ रही एँ, रंगु छाइ रह्यौ ऐ। बम भोले; जमनदे गोले।

दूसरा— चकाचक्क छन रही ऐ।

तीसरा— भइया जा समै या में मोइ जिन खिलैया चनानु में बड़ौ स्वादु आइ रह्यौ ऐ।

दूसरा— अरे जि देखौ, जि कदम के पेड़; जे करील की कुंजै। का कही है वा रसिक रसखान नें, ओहो—कोटिक दू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।

एक— अरे जि सव बंसी वारे की लीला ऐ। जित माऊँ देखै उतई माऊँ आनंदु ! घुटन दै, पीयन दै; मौज में बहन दै।

दूसरा— भइया बात जिए कै—
बर पीयर की छांइ कि संगति घनों की
मांग तमाखू मिर्च कि मुट्ठी चनों की
भूरि भैंसि को दूध बतासे घोलना
इत्तौ दे करतार फेरि न बोलना।

तीसरा— ओहो जि ओलना ! परि बिना गहगड्ड के मजौ नायें—
सेत फूल हरिपाई डंडी औ मिरचौं के ठट्ट
हम घौंटे तुम पियौ मुसाफिर यों मांचै गहगड्ड।

सब— मचै गहगड्ड मचै गहगड्ड।

और इस प्रकार लोकमानस जनजीवन में ऐसी कुछ आनन्द की वस्तुओं की कल्पना से गहगड्ड आनन्द का लाभ करता है। ऐसे भावों से लोकोक्तियों में हृष्टता का संवर्द्धन होता है। यों लोकोक्ति ब्रज के जीवन के समस्त व्यापारों

में अपनी व्यापकता दिखा कर जीवनयापन में एक सुखद वैचित्र्य भर देती है। और कहावतों में कविता में जो कमाल आता है, उसे जानने के लिए भारतेन्दु-कालीन काव्य में लोकोक्तियों के प्रयोग पर यहां विचार किया जा रहा है।

भारतेन्दु युग पुनराहरण का युग था। एक नयी चेतना व्याप्त होने लगी थी। इस नयी चेतना से इस युग के साहित्यकार ने प्राचीन साहित्य की परम्पराओं को भी निष्ठापूर्वक निभाने का प्रयत्न करते हुए नयी भूमियों, नयी दिशाओं तथा नये शिल्पों को ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने के प्रयत्न किये। जीवन के यथार्थ को जितनी भी कुशलता से वह समेट सका, उतना उसे समेटा। यह वह युग था जिसमें भाषा अत्यन्त संजीव और मुहावरेदार थी। सच्चे अर्थों में लेखकों ने भाषा के मुहावरे को ग्रहण किया था और उसका सशक्त प्रयोग किया था। मुहावरे के साथ ही लोकोक्ति भी अभिव्यक्ति का स्वाभाविक अंग बन कर आयी थी और इसने अभिव्यक्ति को जगमगा दिया था।

लोकोक्ति तो रचनाओं के सिर या शीर्ष पर बैठ कर इसी युग में बोल उठी थी। भारतेन्दु का अंधेर नगरी प्रहसन अत्यन्त प्रचलित लोकोक्ति-'अंधेर नगरी बेबूझ राजा, टकासेर भाजी, टका सेर खाजा' से ही तो सिर चढ़ा था। घूरेन के लत्ता बिनें, कनातन के डोल बांधे; यह पूरी लोकोक्ति ही शीर्षक बन गयी पं० प्रतापनारायण मिश्र के एक रोचक और उपयोगी निबंध की।

गद्य को प्रधानता मिलती जारही थी। गद्य के साथ मुहावरे का आग्रह था। उसी के साथ, गद्य में ही लोकोक्ति ने भी महत्व पा लिया था क्योंकि अभिव्यजना की सामर्थ्य को ये दोनों ही संवर्द्धित करते है---मुहावरे और कहावतें। ये उसमें सहज रोचक वक्रता भी पैदा करते हैं। कहावतें तथा लोकोक्तियों में काव्यात्म का भी हलका स्पर्श रहता है। कितनी ही लोकोक्तियां या कहावतें ऐसी हैं जो किसी कवि की कृति से चू पड़ी हैं और लोगों का कण्ठहार बन गयी हैं। कितनी लोकोक्तियां तुलसी की कृतियों में हमें मिली हैं।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाय पर वचन न जाई॥

और गंवई-गांव से लेकर नगर और शहर में, सामान्य व्यावहारिक पुरुषों से लेकर सभ्य और साहित्यिक व्यक्ति आज तक इसका उपयोग करते आये हैं। एक तुलसी ही क्यों अनेकों ऐसी लोकोक्तियां हैं जो किसी न किसी कवि से आयी हैं-ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय, काजर की कोठरी में कैसोहू सयानो जाइ, एक रेख काजर की लागिहै पै लागि है। कोकिल के पूत कर कौवन के पाले हैं, जाते कियो नेह ताते फिर भजनो कहां, आए परवाना पर चले ना बहाना, जूथ जभुकनते नहीं केहरिकहु नसि जाई, खुटाई पौरहि पौर भरी, नहि हो तो

पतंग तो वापुर इन्दु की जोत हूं जोर कहा करतीं, साथ धरी का धरी ही रही।

इसमें से कितनी ही भारतेन्दु युग की देन मानी जा सकती हैं। ग्वाल कवि की कविता में जैसे प्रत्येक वाक्यांश लोकोक्ति का चमत्कार उत्पन्न करता जाता है। यह छन्द देखिये—

चाहिये जरूर इनसानियत मानुस को
नौवत वजे पै फेर मेर वजनी कहां ?
जाति औ अजाति कहा हिंदू औ मुसलमान
जाते कियो नेह ताते फेर भजनो कहां ?
ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै वुराई लइ
लाजहू गंवाई ताते फेर लजानो कहां ?
या तो रंग काहू के न रंगिये सुजान प्यारे
रंगे तो रंगेई-रहे, फेर तजनो कहां ?

क्या इस छंद में प्रत्येक चरण का कोई न कोई अंश कहावत या लोकोक्ति की भांति गले पड़नेवाला नहीं है ? जीवन का यथार्थ जब कविता में ढलता है और सूक्ति वन जाता है तो वह लोकोक्ति की भांति उपयोगी हो उठे तो आश्चर्य की क्या वात है। ग्वाल के एक अन्य छंद के ये अंश—

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि
खावो पीयो देव लेव यहीं रह जाना है।

o o o

आये परवाना पर चले ना वहाना यहां
नैकी करजाना फेर आना है न जाना है।

ये भी क्या लोकोक्ति नहीं वन गये हैं।

दीनदयाल गिरि का यह दोहा—

वहु छुद्रन के मिलने तें हानि वली की नाहिं
जूथ जंवुकन तैं नहीं केहरि कहुं नसि नाहिं।

अपने आपमें ही लोकोक्ति है। चरणदास की शिष्या दया कुंवारी भी जैसे लोकोक्ति की रचना करते हुए कहती हैं—

दयाकुंवारी या जात में नहीं रहयो थिर कोय।
जैसो वास सरांय को, तैसो यह जग होय।

इसी प्रकार कवि राव वखतावरसिंह भी यों कहते हैं—

धाय जो न ले तो श्री प्रताप वीरवर तो तो
धोंतो न कलंक जो हजार गंग धारा ते।

तो मानो एक कहावत ही गढ़ते होते हैं। पर इस भारतेन्दु युग में प्रचलित लोकोक्तियों को लेकर उन्हें विशेष रूप से संशोधित करके अपनी रचना में गूंथने की कला भी मिलती है।

नवनीतजी का यह कौशल इन चरणों में देखिये—

धावन बूप संयोग सुगंध ले, केलि-कपूर की जोति जुरावन।
कान्ह दिवारी की रैन चले, बरसाने मनोज के मंत्र जगावन।

दिवारी की रैन में मंत्र जगाना को कैसे जड़ा नग की तरह इस छंद में। और ठाकुर जगमोहनसिंह भी किस अदा से कह रहे हैं—

निसि चंद वसंत वहार हूँ मंद, मनोहरता कहाँ-सो धरती
धरती जब नूतन साजती साज, पपी पिक तान जबै भरती॥
जगमोहन अमृत धाय कहाय गले विष पावक लौ जरती
नहिं हो तो पतंग बापुरे इन्दु की जोतहुं जोर कहा करती॥

दमोह के हाजी अलीखां अली का भी यह चमत्कार देखिये कि वह किस सौष्ठव से लोकोक्तियों की लड़ी ही छंद में पिरोये दे रहे हैं—

दाता नहिं रंका होत दान के दिये ते कबो
कूकर ना वृप होत गंग के नहाए तैं
अस्त्र के गहे तें कूर शूर नहिं होय जात
बगुला न हंस होत मोती के चुगाये तैं
पोथी पाय मूर्ख जन पंडित ह्वै जात नहीं
तपी नहीं होत भस्म अंग के रमाए तैं
खून पियें स्यार नहिं सिंह होत हाजी अली
तीतुर के जाए बाज होत न सिखाए तैं।

भारतेन्दु युग में समस्यापूर्ति की एक प्रबल पद्धति पल्लवित हुई थी। इस युग के प्रायः सभी पत्र समस्यापूर्ति को स्थान देते थे। सिद्ध कवियों से लेकर नौसिखिये कवि सभी को समस्यापूर्ति करने में रुचि थी। कवि सम्मेलनों में भी दी हुई समस्याओं पर कविताएँ पढ़ी जाती थीं। इन समस्या पूर्ति के लिए दी गयी समस्याएँ ही कभी-कभी लोकोक्ति के रूप में ग्रहण कर लेती थीं। भारतेन्दु जी को एक गोष्ठी में यह समस्या दी गयी—ग्रीष्मै प्यारे हेमन्त बनाइये—स्पष्ट है कि यह लोकोक्ति नहीं। यह रीतिकालीन विलास के लिए—गुल गुली गिल में

गलीचों से युक्त कर हेमन्त का आनन्द प्रदान करने की कल्पना से व्याप्त है—पर भारतेन्दु जी ने जब यों समस्यापूर्ति की कि—

भोज मरे अरु विक्रम हू
किन को अब रोइ के काव्य सुनाइये
भाषा भई उरदू जग की अब तो
इन ग्रन्थन नीर डुबाइये
राजा भये सब स्वारथ मीन
अमीर हू हीन किन्हें दरसाइये।
नाहक देनी समस्या अब यह
ग्रीष्मै प्यारे हेमन्त बनाइये।

तो वही समस्या लोकोक्ति का अर्थ देने लगी।

किन्तु इस युग में लोकोक्ति या कहावत का प्रेम इतना अधिक था कि कुछ ने तो उनको लेकर संजोकर पूरे-पूरे ग्रन्थ ही रच डाले। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र इसमें पारंगत थे। उन्होंने लोकोक्ति शतक लिखा। एक उदाहरण देखिये—

छोड़ि नागरी, सुगुन आगरी, उर्दू के रंग-राते
देसी वस्तु विहय, विदेसि सों सर्वस्व ठगाते
मूरख हिंदू, कसे न लहें दुख, जिन कर यह ढंग दीठा
घर की खांड खुरखुरी लागे, चोरी को गुड़ मीठा।

स्पष्ट है इस छंद में मिश्रजी ने कहावत को ही समस्या का स्थान दिया है क्योंकि उनका यह छंद समस्यापूर्ति जैसा ही लगता है। वस्तुतः लोकोक्ति को समझाने के लिए ही यह तथा ऐसे ही अन्य छंद बनाये गये हैं। एक और उदाहरण लीजिये—

अपने काम अपने ही हाथन सों भल होई
परदेसिन पर धमिन सों आशा नहिं कोई।
धन धरतो जिन हरी सु करि है कौन भलाई
जोगी काके मींत कलन्दर केहिके भाई॥

इस छंद में लोकोक्ति ने सामान्य मित्योदेश को चमत्कार और चुटीला बना दिया है। और श्रृंगार रस में मान मत्र के सम्बन्ध में इस छंद में लोकोक्ति सी न लगनेवाली लोकोक्ति या कहावत का जड़ाऊपन भी देखिये—

वान बैठी है मान की मूरतिसी
मुख खोलत बोले न नाहीं न हां,
तुमही मनुहारी के हारि परे
सखियन की कौन चलाई तहां

वरसा है प्रतापजू धीर धरों
अवलौ मन को समझायो जहां
यह प्यारि तवै वदलेगी कखु,
पपिहा जव पूछि है पीक कहां ।

और नाथ रामाशंकर शर्मा 'शंकर' भी तो अनूठे कवि हैं। किस अनूठेपन से वे भी कई लोकोक्तियों को गूंथ कर अन्त में समस्यापूर्ति सी करते हुए समस्या को ही एक लोकोक्ति जैसी सार्थकता प्रदान करते मिलते हैं—

मारिवो है समुद्र को शम्वुक में
छिति कों छिगुनी पर धरिवो हैं ।
वांधिवो है मृणाल सौं मत्त करि
जही फूल सौं रैल विगारिवो है ॥
गनिवो है सितारन को कवि शंकर
रेनु सौं तेल निकारिवो हैं ।
कविता समझाइवो मूढ़न को
सविता गहि भूमि पे डारिवो है ।

यों तो भारतेन्दु युग के प्रायः प्रत्येक कवि को कहावत या लोकोक्ति को अपनी कविता में जंचाने का मोह रहा है, पर प्रतापनारायण मिश्र को तो लोकोक्ति पर काव्य रचना करने का अत्यन्त शौक था। मैं समझता हूं मिश्र जी के वाद हरिहरपुरा जिला वस्ती के महाराजकुमार रंगनारायण पाल जो कविता में रंगपाल की मनिति छाप रखते थे, लोकोक्ति और कहावत पर रचना करने में दूसरे स्थान के अधिकारी विदित होते हैं।

उन्होंने एक शब्द में संपत्ति का महत्व दिखाते हुए लिखा है—

सम्पत्ति से सव कांज सरें
सुख भूरि भरे, जस आदर होई ।
ताबिन कोउ न पूछत वात
लहे दुख त्यों अपमान करोई
रङ्गजूपाल मने कहनावति
सांच परे जक जाहिर जोई
गांठ में दाम तो नाम निजाम
नहीं तो कहे निजमा सव कोई ।

माया तेरे तीन नाम—परसी, परसा, परसराम जैसी ग्राम्य कहावतों को कैसे सौष्ठव के साथ रंगपाल जी ने इस छंद में जमाया है। ऐसा ही एक छंद और द्रष्टव्य है—

पी कहां, पी कहां, पी कि राखो,
सुनिले पपिहा रस प्रेम प्रवाहक,
वेतुकी कूक उलूकन की
रही छाय चहूंदिसि वाही के चाहक
माधुरी आदरे कौन ? रहो चुप
रङ्गजूपाल करे श्रम नाहक
कांच बेमाहन होइ रहै अब,
हेरे मिलें नहिं हीरा के नाहक।

गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो औं तोल की लोकोक्ति ही इस छंद में रंगपाल जी ने पिरोदी है।

भारतेन्दु युग का पूर्व सीमा पर अयोध्याप्रसाद वाजपेयी औध ने भी तो कुछ कम कौशल लोकोक्ति प्रयोग में नहीं दिखाया—

चंदन चीन्हि के त्यागि हमें दियो
आदर कूवरी कूर को काठक
ऐसी अनीति सही न परे या
वियोग में जोग कही अंग आठक
चाहिये ऐसी न औध उन्हें
हम हू सुनि आपन औसर गाठक
नंदलले तो भले मसले कियो—
डोम को डोली औ पेदर पाठक

कृष्ण के कूवरी कुब्जा के प्रेम पर इस लोकोक्ति या कहावत या मसल से कैसी फब्ती कसी है औध जी ने। ऐसे ही एक छंद में एक लोकोक्ति से उद्धवजी के प्रयत्न को उपहासास्पद बना दिया है। गोपियां कहती हैं—

कूर अकूर के साथ गये मथुरा के नहीं अब फूले समाते
पाछिलि औध सवे विसराये जियाये हमारे ही दूध औ भाते
आप प्रमानिक, कूवरी कानिक, पाय वने हमें जोग सिखा तें
मौन गहो जनि उधो कहो अब नानी के आगे ननौरे की वातें।

प्रतापनारायण मिश्र की ही भांति इसी काल के पंडित जवाहरलाल ने उपखान-पचासा लिख डाला। उन्होंने लोकोक्ति के लिए उपाखान या उपाख्यान शब्द स्वीकार किया है। उपखान-पचासा की विशेषता यह है कि इसमें कवि ने भ्रमरगीत परम्परा के अनुसार भ्रमरगीत का प्रसंग रखा है। और उसी में लोकोक्तियां या उपखान गूंथे हैं। इन उपखानों के कुछ उदाहरण ये हैं—

प्रीति जवाहर यों इनकी, ज्यों उधारे को खाव. पुआरे को तापत्र।

सो कुमारी कुचकोर चढ़े, ज्यों चमेली फुलेल छछूंदर के सिर।

सामान्य कहावत में चमेली के तेल का उल्लेख मिलता है। कवि ने फुलेल ठीक ही लिखा है। इनकी रचना के कुछ और चरण—

सनो जो जवाहर सो देखि परै आंखिन सों,

धोवी के विवाह मौर वांधि जाइ गदहा

कैसी कटूक्ति है इस उपखान में।

इस प्रकार यह युग लोकोक्ति प्रेमी है, इसमें सदेह नहीं। इस युग के कवि को जहां भी अवसर मिला है, उसने लोकोक्ति जड़ दी है। काठियावाड़ के कवि जीवराम या जीवाभक्त को देखिये—मन चंगा तो कठौती में गंगा को कैसे अपने छद में ढाला है—

जंगल में जाय कहा, पान फल खाय कहा
वार को वठाय कहा, अंग रहे नंगा है।
भोग को वराय कहा, जोग को गाय कहा
तन को तपाय कहा, वस्त्र गेरू रंगा है।
द्वारका को धाय कहा, छाय को लगाय कहा
मुंड मुंडवाय कहा, छार लाय अंगा है।
जीवा जग मांहि ऐसे, भेप धरे होत कहा
होत मन शुद्ध, तव गेह मांहि गंगा है।

यह लीजिये मलिया गांव के ठाकुर मोड़जी मौज में पोस्त पचीसी लिखते हैं और एक स्थान पर पोस्ती से कहते हैं—

कहत पुकारी सुनु अरज हमारी सांझ
अफिम की यारी सारे मौन की खुवारी है

और व्रजनन्दन छाप के व्रजकिशोर पाण्डेय को भी लोकोक्तियां सुहाती हैं—

अपनो दाम जो हवै गयो खोट, कहा परखैयन को तव दोस है।

इसी प्रकार—

ऊधो मनो गुड़ दिखराय ईंट मारी है।

इस संक्षिप्त दिग्दर्शन से यह विदित होता है कि इस युग की नयी चेतना ने लोकजीवन के निकट पहुंचने का प्रयत्न किया, यद्यपि अव भी वह पुराने ही झूले पर झूम रहा था, तथापि नेलों और हाथों को नये विषयों तक पहुंचाने का प्रयत्न भी कर रहा था। लोकजीवन के अनुरूप भाषा को ढालने में उसने लोकोक्तियों

कहावतों, मसलों या उपखानों या उपाख्यानों का उपयोग किया, जिससे शैली-तात्विक चुटीलापन कविता में आया। लोकोक्ति के उपयोग से काव्य में जो शक्ति और सौन्दर्य प्रतिष्ठित होता है उसकी कुछ झलक ही यहां दी जा सकी है, वह भी सरसरी दृष्टि से। आवश्यकता इस विषय में गहरे पैठने की है, यह सम्भावना भी इससे प्रकट होती है।

००

10

लोकवार्ता की व्यापकता और अर्थवत्ता

लोकवार्ता के संकलन-अध्ययन के इतिहास से विदित होता है कि १८–१९ वीं शताब्दी के सधिकाल के पूर्व और पश्च चरण से विश्व में एक ऐसी हलचल प्रारम्भ हुई थी जिसके विविध और दूरव्यापी परिणाम निकले किन्तु अन्तिम निष्कर्ष यही प्रतीत हुआ कि विश्व परस्पर बहुत निकट आता चला गया। भारत में कहीं-कहीं जो 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' की ध्वनि गूंजी थी, लगा कि वह सत्य सिद्ध होगयी है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान ने आर्य-परिवार का निरूपण किया, जैसे समस्त विश्व में आर्यभाषाओं का एक परिवार फैला हुआ है। तुलनात्मक धर्मकथाविज्ञान (Mythology) भी आगे आया। उसने भी आर्यों की धर्मगाथा का तुलनापूर्वक ऐक्य सिद्ध किया। इनके सहारे ऐतिहासिक अनुसंधानक मनीषा आर्य जातियों की तुलना में सभी ओर इस विश्व में फैली। विविध आर्य जातियों के एक उद्भव स्थान में और एक मूलपुरुष में विश्वास बढ़ाने का प्रयत्न करती हुई इनके मूलस्थान को खोजने में प्रवृत्त

हुई। विविध स्थानों के नाम उभरे और बैठे। मूल स्थान से कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे गये इसकी भी स्थापना के प्रयत्न किये गये। अनेकानेक तर्क, प्रमाण, युक्ति और उदाहरण दिये गये। तुलनात्मक विश्व में निकटता लाने और ऐक्य स्थापन के इसी युग में इतिहास-पुरातत्व और भाषाविज्ञान के साथ लोकसाहित्य या लोकवार्त्ता का भी उदय हुआ। सन् १८४६ में लोकवार्ता या फोकलोर की पूर्णतः प्रतिष्ठा हो गयी और यह प्रयत्न हुआ कि इस लोकवार्ता को विज्ञान का महत्व दिया जाय।

लोकवार्ता भाषा के समकक्ष प्रतीत होती है। जिस प्रकार भाषा परम्परागत होती है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली जाती है, यही बात लोकवार्ता के साथ है और जिस प्रकार इस प्रवाह में भाषा में परिवर्तन या विकास होता चला जाता है, उसी प्रकार लोकवार्ता में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते-चलते परिवर्तन या विकास होता जाता है। इस परिवर्तन या विकास या निर्माण को न भाषा में न लोकवार्ता में पौरूषेय माना जा सकता है अर्थात किसने भाषा बनायी, किसने उसमें परिवर्तन किया या किसके द्वारा उसका विकास किया गया इसे कोई नहीं बता सकता। भाषा की तरह लोकवार्ता साहित्य भी अध्ययनार्थ शब्द+वाक्य की तरह निर्णायक तत्व तथा वस्तु की दृष्टि से ध्वनिविज्ञान=अभिव्यक्तत्व, शब्दविज्ञान=निर्माणतत्व, वाक्य विज्ञान=वस्तुरचना में बांटा जा सकता है। कथानक रूढ़ियाँ या अभिप्राय (Motif) को शब्द, कथामानक (Types) को वाक्य, अक्षर कथातत्व (Archetype) को सामान्य वाक्य (Simple Sentence) मान सकते हैं। भाषा की तरह लोकवार्ता साहित्य का भी रूपविज्ञान (Morphology) होता है। भाषाविज्ञान में अर्थविज्ञान (Semantics) के समकक्ष लोकवार्ता में भी 'अर्थतत्व' को मान्यता देनी होती है। भाषा के अध्ययन की तीन प्रणालियां मानी जा सकती हैं यथा तुलनात्मक (Comparative), ऐतिहासिक (Historical) तथा विवरणात्मक। ये तीनों ही प्रणालियां लोकवार्त्ता के लिए अपेक्षित हैं किन्तु भाषा विज्ञान को 'वैखरी' तक ही अपनी सीमा रखनी पड़ती है किन्तु लोकवार्ता को पश्यन्ती और पर तक पहुँचना पड़ता है। लोकवार्ता मानव की अभिव्यक्ति में पद से नहीं पदार्थ अर्थात् पदगत अर्थ से भी संबंधित है। लोकवार्ता के पद=निर्णायकतत्व के अर्थ भाषागत अर्थ की भांति अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शक्ति से ही प्रकट नहीं होते अपितु इनके अर्थ के लिए इनके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियों की भी आवश्यकता होती है। इन्हें हम ये नाम दे सकते हैं—

(१) सदर्भाभिधा अथवा संस्कारार्थ

(२) संबोधि अथवा तुलनापूर्वक प्राप्त भेद में अभेद तत्व विषयक बोध

(३) वोधतन्मात्रा सम्वोधि को प्राप्त अर्थ या महत्व का परम्परा प्राप्त अशगत अर्थ मूल स्थापित (Archetype)

(४) वोधमन्मात्रा वोधतन्मात्रा की मूलमानसगत (Pshyche) तात्विकता

(५) अक्षरानन्यतास्या-वोधमन्ममात्रा से प्राप्त अर्थ का सवध मानव मात्र की अद्वैत स्थिति से है और उससे प्राप्त अर्थ या सार्थकतादायक शक्ति।

प्रथम तीन का पश्यन्ति और मध्यमा से संवंध माना जा सकता है और अंतिम दो का संवंध पुरावाणी के समकक्ष तत्व से है।

इन स्थितियों का पता तभी चलता है जबकि विश्वभर की लोकवार्ता को हस्तामलकवत् रूप में देखा जाता है। वस्तुतः लोकवार्ता से तुलनात्मक साहित्य का वोध होता है या तुलनात्मक साहित्य से लोकवार्ता या मौखिक साहित्य (Oral literature) का वोध होता है। इस संवंध में रेने वेल्लेक तथा ऑस्टिन वारेन ने कहा है—

If (comparative Literature) may mean, first, the study of oral Literature, especially of folk-tale themes and their migration; of how and when they have entered 'higher', 'artistic' literature. This type of problem can be relegated to folklore, an important branch of learning which is only in part occupied with aesthetic facts, since it studies the total civilization of a 'folk', its costomes and customs, superstitions and tools, as well as its arts.[1]

उन्होंने एक स्थान पर आगे यह भी कहा है कि—The early practitioners of 'comparative literature' were folklorists ethnographers who, largely under the influence of Herbert Spencer, studied the *origin* of literature, its diversifications in oral literary forms, and its emergenge into the early epic, drama and lyric.

'तुलनात्मक साहित्य' का सबसे पहले प्रयोग लोकवार्ता या लोकसाहित्य के अध्ययन के लिए किया गया है, क्योंकि लोकसाहित्य के अध्येता का ध्येय किसी एक क्षेत्र या भाषा की लोकवार्ता या लोकसाहित्य का अध्ययन नहीं होता वरन वह तो

---

[1] Theory of Literature P. 46.

अखिल लोक में व्याप्त वार्ता को ही हृदयंगम करना चाहता है क्योंकि उसे लगता है कि मूलतः एक ही वार्ता है जो विश्व में भिन्न-भिन्न स्थानों में कुछ भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर लेती है।

इस व्याप्ति के आधार पर ही फ्रेजर ने 'गोल्डन बाउ' नाम के १२ खण्डों वाले विशाल ग्रन्थ में विश्वभर की लोकवार्त्ताओं का संकलन करके उनमें साम्य बताते हुए उस नियम की स्थापना की जिसमे यह सिद्ध किया कि टोना (Magic) धर्म से पूर्व किसी भी जाति के विकास में स्थित होता है। उन्होंने जातियों के सांस्कृतिक विभेदों को महत्व प्रदान नहीं किया। अतः ये उस सम्प्रदाय के विरोध में थे जो भारतीय सम्प्रदाय (Indic School) कहलाता था। यह संप्रदाय आर्य जाति के लोक और लोकसाहित्य को एकमूल मानता था। अन्य जातियों का मूल दूसरा। आर्य जाति, आर्य भाषा और आर्य पुराण, कथाशास्त्र (Mythology) तथा आर्य लोकसाहित्य का प्रतिपादन इस वर्ग के विद्वानों ने किया। 'काक्स' ने आर्य पुराण गाथा 'Aryan Mythology' मे विश्वभर की आर्य जातियों की धर्मकथाओं का एक मूल सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उसने इस पुस्तक में 'फेथफुल जोह्न' (स्वामिभक्त जोह्न) की लोककहानी के जरमन रूप को देकर समस्त आर्यक्षेत्र में उसके विविध रूपान्तरों की चर्चा करते हुए यह संभावना बताई थी कि इस कहानी का मूल रूप उस समय निर्मित हुआ होगा जिस समय आर्य जातियों के मूल पुरुष एक स्थान पर अपने मूलस्थान पर रहते होंगे और वहीं से इस कहानी को उनकी संतानें जब संसार में फैली तो साथ लेती गयीं। इस कहानी के विविध रूपान्तर एक ही मूल से हुए हैं और ये रूपान्तर आर्यों द्वारा मूल स्थान से संसार के विभिन्न क्षेत्रों में फैलकर बसते समय पूर्वजों की थाती की तरह ले गये। यह काक्स का सिद्धान्त उस सिद्धान्त के विरुद्ध है जो बेनफो ने पचतंत्र की भूमिका में स्थापित किया था कि संसार की समस्त कहानियों का जन्म भारत में हुआ और वहीं से दो मार्गों से चारों ओर फैली।

सोफिया बर्न ने 'हैंडबुक आव फोकलोर' में लोककहानियों के ७० मूल रूप बताये हैं जो समस्त भारोपीय क्षेत्र में मिल जाते हैं। लोकसाहित्य अथवा लोकवार्ता की विश्व व्यापकता का जो प्रयत्न नृविज्ञान की दृष्टि से फ्रेजर तथा टेलर आदि ने किया उसी तरह लोकसाहित्यक प्रयत्न ऐण्टीआर्ने और स्टिथ थामसन ने मोटिफ इंडेक्स की रचना करके किया। 'अभिप्रायानुक्रमणिका' लोकवार्त्ता तत्व की विश्व व्यापकता का लोकसाहित्यिक प्रमाण है। विश्व की लोककहानियों से जितने भी अभिप्राय मिलते हैं, उन्हें छांटकर उनके वर्ग बना दिये हैं और प्रत्येक

अभिप्राय किन-किन कहानियों में मिलता है यह भी उल्लेख प्रत्येक अभिप्राय के साथ कर दिया है। अतः यह कह सकते हैं कि विश्व में व्याप्त ये अभिप्राय विश्वलोक के 'शब्द' हैं, वह इन्हीं शब्दों से अपनी अभिव्यक्ति के विविध रूप खड़े करती है।

पर यह सब तो 'संस्काराभिधा' ही है। संस्काराभिधा शक्ति नहीं है जो कि लोक संस्कृति या संस्कृति के उपादानों मे अर्थ ग्रहण कराती है। संस्काराभिधा संस्कृति के उपादानों को प्रतीक रूप में स्वीकार करती है। इसमें समस्त अभिव्यक्ति प्रतीक रूप होते हुए भी प्रत्यक्ष विधान में भी सार्थकता होती है। उदाहरण के लिए श्री जोगेन्द्र सक्सेना के निबन्ध 'रेअर तांत्रिक स्कल्पचर्स' से गज लक्ष्मी' की मूर्ति का चित्र लिया जा सकता है।[1] इस मूर्ति में आठ हाथी, दो हंस गले में हार पहिने, अपनी खुली केशराशि को बांयी ओर दोनों हाथो से निचोड़ती हुई लक्ष्मी, जिनके नाभिस्थल पर श्रीचक्र है इससे वक्ष के नीचे का अंश ढका हुआ है। श्रीचक्र के नीचे एक अष्टदल कमल, उसके नीचे षोडश दल कमल जिसके केवल आठ दल ही दीख रहे हैं। नीचे जल है। एक सफेद प्रस्तर शिला पर उकेरी हुई इस मूर्त्ति का अपना निजी सौन्दर्य है। इस मूर्त्ति के प्रत्येक अवयव हाथी, कमल, हंस, जल, लक्ष्मी, श्रीचक्र सभी प्रतीक हैं। पर ये प्रतीक एक ही व्यवस्था में सज्जित हैं कि अवयवों के प्रतीकार्थ को विना ग्रहण किये सपूर्ण रचना अपनी निजी सार्थकता रखती है। यह सार्थकता कलात्मक सौन्दर्य से पृथक प्रतीक नियोजन से अभिव्यक्त होती है कि यह देवी है जिसे हाथी जल के द्वारा स्नान करा रहे हैं और वे पुष्प भी चढ़ा रहे हैं। देवी के पास उसके प्रिय दो हंस भी हैं। एक हंस केशराशि से झरनेवाले जल को पी रहा है। यह सार्थकता संस्काराभिधा से हमें मिलती है। हम इसे 'गज लक्ष्मी' का नाम भी इसी अभिधा से देते हैं। यहां हाथियों की उपस्थिति से लक्ष्मी गज लक्ष्मी हुई। कमल के सम्बन्ध से कमला। गज और कमल लक्ष्मी के द्योतक चिह्न प्रतीक हैं।

पर इस मूर्त्ति के ये सभी अवयव 'संस्काराभिधा' से आगे बढ़कर ऐसे प्रतीक हैं जिनके सम्बन्ध में कहा गया है कि—

Even those symbols which serve, perhaps primarily, purposes of identification, like the 'vehicles' of the Hindu deities or attributes of the saints (the key of St peter, arrows of St. Sebastian the Rope around the waist of St. Francis, etc.) carry other

---

[1] हिन्दुस्तान टाइम्स का साप्ताहिक अंक, रविवार, ६ सितम्बर १९७०।

implications–the power of the God or the history of saint; GARUDA implies the supremacy of Vishnu in the airy element. In this field, a symbol is something which has an aura of emotion of thought, which condenses a range of ideas or creates a framework of context—a means by which people express something more than is specifically stated in words or literally depicted in the arts.[1]

अतः प्रतीक संस्काराभिधा की शक्ति से आगे वह सब कुछ अपने अर्थ में समेट लेते हैं, जो प्रतीक की मूर्तकल्पना से जुड़े हुए अन्य सदर्भों से संलग्न भावों और विचारों के गागर को प्रतीक रूपी सागर मे भर लेते हैं। पर प्रतीक ही क्यों, इसी स्तर पर पुरागाथा (Myth) भी आ जाती है। मिथ के सम्बन्ध में एच. तथा एच० ए० फैंकफर्ट, जोह्न ए० विल्सन थोरकिल्ड जेकबसेन ने लिखा है—

'We may, then, summarize the complex character of myth in the following words : Myth is a form of poetry which transcends poetry in that it proclaims a truth, a form of reasoning which transcends reasoning in that it wants to bring about the truth it proclaims; a form of action, of ritual behaviour which does not find its fulfilment in the act but must proclaim and elaborate a poetic form of truth.'[2]

ऊपर के विवरण में आठ हाथी एक ओर तो प्रतीक हैं और दूसरी ओर दिग्गजों के रूप में मिथ भी हैं। जल प्रतीक भी है मिथ भी। कमल प्रतीक भी है और मिथ भी। हंस प्रतीक भी है और मिथ भी। और श्रीचक्र तो प्रतीक और मिथ से भी कुछ विशेष है। चक्र का अर्थ मण्डल। फ्रीदा फोरधम ने लिखा कि—
'Mandala is a Sanskrit word meaning magic circle, and to symbolism includes all concentrically arranged figures, all radical or spherial arrangments and all circles or squares with a central point. It is one of the oldest religious symbols (the earliest known form being the sun wheel) and is found throughout the world.[3]

---

[1] The Standard Dictionary of Folklore. Page 1094, Vol II.
[2] Before Philosophy; Pelican Books, A 198, 1951-Page 16.
[3] An Introduction to Jung's Psychology by Farieda Fordham Pelican Books A 273, 1966 पृष्ठ ५५।

विश्वभर में मंडल के विविध रूपों की विद्यमानता प्राचीनतम काल से आज तक और विविध व्यक्तियों के स्वप्नों में मंडल प्रतीकों की आवृत्ति का मूल जुंग की दृष्टि में 'कलैक्टिव अनकांशस' या संग्रहित अवचेतन है किन्तु उससे आदिम तत्वों की विश्व व्यापकता भी सिद्ध है। लोकसाहित्य में अर्थग्रहण के लिए 'सम्बोधि' से आगे 'बोधतन्मात्रा' की अपेक्षा होती है। 'बोधतन्मात्रा' की शक्ति की व्याख्या जुंग की 'मूल स्थापित' या आर्चटाइप की स्थापना से सरल हो गयी है।

जुंग ने जिन आर्चटाइपों[1] की स्थापना की है वे ये हैं—

(१) वीर जो रक्षक है, मुक्तिदाता है, मसीहा है (२) त्रासदाता माता, क्रूर जादूगरनी, प्रतिहिंसक देवियां, क्रूर सौतेली मां (३) बलिदान या बलि देने का भाव (४) छाया यह मनुष्य के व्यक्तित्व का अविकसित पक्ष है (५) मुखौटा (परसोना) (६) स्त्रीत्व (ऐनीमा)=पुरुष में स्त्रीतत्व (७) पुंसत्व (ऐनीमस) =स्त्री में पुंसत्व (८) बुद्धिमान वृद्ध–गुरु, साधु (९) मंडल (ज्योमितिक चित्र) (१०) बपतिस्मा–गुरु दीक्षा (११) प्रसाद अथवा पावन भोजन (१२) बालक आदि।

इन मूलस्थापितों का अस्तित्व संग्रहित अवचेतन (Collective unconscious) में रहता है। यह संग्रहित अवचेतन मानव को उत्तराधिकार में अवतरित होता हुआ मिला है। यह हमारे लोकमानस[2] के ही समकक्ष है। ये सभी मूलस्थापित मानव की विविध अभिव्यक्तियों में अनादिकाल से आज तक मिलते चले आये हैं। उनकी कलाओं में, लोकवार्त्ता में, पुराणगाथा या माइथालाजी में, स्वप्न में, विश्व में इनकी व्याप्ति हमें मिलती है।

बोधतन्मात्रा इस अर्थ ग्रहण प्रक्रिया में वह चौहटा है जहां कई विज्ञान इसके आधार पर मिलते हैं। इनकी व्याख्या मनोविज्ञान की दृष्टि से भी हो सकती है। विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) से भी हो सकती है। वस्तुतः आर्चटाइपों की उद्भावना विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान ने ही की है। आगे पुराणगाथा या माइथोलॉजी का विज्ञान तो इनका अपनी तरह अर्थ करता ही है।

---

[1] An Introduction to Jung's Psychology : Farieda Fordham Chapter III Archtype of the Collective Unconscious Page 47-68 and Dreams and Nightmares : J.A. Hodfield, A 294-1967, Chapter 3 Dreams as Archetypical Page 38-63.

[2] देखिए—लोकसाहित्य विज्ञान—दूसरा अध्याय पृष्ठ ३३-६८।

यह स्थल अध्यात्मदर्शन का छोर भी स्पर्श करता मिलता है।[1] इधर बोधतन्मात्रिक शक्ति से लोकमानस के इन बिम्बों का मानव की अभिव्यक्ति को अपनी दृष्टि से एक सशक्त अभिप्राय या कथानक रूढ़ि के रूप में ग्रहण करता है और तदनुकूल संदर्भगत अर्थ से उसे अभिमंडित करता है। इसका आधार तुलना होती है।

इस अर्थ स्तर पर पहुंच कर हमें और ऊपर का अर्थ दृष्टिगत होता है। यह अर्थ बोध मन्मात्रिक शक्ति से मिलता है। बोधमन्मात्रा से जो अर्थ मिलता है वह लोक मानस की मूलवृत्तियों (Psyche) की तात्विकता में रहता है। जुंग का 'कलैक्टिव अनकांशस' संग्रहित अवचेतन 'आदिम मानस' का युग-युग से संशोधित पर वर्तमान में उपलब्ध अवचेतन होता है। इस अवचेतन से हमें मूल स्थपित मिलते हैं। ये हमें कालक्रम और देशक्रम में पुनरावर्तित होते मिलते हैं। दोनों में से तुलनापूर्वक हम इनका अर्थ लगाते हैं। यह अर्थ और यह व्याख्या हम अखिल लोकवार्ता के परिप्रेक्ष्य में करते हैं।

फ्रेजर ने 'गोल्डन वाउ' (स्वर्णिम शाखा) के रहस्य को उद्घाटित करने के लिए कितनी ही लोकवार्ता की वातों के समान वातें विश्वभर के क्षेत्रों से एकत्र की और उन सब में मिलने वाली समान वातों से अपने निश्चित परिणाम निकाले।

उदाहरण—पहले उन्होंने यह सिद्ध किया कि मनुष्य की आत्मा या प्राण पदार्थ रूप है, जिन्हें शरीर से वाहर सुरक्षा के लिए किसी अन्य प्राणी या वस्तु में

---

[1] मनुष्य में मूल स्थपितों का आवेश जुंग की परिभाषा में Inflation (I J. P. पृ० ६१-६२) फुलाव है। इस फुलाव से 'परामानव' जैसी भावना मनुष्य में उभरती है पर यह भ्रान्ति ही है क्योंकि यह फुलाव से प्राप्त सवर्धन मनुष्य का अपना उपार्जन नहीं है। वह तो अपने वश के वाहर से प्राप्त हुआ है। इसी सम्वन्ध में इन नये रूप पर विचार करते हुए जुंग के पक्ष को फ्रीदा फोद्यम ने यों बताया है—

But if the ego can relinquish some of the beliefs in its own omnipotence, a position can be found somewhere between that of consciousness with its hardly won values, and unconscious with its vitality and power, and a new centre of personality can emerge differing in its nature from the ego centre. Jung calls this new centre of personality 'the self.'

रखा जा सकता है। तब उन्होंने यह बताया कि जिसमें अपने प्राणों या आत्मा को प्रवेश करा देते हैं और फिर टोटेम से पुनः जीवन प्राप्त करते हैं।

बाहरी प्राण या आत्मा विषयक जो कहानियां फ्रेजर[1] ने दी हैं उनका संक्षिप्त उल्लेख करना होगा—

पचकिन के प्राण एक तोते में—उस स्थान से हजारों कोस दूर बियाबान जंगल में ताड़ वृक्षों का वृत्त उसके मध्य जल से परिपूर्ण तराऊ पर छः चट्टियां (?) अंतिम चट्टी में वह तोता। इस वन के रक्षक हजारों जिन्न या राक्षस। पंचकिन जिस स्त्री को १२ वर्ष से बन्दी बनाए हुए था और विवाह करना चाहता था उसका लड़का आया वह तोते को ले आया।

---

[1] The Golden Bough : Sir James George Frazer
Abridged Edition, 1950, Chapter Lxvi. The Exteral Soul in folktales, पृ० ६६७-६७८।

क्रम	प्राण किसमें (क) किसके	(ख) किसमें	कहां	कौन लाया	क्यों	भेद कैसे मिला	विशेष
१	२	३	४	५	६	७	८
हिन्दू कहानी							
१.	पंचकिन जादूगर के	तोते में	१. हजारों कोस दूर २. बियावन जंगल ३. ताड़ों का वृक्ष ४. मध्य में जल से भरे छः जल से भरे चट्टिया ५. सबसे नीचे वाले में तोता	रानी का पुत्र उसने दाने के सामने तोते को मारा। दाना मर गया	क्योंकि पंचकिन ने १२ वर्ष से रानी को बन्दी बना रखा था, उसकी मुक्ति के लिए	रानी ने बनावटी प्रेम के छल से भेद पूछ लिया	—
२.	दाने के	चिड़िया में	१. १६ मील दूर एक पेड़ २. पेड़ के चारों ओर शेर, भेड़िये, विच्छू, सर्प	? (लड़की का प्रेमी) पहले पंख उखाड़े फिर टांगे फिर गरदन मरोड़ दी	? (लड़की पाने के लिए)	लड़की ने पिता से भेद पूछा	—

१	२	३	४	५	६	७	८
			३. पेड़ पर बड़ा मोटा सर्प ४. सर्प के सिर पर पिंजड़ा ५. पिंजड़े में वह चिड़िया				
३. बंगाली	सिंहल के सभी दाने	एक नींबू में	—	एक लड़के ने नींबू के टुकड़े कर दिए सभी दाने मर गए	—	—	—
४. सियासी या कम्बोडी	थोस्सकन या रावण		संदूक में प्राण रख कर साधु को सौंप गया	१. राम का एक मित्र २. वह मित्र रावण का वेश धारण कर साधु के पास गया और संदूक लेकर उड़कर राम के पास पहुँच कर उस संदूक को इतना पिचकाया कि रावण मर गया ...	क्योंकि राम के बाणों को युद्ध में रावण को कोई चोट भी नहीं लगी	यह भेद राम का मित्र पहले ही से जानता था	—

५. बंगाली	राजकुमार	राजकुमार द्वारा स्थापित वृक्ष में	—	—	—	यह प्राणों का 'सूचक' है वह मर गया तो पेड़ सूख जायगा।
६.	राजकुमार	जौ के पौधे में	—	—	—	यह भी प्राणों का 'सूचक' है। उसका सिर दूर कहीं धड़ से अलग कर दिया इधर वह पेड़ दो भागों में चिर गया और बाल कटकर अलग जा पड़ी।
७. यूनानी मीलियेजर (Meleager)		अंगीठी के पास रखी जलती लकड़ी में; जिसे उसकी मां ने बुझाकर संदूक में रख दिया	मां ने ही उस लकड़ी को संदूक से निकाल कर जला दिया मीलिजियर मर गया	क्योंकि उसने मां के भाइयों को मार डाला था	जब मीलिजियर सात दिन का था तभी भाग्य की देवी ने प्रकट होकर मां को यह भेद बता दिया था।	—

१	२	३	४	५	६	७	८
८. यूनानी		मेगर का राजा वीसस (Vesus)	उसके सिर के बीच बैंजनी या सुनहले बालों में उनके उखाड़ लेने से मृत्यु	वीमस की लड़की स्कीला (Scylla)	क्योंकि स्कीला का क्रॅन्टनो के राजा माइनेज (Mines) से प्रेम करने लगी थी, जो उसके पिता का शत्रु था।	संभवतः वह पहले से भेद जानती हो।	—
९. यूनानी (आधुनिक)		एक आदमी	सिर के तीन सुनहले बालों में	उसकी मां ही उन्हें उखाड़ लेती है। तब उसके शत्रु उसे मार डालते हैं।	—	—	—
१०. यूनानी (आधुनिक)		एक मांत्रिक या जादूगर (Euchauter)	जंगली सुअर के पेट में तीन पिण्डकियों (doves) में एक पिन्डकी के मरने पर बीमार, दूसरे पर बहुत बीमार, तीसरे पर मृत्यु हो जाती है।	—	—	—	—

११. वही						
	एक दाने के	जंगली सुअर के पेट में तीन गाती चिड़ियों में	—		—	—
१२. रोमन (आधुनिक)						
	जादूगर के	जगल में एक सात फन का नाग, बीच के फन पर एक छोटा खरगोश, उसके सिर में एक चिड़िया चिड़िया के सर में एक रत्न— उसे तकिये के नीचे रखने से मृत्यु	जादूगर द्वारा अपहृत राजकुमारी के पति द्वारा	वह राजकुमारी को मुक्त कराना चाहता था	राजकुमारी ने जादूगर से भेद पाया और पति को बताया	—
१३. रूसी						
	मायावी कोशचेइ (मृत्युहीन की)	दूर समुद्र में एक द्वीप, उसमें शाहबलूत का पेड़, उसके नीचे दबा लोहे का संदूक, उसमें एक पिटारी, पिटारी में खरगोश, खरगोश में	मायावीद्वारा अपहृत राजकुमारी को अनायास मिले एक राजकुमार द्वारा	वह राजकुमारी को मायावी के यहां से लेजाना चाहता था	राजकुमारी ने	मायावी ने एक बार झाड़ में, दूसरी बार तीन बवूतों में से दबे कीड़े में प्राण बताये दोनों बार झूठ।

१	२	३	४	५	६	७	८
			वतख,बतख में अंडा, अंडे में प्राण				
१३. (क)	वही		१. स्थान वही २. उस रहस्यमय अंडे ने उसके मस्तक पर चोट मारी	—	—	—	—
	(ख) सर्प		चोट अंडे की जर्दी में रखे पत्थर ने मारी, अंडा बतख में था, बतख खरगोश में, खरगोश था पत्थर में, जो एक द्वीप में	—	—	—	—
१४. ट्रांससिल्वेनिया	सक्सनों की कहानी	जादूगरनी (Witch	बहुतदूर एक पहाड़, उसमें ताल, ताल में बतख, बतख में	एक नवयुवक द्वारा	—	नवयुवक के जादूगरनी को मारने के कई प्रयत्न	—

			अंडा, अंडे में आग उस आग के बुझाने से मृत्यु			विफल हुए तो उसे चिढ़ाते हुए स्वयं जादूगरनी ने भेद बताया।	
१५. जर्मन	आत्मारहित एक मनुष्य	भक्षक	इसके प्राण एक संदूक में, वह संदूक लाल-सागर के मध्य एक चट्टान के ऊपर	१. एक सिपाही द्वारा २. आत्मा निकाल कर उसके सिर के ऊपर फेंकता है। तभी वह मर जाता है	—	—	—
१६. जर्मन		वृद्ध मायावी	वह दूर बियावन में एक गिरजा दृढ़ लोह कपाट, चारों ओर बहते पानी की खाई गिरजे में उड़ती चिड़िया उसीमें प्राण	सुन्दरी के वाग्दत्त पुरुष ने	सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए	सुन्दरी ने	—

१	२	३	४	५	६	७	८
१७. नार्स (नारवे) की कहानी							
		(क) दाने के	बहुत दूर एक झील, झील में द्वीप, द्वीप में गिरजा, गिरजे में कुआ, कुए में तैरती बतख, बतख में अंडा उसी में प्राण	नायक उन पशुओं की सहायता से जिनपर उसने दया की थी	बन्दी राजकुमारी को छुड़ाने के लिए	वंदिनी ही भेद पूछ कर जान लेती है	—
		(ख) पहाड़ी दाने के	एक अजदहे के नौ सिर की नवों जीभ के नीचे रेत का एक कण वह कण यदि उस पहाड़ी पर आ गया तो सभी दाने मर जायेंगे	नायक द्वारा	नायक वंदी राज-कुमारी को छुड़ाना चाहता है	—	उस कण के पहाड़ी पर आने पर चम-चमाता महल बन जायेगा और झील दूसरे भरे खेतों में
१८. कैल्टिक (स्काटलैण्ड) से							
		(क) दाने के	देहली में एक बड़ी पटिया, पटिया के नीचे एक भेड़, उसके	वंदिनी रानी ने	अपनी मुक्ति के लिए	वंदिनी ने ही भेद पूछ दिया	—

		पेट में बतख, बतख के पेट में अण्डा उसमें प्राण				
	(ख) समुद्री जन्तु	एक द्वीप, एक खाड़ी में, उस द्वीप में सफेद पैरों वाली हिरनी, हिरनी पकड़ी गई तो उसमें से एक काला कौआ निकलेगा उसे पकड़ागया तो उसमें से एक कबु'री मछ-ली निकलेगी उसके मुंह में एक अण्डा, उसके प्राण उसी में	—	रानी की पुत्री को उससे मुक्त कराने के लिए	एक वृद्ध शिल्पी (Smith) ने	—
१६. आइरिश						
	दाने के	दाने की मृत्यु उसकी छाती के मसे पर एक विशेष अण्डा मलने से यह अण्डा बतख में, बतख एक	नायक ने कृपालु पशुओं की सहा-यता से	बन्दिनी राजकुमारी को मुक्त कराके पाने के लिये	—	दाने ने राजकुमारी को एक पहाड़ी की चोटी पर रखा वह पहाड़ी उन लोगों की हड्डियों

१	२	३	४	५	६	७	८
			सन्दूक में जो नीचे समुद्र में बन्द बंधा पड़ा था				से सफेद हो रही थी जो उसे प्राप्त करने आये थे।
२०. ग्रटन							
	(क)	दाने के, जिसे आग, पानी या लोहा हानि नहीं पहुंचा सकते थे।	उसकी मृत्यु एक अण्डे को छाती पर कुचलने से, यह अण्डा एक कबूतर में, कबूतर खरगोश के पेट में, खरगोश भेड़िये के, जो दानेके भाई में, जो एक हजार मील दूर था	एक सिपाही ने	—	दाने ने अपनी सातवीं पत्नी को गर्व से बताया, छः पत्नियों को वह मार चुका था	—
	(ख)	वही	दाने के प्राण एक संदूकी वृक्ष में उसी महल में है। उस वृक्ष की मूसला जड़, कुल्हाड़ी की एक ही चोट से कटे और छोटी जड़ों को हानि न पहुँचे	नायक द्वारा	—	—	—

२१. मिश्र

१३०० ई० पू० रोमसेज द्वितीय के राज्यकाल में लिखी प्राचीन मिश्री कहानी 'दो भाई'

एक भाई	उसने अपने हृदय को अभिमंत्रित करके (acacia) बबूल के फूल में रख दिया था	इस भाई की पत्नी के उकसाने पर (?) फूल को काट दिया गया वह मर गया	—	—	दूसरे भाई को बबूल के ढेर में वह हृदय मिला जिसे ताजा पानी डालते ही भाई जीवित हो उठा।

२२. अलिफलैला

जिन्न के	जिन्न ने अपनीआत्मा (Soul) को गौरया के पोटे में रखा, गौरया को एक छोटे सन्दूक में, उसे एक दूसरी छोटी पिटारी में, उसे सात पिटारियों में, फिर उन्हें सात सन्दूकों (Chests) में, उन्हें एक संगमरमर की पेटी	सैफुल मुलूक ने	भारत के राजा की पुत्री को मुक्त कराने के लिए	जिन्न ने राजपुत्री को स्वयं ही बताया	—

१	२	३	४	५	६	७	८
			(coffer) में उसे चक्कित समुद्र के गर्भ में रख दिया है				
२३. कवाइले कहानी		दाने के	एक अण्डे में जो कबूतर में, कबूतर ऊंट में, जो एक समुद्र में	नायक द्वारा	—	—	—
२४. मग्यार		वृद्ध डाकिनी	एक रेशमी शादूल में एक वाराह, उसमें एक खरगोश, उसमें एक कबूतर, उसमें एक पिटारी, उसमें एक काली तितली, एक चमकीली काली में उसकी शक्ति, चमकीली में उसका जीवन	एम्ब्रोजे नाम के राजकुमार ने जिसे डाकिनी ने भूगर्भ में छिपा रखा था।	अपने आपको मुक्त करने के लिए	अम्ब्रो ने पूछा डाकिनी ने बताया	—

२५. कालमुक	खान के	वहुमूल्य रत्न में	साधु ने उसे जमीन पर दे मारा, खान मर गया	क्योंकि खान ने साधु के प्रति अकृतज्ञता प्रकट की	—	—
२६. तारतार काव्य	बुलातकी	आत्मा उन दस सफेद चिड़ियों में से एक में थी, ये दस पक्षी एक स्वर्ण पिटारे में थे, पिटारा सफेद धागे से आकाश में लटका हुआ था	१. मोलोत ने २. पहले तो उसके बहुत प्रयत्न अन्त में पिटारे पर दृष्टि गयी तीर से धागा काट कर पिटारे के पक्षी मार डाले कुलात भी मर गया ।	क्योंकि दोनों वीरों में घनघोर युद्ध हो रहा था	अकस्मात एक मोलोत का पिटारा लटकता दिखाई पड़ा ।	—
२७. (क) दो भाईयों ने		आत्माओं को निकालकर एक छह शाखों वाली जड़ी के रूपमें एक गहरी खाई में	१. एक दुश्मन ने उन्हें देख लिया और उनकी आत्माओं को एक	—	—	—

१	२	३	४	५	६	७	८
			रख दिया	भेड़ के सींग में रखकर तरकश से लटका लिया २. यह देख उन दोनों भाइयों ने सुलह करली			
(ख) एक दैत्य की आत्मा			दैत्यके घोड़ेकी काठी के एक थैले में एक १२ सिरवाला सर्प, उसी में आत्मा	एक युवक ने	क्योंकि दैत्य देवताओं और वीरों को परास्त कर चुका था	युवकने दैत्य को बांध लिया उसीसे पूछा, उसने बता दिया	—
(ग) कोकचान-एक नायक की			आधी शक्ति एक अंगूठी में थी, जो उसने एक रमणी को देदी थी	—	—	—	कोकचानका एक युवक से युद्ध हुआ, पर वह जीत नहीं रहा था तब उस रमणी ने अगूठी उसके मुंह में डाल दी उसको आधी

					शक्ति और मिल गयी और जीत गया
(घ) एक डाकिनी (witch) की	आत्मा सात सिरों-वाले धब्बेदार सांप-में, जो उसके जूतेके तले के भीतर है	दो युवकों ने एक ने सांप को मार डाला.	—	—	—
(ङ) हंसनारी	काली भूमि के नीचे नो समुद्र उनके संग-म के पास पृथ्वी, वहां तांवे की एक चट्टान, आकाश पृथ्वी के बीच, चट्टानके नीचे एक काला संदूक उसमें सोने की पिटा-री, उसमें सातछोटी चिड़िया, उन्हींमेंप्राण	दो घोड़ों में से पीवाल्ड ने गजे आदमी का रूप लिया और स्वर्ण पेटी को खोल सातों चिड़ियों को मार डाला, वह मर गयी	क्योंकि नायक कार्त-ज हंस नारी से युगों तक लड़ा मार नहीं सका	दो घोड़े पीवाल्ड तथा काला घोड़ा भेद जानते थे	—
(च) नायक की	आत्मा सुनहरी तल-	—	—	—	१. इस वीर ने अपनी

१	२	३	४	५	६	७	८
			वार और सुनहरी तीर में				बहिनका पीछा किया, जो उसके पशुओं को तो भाभी भी २. उसने पीछा किया जब उसे बताया गया कि वह उसको आत्मावाली तलवार और तीर ले गयी है, तो वह रुक गया
२८. मंगोली							
	लाभा छोरीदोंम (Tschori-dong) की		एक बर्र में उसकी आत्मा थी	जोरो ने बर्र को पकड़कर कभीबन्द किया कभी खोला जिससे कभी बेहोश कभी होश में	क्योंकि जोरो को परेशान करने, लामाने अपनी आत्मा वाली बर्र उसके पीछे भेजी	—	—
२९. मलय							
	एक लड़की विदसरी		उसके दत्तक मां बापने उसकी आत्मा एक सोने की मछलीमें रख	इन्द्रपुर, वहां की रानी ने विदसरी को अपने काबूमें	क्योंकि लड़की के सौन्दर्य से उसे भय था कि राजा	भेद स्वयं लड़की ने बताया, तब रानीने उसे बहुत	आखिर राजा ने उसे अपनी रानी बना ही लिया

		दी, मछली एक पानी भरे स्वर्ण पिटारे में रख तालके नीचे गाड़ दिया	रखनेके लिए मछली वाला संदूक अपने कब्जे में कर लिया	उसे भी रानी बना लेगा	सताया लड़की के कहने से रानी मछली को दिन में निकाल कर डालती-लड़की वे होश, रातमें संदूक में रखती लड़की होश में	
३०. नियास (सुमात्रा)	मुखिया की	आत्मा उस के सिरके एक तांबे के जैसे बाल में	उसके शत्रुओं ने उसका वह बाल उखाड़ लिया	क्योंकि वह उनका शत्रु था और पकड़ लिया गया था वे उसे मार डालना चाहते थे	मुखिया की स्त्री ने भेद बताया	मुखिया न आग से जला न पानी से मरा न हथियार से
३१. दक्षिणी नाइजीरिया (पश्चिमी अफ्रिका)	एक राजा की	आत्मा को उसने एक भूरी(brown) चिड़िया में रख दिया था, चिड़िया महलके द्वारके विशाल वृक्ष पर रहती थी	उसकी रानी के प्रेमी ने	क्योंकि वह स्वयं राजा बनना चाहता था	—	—

१	२	३	४	५	६	७	८
३२.	दक्षिण अफ्रिका	केवा-रोंमने कही एक पूरे परिवार की	आत्मा एक बिल्ली में	परिवार की लड़की के पति ने	क्योंकि उसने बिल्ली को घर में नाचते गाते देखा, उसने उसको मारदिया	मरते मरते लड़की ने बिल्ली का रहस्य बताया था जब वह बिल्ली परिवार में लेकर गयी तो उसे मरा देख, सभी मर गये	लड़की परिवार के मना करने पर भी बिल्ली को साथ पतिगृह ले गयी थी और उसे छिपा दिया पर एक दिन वह निकल आयी
३३.	उत्तरी अमेरिका इन्डियन	एक रमणी जो रीछ बन जाती थी	अपने सभी अवयवों को कहीं छिपा कर लड़ने जाती थी अतः कभी नहीं मारी गई	—	—	—	—
३४.	क्वाक्युत्ल इण्डियन ब्रिटिश कोलम्बिया के	दाने की	उसका जीवन हेमलक पेड़ की शाखा में	एक वीर युवक ने वन में टुकड़े-टुकड़े करके डाल दिया पर हेमलक शाखा को नष्ट करने पर ही उसे मार सका	—	—	—

फ्रेजर ने विश्व भर से, आर्य वर्ग तथा अन्यों से ये कहानियां एकत्र की हैं। भारत भर में ऐसी प्राण प्रतीक कहानियों की भरमार है।

अब हम इन कहानियों को और इनमें आने वाले अभिप्रायों को मूल स्थपित (आर्च टाइप) के रूप में तो जुंग के विश्लेपणात्मक मनोविज्ञान के आधार पर अध्ययन कर सकते हैं पर लोकसाहित्य की दृष्टि प्राण-प्रतीक के विधान के साथ लोककहानियों के समग्र रूप की जैसी प्रतिष्ठा हुई है उसकी समग्र मानसिकता को समझकर बोध मनमात्रिक अर्थ का प्राप्त करना है।

क्या इस समग्र मानसिकता ने इन समस्त कथाओं में कथा की दृष्टि से किसी अर्थ की प्रतिष्ठा नहीं की है ? नृविज्ञान विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान, पुराणविज्ञान, समाजविज्ञान, इतिहास विज्ञान की शरण में बिना जाये क्यों लोकसाहित्यिक भूमि पर हमें कोई अर्थ नहीं मिलता ? अर्थ मिलता है, और वह अन्तरंग बोधमनमात्रा से मिलता है।

जब लोककथाकार यह कहता है कि एक राजकुमार एक घोड़े पर बैठकर चलाचल, चलाचल एक वन पार कर दूसरे तीसरे आदि वनों को पार करता जाता है—चलाचल चलता ही जाता है, तब कवीन्द्र रवीन्द्र में बोधमनमात्रिक शक्ति से समग्र मानसिकता की भूमि पर जो अर्थ स्फुरित होता है—भोक्ताकी अनवरत अथक यात्रा-सतत यात्रा का। उक्त कहानियों में नायक क्या दानव की आत्मा की खोज में निरन्तर प्रयत्नशील नहीं मिला ? प्रेम की दिव्य भेदक दृष्टि की सहायता से दानव, दैत्य, मायावी या डाकिनी की आत्मा को पाया जा सकता है। मानव की वीर नायक आत्मा सतत इसी में संलग्न है। प्रयत्नशील है, घनघोर संघर्ष में। यहां किंचित चूक से भी अनर्थ हो सकता है। मत चुक्के चहुआन' की मूक पुकार प्रत्येक नायक के साथ है। दानव के प्राण अण्डे में, चिड़िया में या तितली में है या अग्नि की लौ में है। अण्डपिण्ड, ब्रह्माण्ड—जो अण्ड-पिण्ड में सो ब्रह्माण्ड में, जो ब्रह्माण्ड में सो अण्ड-पिण्ड में। यह अनुभूति आदिम मानस की सतत है और अद्वैतवादी दार्शनिक की भी है। संत यही पुकार रहे हैं और यह पक्षी द्वा सुपर्णा सयुजा....' आदि में से कौन से पक्षी में वह दानवीय आत्मा है। प्रकाश की लौ रूप। आत्मा अण्डे में बद्ध है। यह स्थूल शब्दावली है पर समग्र मानसिक भूमि पर लोकसाहित्य से बोधमनमात्रिक शक्ति द्वारा विश्वव्याप्त अन्तरंग सत्य का काव्य अध्येता के समक्ष उद्घाटित होता है।

अक्षरानन्यतास्था=अक्षर+अनन्यता+आस्था। उक्त कहानियों को फ्रेजर ने देकर उनकी पुष्टी उसने विश्वव्याप्त मानव समाज के आस्थान्वित अनुष्ठानों के प्रामाणिक उदाहरणों में से की है। उक्त कहानियां कहानियां नहीं हैं। वे मानव

जीवन की आरम्भिक काल-विन्दु से लेकर आज तक की समयावधि में जीवन को भोगने से मिलने वाले विश्वासों के प्रामाणिक आलेख हैं जो अपना आनुष्ठानिक प्रतिपक्ष भी आज तक मानव जीवन जहां तहाँ बनाये हुए हैं। लोकसाहित्य के अध्येता के लिए फ्रेजर के प्रमाण ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में हैं। अखिलमानव देशकाल में सम्पूर्ण-समग्र भाव से विचरित मानव के अतरंग से अंतरंग का अर्थ अक्षर + अन्नन्यता + आस्था की शक्ति से ही मिलता है। लोकसाहित्य के इस अर्थ तक इस अंतरंग शक्ति से पहुँचने के शास्त्र की उद्भावना अभी हमें करनी है।

हालांकी यह स्पष्ट है कि विना उक्त शक्ति के अक्षरानन्यतास्थावती शक्ति के हम इन कहानियों को कहानियों के रूप में भी नहीं स्वीकार कर सकते, फिर किसी जाति में उसी जैसे जीवन को जीने की वात की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती और यह भी स्पष्ट है कि लोकसाहित्य के शब्द जिन विम्बों को खड़े कर उन्हें प्रतीक या मिथ का रूप देकर जो अर्थ सिद्ध करते हैं वे, बोधतन्मात्रा शक्ति के विना यथार्थ तक नहीं पहुँचा सकते वह अर्थ भी मनुष्य का जातीय अर्थ ही रहता है और यह भी स्पष्ट है कि अखिल मानव की समग्र मानसिकता समग्र कहानी या वार्ता के समग्र रूप पर ही अक्षर अन्नन्यता आस्था-शक्ति से अर्थ का स्फोट कर सकती है। जैसे कोई भी पूर्ण अर्थ समग्र वाक्य के समग्र रूप विधान में से ही स्फोट से मिलता है। निश्चित है कि विराट मानव का वामन रूप मानव की बुद्धि रूप में स्थित राजा वलि को ठगने के लिए है—उसे आस्था से आश्वस्त होने दो तो इनमें से साहित्य का अर्थ मिलेगा जो वामन (वौने) की तरह समस्त जगत को ही नहीं—वलि को भी अपने तीन पग में नाप लेगा।

पठनीय सामग्री

1. Standard Dictionary of Folklore, Mythology and Legend by Maria Leach, Funk and Wagnalls Company, New York 1950.
2 The Golden Bough by Sir Jams George Frazer. F. R. S., F. B. A., Abridged Edition. Macmillan & Company, Limited, St. Martin's.
3. An Introduction to Jung's Psychology by Frieda Fordham Pelican Book A 273 Third Edition 1996 [I. J. P.].
4. Symbolism–A Psychological Study–by Dr. Padma Agarwal, M. A., Ph. D., Manovigyan Prakashan, 1955.
5. Dreams and Nightmares by J. A. Hadfield—Pelican Books A 294 1967.

6. Before Philosophy—The Intellectual Adventure of Ancient Man by H. and H. A. Frank fort. John A. Wilson, Thorkild Jacobsen—Pelican Books A 198, 1951.

7. लोकसाहित्य विज्ञान लेखक डा. सत्येन्द्र, प्रकाशक–शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. (प्रा.) लिमिटेड, आगरा, प्रथम संस्करण : १९६२।

००

11

लोकवार्ता में भारतीय एकता के स्वर

०

आज भारत के समक्ष सबसे विकराल समस्या विघटनकारी तत्वों से भारतीय ऐक्य की रक्षा करने की है। कितने ही तत्व विघटनकारी प्रवृत्तियों को सशक्त बनाने के लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं। उनमें से एक तत्व साम्प्रदायिक भी है। भारत सदा से ही अनेकों सम्प्रदायों का पालक रहा है। एक ओर प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपनी साधना तथा दार्शनिकता के पक्ष को चरम पर पहुंचा कर अपनी अस्मिता सिद्ध करने का प्रयत्न किया और दूसरी ओर लोकजीवन में प्रवाहित जीवन्त तरंगों ने विविध सम्प्रदायों की अस्मिताओं को उसी प्रकार अपने अन्दर आत्मसात् कर लिया जिस प्रकार समुद्र का जल अपने तल में अनेकों चट्टानों को विलीन किये रहता है और अपनी अखण्डता को विघटित नहीं होने देता है। आज आवश्यकता यही है कि लोक की इस जीवन्त शक्ति को और अधिक खोज कर उभारा जाए और समस्त सम्प्रदायों के अन्तरंग-जीवनगत ऐक्य की सिद्धि को प्रदर्शित किया जाए, जिससे

साम्प्रदायिकता एवं विघटनकारी विष दूर हो। ऐसे प्रयत्नों की आज सराहना भी की जानी चाहिये।

धर्मयुग के १० मई '७० के अंक में बालकवि बैरागी के 'कच्छ का पदयात्री' संख्या २ में हिंगलाज माता की यात्रा के वर्णन में ये वाक्य हमें प्रभावित करते हैं— 'सबसे ज्यादा आश्चर्य और सुख की बात यह है कि हिंगलाज माता का पुजारी सदा-सदा से मुसलमान होता आया है। यह कहा जाता है कि मुसलमान धर्म में मूर्ति पूजा की कोई मान्यता नहीं है पर हिंगलाज माता जाकर कोई देखे कि वहां मुसलमान मूर्ति-पूजा करता है और अभी भी वहां यही होता होगा। और भी विशेष बात यह है कि हिंगलाज माता की मूल पूजा कोई पुरुष नहीं कर सकता है। वहां पुजारी न होकर पुजारिन हुआ करती है। मैं गया तब भी वहां की पुजारिन एक महिला थी। मन्दिर के आसपास कनेरों के सघन झाड़ हैं।'

यह तथ्य यह सिद्ध करता है कि हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक घृणा होना प्राकृतिक और स्वाभाविक तत्व नहीं है। यह किन्हीं स्वार्थों से प्रेरित विघटनकारी तत्वों के द्वारा ही निर्मित है। इसी सन्दर्भ में १९ अप्रेल, १९७० के धर्मयुग में 'एक दरगाह जो मन्दिर कहलाती है' शीर्षक से जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसमें ये पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं—'फिर भी देश में यत्र-तत्र साम्प्रदायिक एकता की कुछ ऐसी परम्परा चल पड़ी है जिन्हें आज तक कोई तोड़ नहीं सका और यह वस्तुतः महत्वपूर्ण और सत्य है कि लोकोन्मुख सम्प्रदाय और धर्म की यही प्रवृत्ति रही है।' और इसके अनेकानेक दृष्टान्त हमें उपलब्ध हैं जो स्वयमेव अत्यन्त रोचक भी हैं। आगरे के पास रुनकता नामक स्थान है, जहां से कुछ मील दूर यमुना किनारे 'रेणुका' का क्षेत्र है, यहीं परशुराम का मन्दिर है, यहां से कुछ दूर मथुरा की दिशा में जाने पर यमुना किनारे पर ही एक विशाल भवन मिलता है। वहां पहुँच कर सबसे पहले भवन के नीचे भैरों की सिंदूर से पुती हुई मूर्ति और त्रिशूल दिखाई पड़ता है। इमारत के ऊपर चढ़कर एक विशाल मजार या समाधि दिखाई पड़ती है; जिसे देखकर ही कोई समझ सकता है कि यह किसी मुसलमान की समाधि होनी चाहिये। एक ही स्थान पर एक ओर हिन्दुओं के भैरोंजी को और दूसरी ओर मजार को देखकर यह लगता है कि यह हिन्दू-मुस्लिम एकता का द्योतक है। किन्तु, जब यह विदित होता है कि यह समाधि 'सरवर सुल्तान' की है जो बहुत पहुँचे हुए मुसलमान फकीर अथवा सूफी भी रहे हैं तो थोड़ा आश्चर्य और बढ़ता है कि ऐसे पीर का भैरोंजी से क्या सम्बन्ध? ऐसे दोनों साथ-साथ कैसे? और, जब जिज्ञासु को यह ज्ञात होता है कि सरवर सुल्तान और भैरोंजी में घनिष्ट सम्बन्ध है तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।

भैरौंजी सरवर सुल्तान के गण हैं। यदि कभी कोई भक्त सरवर सुल्तान को सिर बुलाना चाहता है तो उसे पहले भैरौंजी का आह्वान करना होता है और भैरौंजी के स्वीकार कर लेने पर सरवर सुल्तान आते हैं। अतएव सरवर सुल्तान के साथ भैरौंजी का यह एक अनन्य सम्बन्ध है जो सम्प्रदायों के आपसी ऐक्य को ही पुष्ट नहीं करता वरन् उनके दो देवताओं में अन्तरंग ऐक्य स्थापित करता है। लोकदेवताओं में भी हमें अनेक प्रकार के ऐक्य की स्वीकृति लोकक्षेत्र मे दिखाई पड़ती है। इसका एक उदाहरण गुरु गुग्गा या जाहरपीर की मान्यता में है। जहां तक मैं समझता हूँ बंगाल को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत में गोगाजी की मान्यता है, यद्यपि इनका मूल स्थान ददरेवा है, जो बीकानेर (राजस्थान) में है। इनकी पूजा बिना किसी भेदभाव के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही करते हैं और हिन्दुओं में भी भंगी से लेकर ब्राह्मण तक में इनकी मान्यता है। इनके पुजारी भी मुसलमान होते हैं। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह किवदन्ती है कि ये घोड़े सहित पृथ्वी में समा गये थे। इन्होंने पृथ्वी से प्रार्थना की थी कि तू फट जा जिससे मैं तुझ में समा जाऊँ। पृथ्वी ने इनसे कहा कि हिन्दू लोग पृथ्वी में नहीं समाया करते, तब, यह कहा जाता है कि इन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया और फिर उसी स्थान पर आये, तब पृथ्वी फट गयी और घोड़े सहित ये पृथ्वी में समा गये।

हम यदि इतिहास के चक्कर में न पड़ें तो यह स्पष्ट है कि दोनों धर्मों ने इनको अपना लिया और दोनों के देवता के रूप में आज ये पूजे जाते हैं। इसी प्रकार अलीगढ़ के पास मैकासुर (माई का सुर) नामक लोकदेवता की पूजा होती है। मैकासुर की पूजा में भी मुसलमानों को भोजन खिलाना पूजा का एक अनिवार्य अंग माना जाता है। बंगाल में भी इसी प्रकार के समन्वयवादी कई लोकधर्म हैं। इनमें से दक्षिणराय के सम्बन्ध में लिखी गई 'रायमंगल' की कहानी मैं यहां उद्धृत करता हूं—

'एक राजा था, उसके सन्तान नहीं थी। उसने शिव की पूजा की, वरदान में उसे पुत्र मिला। इसी का नाम दक्षिणराय रखा गया। दक्षिणराय ने पिता की मृत्यु के उपरान्त सुन्दरवन के भी कुछ अंश को अधिकार में कर लिया और एक नया राज्य बसाया। मृत्यु के उपरान्त वही उस क्षेत्र का देवता हो गया। दक्षिणराय ने अपने मित्र कालूराय को हिजली भेजा। वहाँ के राजा नरसिंह के मृत पुत्र को दक्षिणराय ने जीवित कर दिया। राजा ने तब दक्षिणराय की पूजा की।

बड़दह के बनिया पुष्पदंत ने रताई बाउल्या को समुद्र यात्रा पर जाने के लिए कई नौका बनाने का काम दिया। वह बाउल्या अपने छः भाइयों और एकमात्र पुत्र को लेकर सुन्दरवन में लकड़ी काटने पहुंचा। बहुत सी लकड़ी तो काट ली।

तब एक विशाल वृक्ष उन्हें दिखाई दिया उसे भी काटने का प्रयत्न किया। उस पर दक्षिणराय का निवास था। दक्षिणराय ने क्रुद्ध होकर अपने छः बाघों को आज्ञा दी कि इसके छः भाइयों को खाजाओ। वे बाघ उसके भाइयों को खा गये। रताई भाइयों के शोक में था। दक्षिणराय ने आकाशवाणी से बताया कि तू अपने पुत्र की बलि देकर मेरी पूजा कर, तेरे भाइयों को पुनरुज्जीवन दे दूंगा। रताई ने वैसा ही किया। दक्षिणराय प्रसन्न हुए, उन्होंने भाई भी दे दिये और पुत्र को भी प्राणदान दिया।

रताई काष्ठ लेकर गया और नावें बना कर पुष्पदंत को दीं। पुष्पदंत का पिता बहुत काल पहले व्यापार के लिए समुद्र यात्रा पर गया था, पर अभी तक लौटा नहीं था। पुष्पदंत उन्हें खोजने के लिए उन नौकाओं पर चला। उसकी माता भी दक्षिणराय की भक्त थी। उसने पुष्पदंत से कह दिया था कि संकट के समय दक्षिणराय को स्मरण करना। स्वय माता ने घर पर दक्षिणराय की पूजा की। दक्षिणराय ने प्रकट होकर मां को आश्वासन दिया कि वह उसके पुत्र की रक्षा करेगा। पुष्पदंत चलते-चलते खनियाय पहुंचा। वहां दक्षिणराय के स्थान पर पूजा करने लगा। उस स्थान के ठीक सामने पीर की समाधि थी। वहां मिट्टी की वेदिका थी। वहीं दक्षिणराय का मिट्टी का मूंड भी स्थापित था। पूछने पर कर्णधार ने बताया कि एक बार दक्षिणराय तथा गाजीखां में भयानक युद्ध हुआ। बात यह थी कि एकबार धनपति नामक सौदागर यहां आया। उसने दक्षिणराय की पूजा की, गाजी की उपेक्षा की। फकीरों ने गाजी से शिकायत की। गाजी ने दक्षिणराय के थान को नष्ट कर दिया। यह समाचार दक्षिणराय को मिला। उसने गाजी पर चढ़ाई कर दी। गाजी भी युद्ध करने आगया। दोनों ओर व्याघ्रों की फौज थी। भयानक युद्ध छिड़ गया। युद्ध होता ही गया, क्योंकि कोई भी पराजित नहीं हो रहा था। पृथ्वी पर हाहाकार मच गया। पृथ्वी को रसातल जाते देख भगवान प्रकट हुए। उनका आधा रूप कृष्ण का था और आधा पैगम्बर का। आधे सिर पर कुलह था और आधे पर मोरपंख का मुकुट। गले में आधे में वैजयन्ती माला तो दूसरी ओर तसबीह। शरीर आधा गोरा और आधा घन-सा श्याम, एक हाथ में कुरान तथा दूसरे में पुराण।

कृष्ण-पैगम्बर रूपी भगवान ने दोनों में संधि करायी और यह निश्चय कराया कि समस्त भाटि-क्षेत्र में दक्षिणराय की पूजा होगी, कालूराय हिजली में रहेंगे। बड़े गाजीखां सर्वत्र सम्मान पायेंगे। बड़े गाजीखां की समाधि के साथ दक्षिण-राय के मूंड की पूजा सब जगह होगी। तभी से मिट्टी की वेदी या समाधि और मिट्टी के मुंह साथ-साथ पूजे जाते हैं। पुष्पदंत ने भी वहां दोनों की पूजा की और

भावी यात्रा के लिए चल पड़ा। कई समुद्र पार किये, कई राज्य पार किये। एक समुद्र में उसे बड़ी अद्‌भुत नगरी दिखाई पड़ी। पुष्पदंत अब तुरन्त नगर में पहुँचा। वहां के राजा सुरथ के पास वह भेंट लेकर पहुँचा। राजा से पुष्पदंत ने उस अद्‌भुत नगर का वृतान्त कहा। राजा ने अविश्वास किया। पुष्पदंत ने कहा कि चलिये वह नगर दिखादूं। यदि नहीं दिखा सका तो आप मेरा वध करा दीजियेगा। राजा ने कहा कि यदि तुम दिखा सके तो मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम से कर दूंगा और आधा राज्य भी दूंगा।

दोनों गये पर नगरी वहां कहां थी। राजा ने पुष्पदंत के वध की आज्ञा दी। वध से पूर्व राजा ने दक्षिणराय का स्मरण किया। दक्षिणराय ने पुष्पदंत की रक्षा की। उसके व्याघ्रों ने वधिक को खा लिया। राजा और उसकी सेना भी मार डाली गई। तब रानी युद्ध-भूमि पर पहुंची। दक्षिणराय ने आकाशवाणी से रानी को बताया कि पुष्पदत मेरा भक्त है। उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करदो और राज्य मे मेरी मूर्ति बना कर पूजा कराओ। रानी ने स्वीकृति दी। दक्षिणराय ने अमृत छिड़क कर सब को जीवित कर दिया। पुष्पदंत से कन्या का विवाह कर दिया। पुष्पदंत का पिता देवदत्त भी यहीं कारावास में था। वह भी राजा को वह माया नगरी नहीं दिखा सका था। पुष्पदंत ने पिता को मुक्त कराया और दक्षिणराय की कृपा से सभी सानन्द घर लौटे।'

इस कथा में भगवान का 'कृष्ण-मोहम्मद' रूप तथा गाजी की समाधि के साथ दक्षिणराय की मूंड पूजा उसी अन्तरंग धारणा का परिणाम है।

इसी प्रकार केरल राज्य के 'अय्यप्पन या शास्ता' के साथ भी यह वैशिष्ट्य हैं। इनका विवरण नीचे दे रहा हूं। इससे यह विदित होगाकि कितने रूप इनमें समाहित हैं और किस प्रकार मुसलमान की प्रतिष्ठा भी इनके साथ हुई।

'कहा जाता है कि मध्यकालीन भारतीय भक्ति साधना ईसाई भक्ति साधना से प्रभावित है। इतना और अनुमान किया जाता है कि गोपालकृष्ण का किशोर जीवन ख्रीष्ट की कथाओं का 'इन्जेक्शन' पाकर बाद के रूप में पुष्ट हुआ। अनुमान चाहे कुछ भी हो, अंग्रेजों का सिक्का जब से भारत में जमा है तब से भारत में भक्तिकाल की समाप्ति शुरू हो गई थी। उन्नीसवीं शती के मध्यकाल से राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती एवं विवेकानन्द के चिन्तन-प्रधान धर्म का काल शुरू होता है जिनका लक्ष्य ईसाइयों से हिन्दुत्व की रक्षा है। रामकृष्ण परमहंस और एक दृष्टि से गांधीजी भक्त अवश्य थे, पर उनके सर्वप्रथम शिष्य क्रमशः विवेकानन्द और जवाहरलाल हैं। हमारी दृष्टि में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार या

ईसाइयों की संगति भारतीय भक्ति-भावना के लिये विशेष उपयोगी साबित नहीं हुई। स्वातंत्र्योत्तर काल में तीर्थस्थानों में आने वालों का आंकड़ा भी यही दिखाता है कि अंग्रेजी शासन का प्रभाव हिन्दू भक्ति-भावना के लिये अनुकूल नहीं था। केरल में अय्यप्पन या शास्ता के भक्तों का उत्साह इसका एक उदाहरण है।

केरल राज्य शिक्षा के प्रचार में भारत में प्रथम गणनीय है। प्रगतिवादी विचारधारा के लिये यह राज्य बहुत आगे है और इसी राज्य में सर्वप्रथम साम्यवादी प्रजातंत्रीय सरकार स्थापित हुई थी। युक्तिवाद और बुद्धिवाद का पूरा जोर रहते हुए भी बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह अद्भुत देखने में आता है कि सरकार के उच्च पदाधिकारी से लेकर धनीमानी व्यक्ति और साधारण जनता लाखों की तादाद में इस भक्ति में दीक्षित हो रहे हैं। दिसम्बर की कड़ी सर्दी में चालीस दिन के व्रत रखने वाले भक्त सवेरे पाच बजे उठकर नहाते हैं। ऊँची आवाज में 'शरणागति' के नारे लगाते हैं। शाम को मन्दिर जाते हैं। विशेष प्रकार का वस्त्र पहनना, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना, दीक्षा लेना और साधु-सन्यासियों का जीवन अपनाना भी इस व्रत में आवश्यक है। प्रोफेसर, वकील, जज, कलक्टर जैसे लोगों को इस व्रत के अवसर पर देखकर आश्चर्य ही होता है। आखिर यह अय्यप्पन या शास्ता कौन है, उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता का क्या कारण है ?

अय्यप्पन या शास्ता पर प्रचलित कथाओं और अनुष्ठानों को समग्र रूप में अपनाने पर हमारे सामने कई समस्याओं का उत्तर नहीं रहेगा। यदि उसके चार भाग प्रतीकात्मक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रचलित रूप की दृष्टि से करें तो जटिलता कम रहेगी।

प्रतीकात्मक रूप : अय्यप-भक्तों के नारों में शास्ता के लिए तारकब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप जैसे सम्बोधन हैं। व्रत की दीक्षा लेते ही भक्त को भी स्वामी या अय्यप्पन कहने लगते हैं। भक्त की समस्त वस्तुओं को शास्ता के नाम से पुकारने का आदेश मिलता है, यद्यपि इसका पालन भक्तों के बीच के वार्तालाप में ही होता है। भक्त काले या नीले वस्त्र पहनते हैं और गले में माला डालते हैं। इकतालीस दिन के व्रत के अन्त में 'शबरी पहाड़' की ओर भक्तों का झुण्ड चलने लगता है। उनके पास दो गठरियां एक साथ बंधी हुई मिलेंगी। एक में यात्रा के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तुएँ और दूसरी में भक्त के जड़-शरीर और मन का प्रतीक एक नारियल होता है जिसके अन्दर का पानी निकाल कर घी भर कर रखा रहता है। 'शबरी पहाड़' के पास पम्पा नामक सरोवर है जिसमें स्नान करके वे काले वस्त्र पहनते हैं और अपनी बचीखुची वस्तु से सहभोज करते हैं। शारीरिक

आवश्यकता के लिए रखी गठरी को इधर खाली करना है और पवित्र स्नान से शुद्ध हो जाना है। भक्त के पास अब केवल नारियल रह जाता है, जो विज्ञान से भरे पड़े जड़ शरीर का प्रतीक है। वह पहाड़ की अठारह सीढ़ियों को—जिसका अपना योगमार्गी अर्थ है—चढ़ता है। और ब्रह्म की सन्निधि में पहुंचता है। इधर वह नारियल के अन्दर के घी से भगवान का अभिषेक कर छिलके को आग में, जो दक्षिण की ओर जली रहती है, फैंक देता है। यह भक्त का लक्ष्य है जो आत्मा को ब्रह्म में लीन करने की विधि का प्रतीक है।

पौराणिक रूप : अय्यप्पन या शास्ता हरिहर पुत्र कहलाता है। पुराणों में मोहिनी रूप विष्णु पर शिवजी का मुग्ध होना और पुत्र का उत्पादन करना वर्णित है। इस देवता से अय्यप्पन का अभेद है। शैव-वैष्णव समन्वय का अय्यप्पन यों एक प्रतीक है।

ऐतिहासिक रूप : यद्यपि अय्यप्पन का शिव से विष्णु में उत्पन्न होने का वर्णन सभी गीतों में है, पर बालक अय्यप्पन का जीवन पांड्यराजा के अधीन बीतने का भी वर्णन है। इसे अय्यप्पन का अवतार भी माना जाता है। इस अवतार की कथा में ऐतिहासिकता है। एक रोते हुए बालक के रूप में पांड्यराजा अय्यप्पन को कहीं पड़ा हुआ पाता है और राजघर ले जाता है। वीर अय्यप्पन के बाल-जीवन से राजा इतने प्रभावित हुए कि वे अय्यप्पन को अपना उत्तराधिकारी बनाने तक की सोचते हैं। इस पर मन्त्रियों ने षड्यंत्र रचा और अय्यप्पन को चीते का गर्म दूध लाने का काम सौंप दिया। बच्चे वाली मादा चीते पर सवार होकर अय्यप्पन लौट आता है और सभी डर जाते हैं। आगे वह पत्तलम् राजा के पास पहुँचते हैं और बाद में शबरी पहाड़ पर देवता के रूप में प्रतिष्ठित भी हो जाते हैं। इस अवतार-कथा में वह केरल के नागरिक के रूप में चित्रित है और कई कथा-पात्र उसे मलयाली (मलयालम बोलने वाला या केरलवासी) कह कर पुकारते हैं। एक जगह उनका बाबर (पातूम्मा—आलि के पुत्र) नामक वीर मुसलमान से युद्ध और संधि का वर्णन है। शबरी पहाड़ के मन्दिर के पास ही इस मुसलमान की प्रतिष्ठा भी अय्यप्पन के आदेश पर हुई, जहां गेहूं का नैवेद्य चढ़ाने का प्रबन्ध है।[1]

समस्त अवतार-साहित्य के अध्ययन से दो अनुमान संगत लगते हैं—(१) अय्यप्पन नाम का कोई व्यक्ति केरल में पैदा हुआ, जिसने 'शबरी पहाड़' पर प्रतिष्ठा

---

[1] केरल के मन्दिरों में चावल का नैवेद्य चलता है, जो उधर का मुख्य भोजन है।

एवं पूजा का इन्तजाम किया। (२) इसका एक दोस्त वीर मुसलमान वावर था जो जहाजी यात्रा में वड़ा निपुण था। डा एस के. नायर ने हाल ही में अय्यप्पन पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है जिसमें अय्यप्पन को एक ऐसे महापुरुष के रूप में चित्रित किया है जिसने 'शवरी पहाड़' के अय्यप्पन या शास्ता के मन्दिर का उद्धार किया। मन्दिर की पुन: प्रतिष्ठा के वाद इनका और इनके योगीश्वर पिता का पता नहीं चला, जिससे लोगों ने इनको अय्यप्पन का अवतार माना। लेखक ने अमानवीय घटना को छोड़कर दसवीं शती के पत्तलम् राजा तथा देश की परिस्थिति की कथा दी है।

इसमें सन्देह नहीं कि अय्यप्पन या शास्ता की पूजा हज़रत मोहम्मद के बहुत पहले इधर मौजूद थी। इस दृष्टि से एक ऐतिहासिक व्यक्ति की कथा अय्यप्पन के साथ वाद को जुड़ी हुई है। अय्यप्पन का प्राचीन रूप क्या था? इस पर अनुमान करने की सामग्री पर्याप्त मात्रा में है। द्राविड़ देश में ये एक ग्राम-देवता थे वाद में केरल में इनका देश-देवता का रूप विकसित हो गया।

जनमानस का यह रूढ़ विश्वास है कि केरल की रक्षा के लिए परशुराम ने आठ पहाड़ों हर अय्यप्पन की प्रतिष्ठा की। शवरी पहाड़, अच्चन कोविल, आर्यन्काव, कुलत्तू पुला इनमें आज भी मुख्य हैं। तथापि इनका स्थान प्राचीनकाल में सम्भवत: पहाड़ ही रहा है। आज समतल प्रदेशों में भी कई छोटे-वड़े अय्यप्पन के मन्दिर हैं। तमिलनाडु में ये अब्राह्मणों द्वारा पूजे जाते हैं, पर केरल में ब्राह्मणों द्वारा भी अपनाये गये हैं। फिर भी रौद्र भगवती की पूजा विधियों में और अनुष्ठानों में शूद्र जाति का जो विशेष स्थान है वह अय्यप्पन की पूजा में भी है। यह अनुमान केवल उचित है कि अय्यप्पन पूर्णत: एक द्राविड़ देवता थे और केरल के आर्य ब्राह्मणों द्वारा अपनाये जाने पर ही पुराण की कथाओं और सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप से इनका सम्बन्ध हुआ था। अय्यप्पन के लिए जो पाट्ट कलपाट्ट, विलक्क, तीप्पाट्ट, तेड्ड्येरपाट्ट आदि मनौतियां या पूजा-विधि है उसके निर्वहन करने वाले अब्राह्मण ही हैं और यह इस अनुमान के प्रमाणों में दिया जा सकता है।

जैसा कि मन्दिर की पूजा-विधि से एक यह अनुमान किया गया है वैसे ही आधुनिक अय्यप्पन-भक्तों के व्रत-तीर्थ आदि से दूसरा अनुमान किया जा सकता है और वह है वुद्ध धर्म का प्रभाव। ईसा के वाद प्रारम्भिक शताब्दियों में केरल में वुद्ध धर्म का वड़ा प्रचार था और इसका प्रचार निम्नतम जातियों में अधिक था। शास्ता नाम उत्तर भारत में भी वुद्ध के लिये प्रचलित था और अमरकोशकार को भी यह मालूम था। आज के अय्यप्पन भक्त व्रत की दीक्षा लेते की भिक्षुओं का आचार अपनाते हैं और तीर्थ यात्रा के पहले भिक्षा लेना उनके व्रत का एक अंग

है। बौद्ध भिक्षुओं के समान ये संघजीवन का परिचय देते हैं। संघ के नेता के आदेश का पूरा पालन अन्त तक करना हर भक्त का कर्तव्य है। भक्तों के नारों में जैसे —

> 'स्वामिये शरणमय्यप्पा', 'धर्मशास्तावे शरणमय्यप्पा',
> 'तारकब्रह्म में शरणमय्यप्पा'—

बुद्ध धर्म के 'शरण जाने' का स्पष्ट अनुकरण है। प्राचीनकाल से ही इन भक्तों में जाति-भेद का पूर्ण ह्रास, आचरण की शुद्धता पर जोर देना भी इसी ओर संकेत है। चाहे यह देवता बुद्ध का रूपान्तरण न हो, फिर भी इस सम्प्रदाय पर बुद्ध-धर्म का स्पष्ट प्रभाव है।

प्रचलित रूप : ब्राह्मणों के द्वारा अपनाये जाने पर इस सम्प्रदाय का आज का रूप स्थिर हो गया है। जो ध्यान-श्लोक आज प्रचलित हैं उनमें बुद्ध रूप से अय्यप्प रूप का भारी अन्तर आगया है। योगमुद्रा में बैठने वाले अय्यप्प से आज का व्याघ्रवाहन-धनुषबाणपाणि रूप भी थोड़ा भिन्न है। साधारणतः शंकराचार्य के शिव-केशादि पादान्त के इस श्लोक से अय्यप्पन का ध्यान किया जाता है—

> आरूढ़: प्रौढ़ वेग प्रविनितपवनं तुंग तुंगं तुरंगं
> चेलं नीलं वसानः करतलविलसत्काण्डकोदण्डदण्डः।
> रागद्वेषादि नानाविध मृगपटलीभीतिहृत भूत भर्ता।
> कुर्वन्नाखेट लीलां परिलसतु मनः कानने मामकीने।

शास्त्रपूजा का ध्यान-श्लोक यहां भी दिया गया है—

> स्निग्धारालवि सारिकुन्तलभर सिंहासनाध्यासिनं
> स्फूर्जत्पत्रसुक्लृप्तथेऽञ्चित्व सभृर्दोह्वम।
> नीलक्षौमवसं नवीनजलदश्यामं प्रभासत्यक-
> स्फायत्पार्श्वयुगं सुरक्तसकलाकल्पं स्मरे दार्यकम्।[1]

जबकि बुद्ध का ध्यान ऐसा होता है—

> पद्मांकितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिस्सुनीलकेशत्वक्
> पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो भवति बुद्धः।

× × × ×

---

[1] शास्त्रपूजा—पंचांग प्रेस, पृष्ठ ६-८।

द्विभुजं च द्विनेत्रं च उष्णीषोज्वलमौक्तिकम् ।
एवं तु स्थानकं कुर्यादासनानि यथोक्तवत्
पीतांबरधरं कुर्यात् स्थानके चासनेपिच ।[1]

दोनों का अन्तर स्पष्ट है ।

मूर्तियों और चित्रों में वे बाघ पर सवार दिखाई देते हैं । वावर इनके उप-देव हैं, जिनके सम्बन्धित गानों में इनको हाथी पर सवार बताया गया है ।

कहीं-कहीं इन्हें पूर्णा और पुष्कला नामक देवियों के पति और हाथी पर सवार बताया गया है । पर प्रचलित विश्वास के अनुसार केरल में ये पूर्ण ब्रह्म-चारी हैं । 'शबरी पहाड़' पर ऋतुमती होने पर स्त्रियां नहीं जा सकतीं । बलिकाएँ या बूढ़ी औरतें ही इसकी अधिकारी हैं । इस प्रकार 'शबरी पहाड़' का शास्ता जवान स्त्रियों को दर्शन भी नहीं देता । यह बात केवल 'शबरी पहाड़' के लिए ही लागू है । समतल में जितनी प्रतिष्ठाएं हैं उधर कोई ऐसा बंधन नहीं जो उक्त स्थान पर है । संभवतः शास्ता का कुमार रूप उस ऐतिहासिक बालक के जीवन से आया है ।

आधुनिक कवियों ने 'शबरी पहाड़' के शास्ता को विशेष रूप से अपनाया है और उन्हें 'शबरी गिरिवास' की उपाधि दी है ।[2] सं० २००२ में महाकवि उललूर द्वारा लिखित 'शरणोपहारम्' में उन्हें भुवन शास्ता, हरिहर पुत्र और सगुणब्रह्म बताया है[3] । हरि और हर की लाड़-दुलार को छोड़कर उन्होंने केरल में रहने का स्वयं निश्चय किया था ।[4] अय्यप्पन या केरल पुत्र[5] नाम की अपनी रचना में के. पी. नम्पूतिरी ने तारक ब्रह्म देवालय में, जो शबरी पहाड़ पर है, अपूर्व दम्पतियों की तपस्या और अदिति में ब्रह्मरूप अय्यप्पन के अवतार की कथा ली है । यह उस ऐतिहासिक व्यक्ति के जन्म से बहुत मिलता है । 'शबरी चरित'[6] (के. बी. राम.) में भस्मासुर नामक असुर को मोहित करने के लिये विष्णु का मोहिनी रूप धारण करना और उससे शिव के पुत्र के जन्म की कथा है । 'स्कन्दपुराणं किलिप्पाट्ट के

---

1 केरलीय संस्कृत साहित्य चरितम्, भाग २, पृष्ठ १६७
2 ना वणङ्ङु दैवङ्ङल, पृष्ठ १९
3 शरणोपहारम्, श्लोक १७, २२, २३, पृष्ठ ४-५
4 वही, श्लोक २४
5 अय्यप्पन अथवा केरलपुत्रन : के. पी. नम्पूतिरि, मावेलिक्करा ।
6 शबरीश्वर चरितं : के. बी. राम., पी. के. ब्रदर्स, कालिकट ।

लेखक ने भी अय्यप्पन के जन्म की कथा कही है[1] जो थोड़ी भिन्न है। इस प्रकार अय्यप्पन के जन्म और जीवन के सम्बन्ध में ही भक्तों ने कई ढंग से वर्णन किया है। पर ईश्वर की अद्भुत शक्तियों पर विश्वास करने वाले अवतारवादी आस्तिकों को इनमें शंका समाधान की आवश्यकता मालूम नहीं होती। इन भक्तों को अत्यन्त विशाल आदर्श की दीक्षा मिलती है जिससे सभी सूक्ष्म विरोध की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। समस्त जगत उन्हें 'अय्यप्पमय' है। फलतः मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी के नाम के साथ भी अय्यप्प शब्द जोड़कर व्यवहार करते हैं। स्त्रियों को भगवती रूप में देखने की प्रथा भी है। जब कभी अय्यप्प भक्त को अपनी पत्नी का जिक्र करना पड़ता है तब वह व्रत के अवसर पर 'मालिकप्पुरत्तम्मा' (शबरी पहाड़ के पास के मन्दिर की भगवती) कहकर करते हैं। इतने विशाल आदर्श का अभ्यास करते हुए वे 'भजन संघों' में अय्यप्पन की अवतार-कथा के सात शैव नामक अंकों को 'पूलियरी' नामक ताल व 'उदुक्क' नामक बाजे के साथ गाते जाते हैं। अय्यप्पन पाट्ट का यह दृश्य संगीत या साहित्य की दृष्टि से उतने महत्व का नहीं, जितना वातावरण की भक्ति-भावना से।

शाम को अधिकतर भक्त मन्दिर में जमा होते हैं, पर इनके लिए सभी मन्दिर बराबर हैं। विष्णु हो या शिव, काली हो या दुर्गा, इन्हें उधर की पूजा में भी अय्यप्पन और भगवती की पूजा का ही आनन्द मिलता है। इसलिये व्रत के अवसर पर वे निकटतम मन्दिर से सम्बन्ध जोड़ते हैं और उधर की देव-कल्पना से थोड़ा भी विरोध नहीं होता।

इन उल्लेखों से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि क्या दक्षिण, क्या उत्तर—दोनों ही क्षेत्रों में भारतीय ऐक्य के पूर्णतः सुसम्पादित व्यवहार मिलते हैं, जिनसे परस्पर के भेदों को भुला कर अधिकाधिक निकट आने के अवसर जातीय जीवन में उपलब्ध होते रहे हैं। ऐसे उदाहरणों को और अधिक सामने लाकर उनकी तर्क-संगत व्याख्या करने तथा उनके अन्तर्गत विद्यमान भारतीय जन के ऐक्य का दर्शन पुनःस्थापित करने की आज महती आवश्यकता है।

---

[1] स्कन्दपुराणं किलिप्पाट्ट : ए. आर. पी. प्रेस, कुन्नुकुल, पृष्ठ ५७